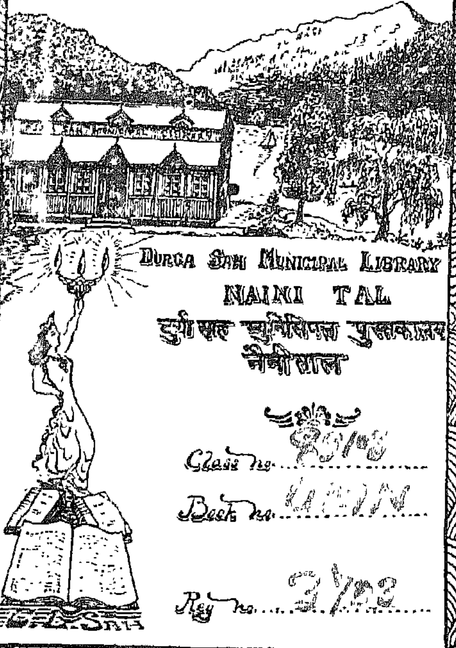


(ऐतिहासिक उपन्यास)

नाना फड़नवीस

❖

उमाशंकर

प्रकाशक

विद्या मन्दिर

चौक, कानपुर

मुद्रक

आर. एस. धवन,

कर्मशियल प्रिंटिंग वर्क्स, फोन नं० ७०१, गायघाट, बनारस।

आमुख

स्वतंत्रता की लड़ाई ४२ में आरम्भ हुई। सौभाग्यवश मुझे भी जेल जाना पड़ा। समय पर्याप्त था। पढ़ने का समय मिला। बाल्यकाल में भइया के मुँह से नाना फड़नवीस की सुनी हुई कथा, जिज्ञासा बनकर आ खड़ी हुई। इतिहास के पन्नों को उलटने लगा। काफी छान-बीन की। पर जेल से छूटने पर अपनी पढ़ाई में जुट जाना पड़ा। आवश्यक था। अतः अन्य इच्छायें दब सी गईं। किन्तु लुप्त नहीं हुईं। परिणाम-स्वरूप, अब जाकर नाना साहब के जीवन को आपके सम्मुख रखने में समर्थ हो सका हूँ।

नाना फड़नवीस के जीवन को मैंने अपनी ओर से बनाने या सँवारने का प्रयत्न नहीं किया है। कारण, ऐतिहासिक पात्रों के व्यक्तित्व को अथवा सम्बन्धित घटनाओं को उलट-पुलट कर अपने अनुकूल या मौजूदा सामाजिक परिस्थितियों तथा वातावरण का जामा जोड़ा पहना कर, पाठकों के सामने रखने का मैं कायल नहीं। जिनका जो कुछ है, मैं उन्हीं के साथ रखकर उनका कह देना चाहता हूँ। इसलिये नाना साहब में जैसा भी जो कुछ पाया है वैसा ही रख दिया है।

बालाजी जनार्दन भानू का जन्म शुक्रवार २४ फरवरी १७४२ ई० को दस बजे दिन में हुआ था और मृत्यु बृहस्पतिवार १३ मार्च १८०० में। 'नाना' उनके पुकारने वाला नाम था। महाराष्ट्रियों में अधिकतर 'नाना' नाम से लोग सम्बोधित किये जाते हैं। इस प्रकार का प्रचलन आप बुन्देलखण्ड में भी यत्र-तत्र पायेंगे। नाना फड़नवीस का कर्मक्षेत्र पानीपत के युद्ध-क्षेत्र से प्रारम्भ होता है। वे जिस लगन और निस्वार्थ भाव से 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' के व्रत को लेकर आगे बढ़े थे, यदि उसी प्रकार उनके दूसरे सहयोगियों ने भी, विशेष कर महादजी शिंदे ने उनके कंधे से कन्धा मिलाकर

उसी लगन और निस्वार्थता से साथ दिया होता तो सम्भवतः आज का हमारा इतिहास किसी दूसरे रूप में लिखा गया होता। उस युग में नाना फड़नवीस पहले व्यक्ति हुये हैं जिन्होंने अंग्रेजी की चालें और उनकी बढ़ती हुई शक्ति का सहीरूप में अनुमान लगाकर अपने देश को मुक्त करने का प्रयत्न किया था। वे अपने इस कार्य में सफल भी हुये होते पर बाद में महादजी शिंदे की लोलुपता ने—जैसा जेम्स एन्डरसन ने १३ नवम्बर १७८६ में गवर्नर जनरल कार्नवालिस को पत्र में लिखा था।

'It seems now almost as certain as any political point can be that his (Mahadji) object is connecting his own provinces of Malwa and Ajmer with those of Agra and Delhi to erect an independent empire of his own and to shake off all subjections to the Peshwa' किये कराये पर पूर्ण रूप से पानी फेर दिया।

यह नाना फड़नवीस ही थे जिन्होंने बड़े गाँव पर प्रथम बार अंग्रेजों को इस बुरी तरह से पराजित किया कि उनके मुँह पर पुती हुई कालिख नाना साहब के जीते जी न पूछ सकी। लेकिन महादजी ने यहाँ भी नाना को दगा दिया। बड़े गाँव की War Committee ने बम्बई सरकार को जो पत्र लिखा था वह इस प्रकार है—

'The committee was obliged on the spot to send an order counter manding the advance of the Bengal troops and Sindhia favour was purchased by a private promise to bestow on him the English share of Baroach besides a sum of forty one thousand rupees in present to the servants.

ठीक इसी प्रकार की हरकत महादजी ने 'सालबाई' की संधि में भी की थी। नाना की कमर टूट गई। आशा निराशा में परिवर्तित होने लगी। हैदर मर

जो प्राणी मेरी शरण में आकर मुझे ही अपना सर्वस्व समझ कर, अपने सारे कर्मों को सुचारु रूप से करता हुआ, इस जीवन-रूपी कर्म क्षेत्र में आगे बढ़ता चला जाता है ; वही, मेरी ही कृपा से, अन्त मे अनादि-अविनाशी पद को प्राप्त होता है। अतः अर्जुन, मैं तुझसे भी यही कहूँगा कि तू मन से अपने सारे कर्मों को मेरे में अर्पण कर दे। मुझे ही परमात्मा, अविनाशी समझ और ऐसा समझ कर निश्चल बुद्धि से, मन को एकाग्र कर के, तू सदैव मेरे में चित्त लगाये रह, इसी में तेरा कल्याण है।' भानू ने पुस्तक बन्द करते हुए मस्तक से लगाया और उठ खड़ा हुआ। वृद्धा ने तुलसीदल दिये।

भानू बाहर वाले कक्ष में आकर कपड़े बदलने लगा।

(ख)

मराठी सेना के सामने, दूसरी ओर चार कोस की दूरी पर अहमदशाह अब्दाली की विशाल सेना थी। जिसमें अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला की भी फौजें इस्लाम की हिफाजत और बुलन्दी के लिये शामिल हुई थीं। लेकिन शायद नवाब यह भूल गया था कि इसी पेशवा की सेना ने उसके पिता सफदर जंग की प्रार्थना पर, उसकी सहायता करके, प्रथम बार अब्दाली की सेना को मार भगाया था और उसकी रक्षा की थी। यह नवाब के लिये बहुत दिनों की बात नहीं थी।

सेना के सब से पीछे, कुछ ऊँचे स्थान पर हरे रंग की एक बड़ी सी रावटी लगी हुई थी, जिसके ऊपर अर्द्धचन्द्र अंकित एक बड़ा-सा हरे रंग का झंडा फहरा रहा था। रावटी के चारों ओर लगभग पन्द्रह हजार सैनिकों के रहने की व्यवस्था थी जो अब्दाली की विशेष प्रकार की 'निसागची सेना' थी।

सेना के सब से आगे एक छोटी-सी लाल रावटी लगी थी। सबेरे से लेकर दिन के बारह बजे तक अब्दाली इसी स्थान से सेना की देख-रेख किया करता है। लगभग दिन के दोपहर बीत चुके थे। धूप में गर्मी आ गई थी। रावटी के सामने वह अपने तुर्की घोड़े पर बैठा सटक पी रहा था।

दो-चार कश खींचने के बाद उसने अपनी गर्दन मोड़ी। अहमद काँपा।
,कैसा चढ़ाता है अहमद ?' अब्दाली बड़बड़ाया और निगाली नीचे गिरा दी।

'जी गरीबपरवर ! तवा कुछ टेढ़ा रख दिया था।' अहमद ने धीरे से कहा।

अब्दाली को हँसी आ गई। 'बड़ा चापलूस है रे तू। तवा के टेढ़े रखने से कहीं तम्बाकू की खराबी या अच्छाई का अन्दाजा लगाया जा सकता है ? गदहा। जा, दूसरी भर ला।'

अहमद मुसकराता हुआ अन्दर चला गया।

अपनी बायीं ओर, दूर पर उड़ती हुई धूल देखकर अहमदशाह ने घोड़े को मोड़ा। सरदार नासिर खाँ बलूची का घोड़ा पसीने से लथपथ हो रहा था। सरदार ने घोड़ा रोकते हुये झुककर सलाम किया। 'क्या है सरदार ? कोई खास बात ?' अब्दाली के चेहरे पर एक पतली सी शिकन झलक कर ओझल हो गई।

'सिपाहियों के कुछ गुर्गे लड़ने से इन्कार कर रहे हैं जहाँपनाह। और यह हवा धीरे-धीरे सिपाहियों में भो फैलती जा रही है। मैंने समझाने की काफी कोशिश की लेकिन उनका कहना है कि वे हिन्दुस्तान फतेह करने नहीं आये हैं बल्कि लूटने। उनका काम है लूटना। और लूट का सामान लेकर अपने वतन को लौट जाना।' उसने जरा दम ली। फिर बोला 'जहाँ तक मैंने उनके ख्यालों को अन्दाजा है गरीबपरवर, शायद उन्हें मराठों की फौजों को देख कर दहशत हो गई है।'

'हूँ।' और शाह ने पीछे देखा। रावटी के एक ओर चालीस सशस्त्र सवार जिनके हरे-हरे शलवारों के ऊपर हरे-हरे कुर्ते और सिरों पर छोटा हरा साफा, सीने पर मोटी मोटी भूरे रंग की खालें, जो पीछे से पेटियों द्वारा कसी हुई थीं—दस-दस की पंक्तियों में शाह के चारों ओर आकर खड़े हो गये। शाह ने रास झिटका। घोड़ा उड़ने लगा।

अब्दाली का घोड़ा पंक्तिबद्ध खड़े सैनिकों के बीच से निकल रहा था।

घोड़े की चाल धीमी थी। सम्भवतः उसे आभास हो गया था कि उसका मालिक सेना निरीक्षण के हेतु निकला है। इस समय उसके अंग-रक्षक दो भागों में बँट चुके थे—कुछ आगे और कुछ पीछे। घोड़ों पर बैठे हुये सैनिकों में फुस-फुसाहट होने लगी थी। लेकिन बात जबान तक आकर ही रुक जाती थी। कहने वाला इरादा करता ही रह जाता, जब तक अब्दाली का घोड़ा कुछ आगे निकल जाता। पहला फेरा समाप्त होने को था कि किसी गुर्गे ने पीछे से कहा 'गरीबपरवर।'

अब्दाली शाह रुक गया।

'कुछ कहना चाहता हूँ।' वह बोला।

अब्दाली ने घोड़ा मोड़ा 'कहो।'

'हम लोग वतन को लौट जाना चाहते हैं।'

'कितने लोग ?'

'इस टुकड़ी के करीब-करीब सभी लोग।'

'बेशक।' अब्दाली सिर हिलाता हुआ बोला 'लौट सकते हो।' उसने मराठी सेना की ओर संकेत किया 'लेकिन उनके हाथों से बच सकोगे ? तुम लोगों की वे बोटी-बोटी नोच डालेंगे कम्बख्त। काफिरों से डर कर भागना चाहता है नमकहराम !' क्षण भर में क्रोध से उसकी आँखें चमकने लगीं, 'तू नहीं जानता कि जब तक रसूले पाक की निगाह मेरे ऊपर रहेगी, इस्लाम की बुलन्दी में धब्बा नहीं लग सकता। तू बगावत के साथ इस्लाम के उसूलों को नापाक करना चाहता है।' उसने झट से तलवार खींचते हुये उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया।

अब्दाली का घोड़ा आगे बढ़ गया। फिर किसी ने प्रार्थना नहीं की।

(ग)

रात बीतती जा रही थी। बीच-बीच में, कभी कभी घोड़ों की हिनहिनाहट और हाथियों के गर्जन सुनाई पड़ जाते थे। रात सुहावनी होते हुये भी कष्टप्रद

लग रही थी। भानू पलंग पर लेटा हुआ यशोदा के बालों को बना बिगाड़ रहा था। दोनों मौन थे। यशोदा भानू के सीने पर अँगुलियाँ नचाती हुई बोली—'एक बात पूछूँ ?'

'पूछो।'

'सम्भवतः अन्तिम युद्ध तो अब बहुत शीघ्र ही होने वाला है ?'

'हाँ। परिस्थितियाँ............।'

यशोदा ने बीच में टोका 'यदि मैं भी आपके साथ युद्ध में लड़ने चलूँ तो ?' उसकी आँखें नीची थीं।

'अति उत्तम।' भानू मुसकराया 'किन्तु ऐसी परिपाटी जो नहीं है। कारण तुम जानती ही हो। पुरुषों की विशेष कर वीरों की मराठों में अधिकाई है। स्त्रियाँ तो उनके अभाव में लड़ती हैं। वैसे तुम्हारी जाति को मैं हेय नहीं समझता परन्तु तुम लोगों का क्षेत्र कुछ और है।'

'आपके सामने पुरुषों के व्यक्तित्व के अतिरिक्त और किसी का व्यक्तित्व है भी ? जब भी कोई बात होगी आप पुरुषों की श्रेष्ठता और उनकी लम्बी चौड़ी हाँकने पर जुट पड़ते हैं।'

'किन्तु मैं कुछ गलत तो कहता नहीं। जो स्वयं ईश्वर के घर से श्रेष्ठ बनकर आया हो, उसे तुम्हारे और मेरे कहने से नीचा तो नहीं बनाया जा सकता ?'

'ठीक कहते हैं।' यशोदा उठ खड़ी हुई।

भानू ने उसका हाथ पकड़ लिया। 'जरा मेरी ओर देखो।' यशोदा पृथ्वी पर आँखें गड़ाये थी। 'अच्छा, केवल एक बार देख लो, हाथ छोड़ दूँगा।'

यशोदा ने देखकर झट से आँखें फेर लीं। भानू हँसता हुआ उछल पड़ा। उसने धीरे से फिर यशोदा को पलंग पर बिठा लिया। 'अगर ऐसा न कहता तो यह कैसे देखने को मिलता यशो।' वह उसके शिर को अपने गोद में रखकर उसके पेट में गुदगुदाता हुआ हँसाने की चेष्टा करने लगा।

यशोदा बड़ी जोरों से खिलखिलाकर हँस पड़ी 'छोड़िये। अब सोने

आऊँ। रात काफी जा चुकी है। तड़के आपको उठना भी तो होता है।'

यशोदा के कोमल कपोलों को अपनी दोनों हथेलियों के बीच आबद्ध करता हुआ भानू बड़ी देर तक उसकी ओर देखता रहा फिर धीरे-धीरे बोला – 'ईश्वर के नियम विचित्र हैं यशो। मनुष्य मार काट, धन-यश विवाह-पुत्र, ऊँच-नीच, यह सब क्यों करता है? अपने सुख और मान-मर्यादा के हेतु न; परन्तु ये सारी वस्तुएँ उस से कब छिन जायेंगी इसका उसे ज्ञान नहीं। या यों कहो कि इनकी प्राप्ति में वह इतना तन्मय हो जाता है कि उसे इसकी चिन्ता तक नहीं रहती।' भानू ने पैरों से रजाई खींचकर यशोदा के वक्ष को ढक लिया 'परन्तु हम लोगों के साथ ....।'

'अब मैं आप से इस प्रकार की बातें कभी नहीं किया करूँगी। साथ चलने को क्या कह दिया कि आप जीवन-मरण के प्रश्नों को सोचने बैठ गये। मैं तो केवल पूछ रही थी। सोचा था अवसर अच्छा मिला है; कुछ इसकी भी जानकारी हो जायेगी। किन्तु आप कुछ और अर्थ लगाने लगे। खैर। युद्ध तो आये दिन होते ही रहते हैं। इसमें न सही और किसी में। आइये सोइये।' उसने एक ओर रजाई उठा दी। कुछ रुककर बोली 'पानी पीजियेगा?' वह उठ पड़ी।

'नहीं।' भानू ने करवट बदल ली। शायद होने वाले युद्ध की भयंकरता, उसकी हार जीत, जीवन-मरण और उलटे सीधे परिणामों की विभिन्न कल्पनायें उसके हृदय में शंकाओं का बवंडर उठाने लगी थीं।

यशोदा रजाई ठीक करती हुई भानू के गालों के पास अपने पतले-पतले ओठों को सटाकर बोली 'छिः, पुरुषों का हृदय कहीं इतना कोमल होता है। फिर आप सरीखे पुरुषों के लिये जिनकी थाती है—कर्म और ईश्वर। अच्छा, बोलो सोने जाऊँ?'

'हाँ।'

तब तो मैं जा चुकी। रातभर इसी प्रकार झुकी हुई निहारा करूँगी। जब तक हँसकर मेरे गालों पर चपत मारते हुये मुझे सोने के लिये नहीं

कहोगे—मैं टस से मस नहीं हूँगी। भगवान को नित्य वेद मंत्रों से भिक्षा लेते हो।'

भानू को हँसी आ गई, 'जाओ सो जाओ। सर्दी लग जायेगी।' उसने धीरे से उसके कपोलों को थपथपा दिया।

वह मुसकराती हुई अपने पलंग पर जा लेटी।

(घ)

पौष शुद्ध अष्टमी—वह बुधवार का दिन था। चाँदनी क्या दहक रही थी मानो स्वर्ण बिखेर रही हो। रात आधी से अधिक जा चुकी थी। भाऊ साहब अपने खेमे में बैठे हुये सामन्तों से विचार-विमर्श कर रहे थे। जनार्दन भानू भी उन्हीं के समीप, बगल में बैठा हुआ था। समस्या बड़ी विषम हो गई थी। क्या हो, क्या न हो—यही एक जटिल प्रश्न था। सब चिन्तित मौनावस्था में बैठे थे। अचानक बाहर कोलाहल होने लगा। प्रहरी घबड़ाया हुआ आकर खड़ा हो गया। 'क्या है बाहर ?' भाऊ साहब ने डाँट कर पूछा।

'सैनिक आप से कुछ कहना चाहते हैं महाराज !'

भाऊ साहब उठ पड़े। साथ साथ और लोग भी।

बाहर सैनिकों की अपार भीड़ थी जिसमें अधिकतर टुकड़ियों के नायक और सरदार ही थे। भाऊ साहब ने निकलते ही पूछा 'कहिये।' और उड़ती हुई दृष्टि से उन्होंने सब को एक बार देखने का प्रयत्न किया।

'इस प्रकार मरने से,' आगे का बूढ़ा सरदार जिसके बाल सफेद हो चुके थे, बड़ी नम्रता से बोला 'तो अच्छा है महाराज हम लोग अपने सीने में कटार भोंक कर सो जायँ। आपको मालूम है हम लोगों ने दो दिनों से खाना नहीं खाया है। ऐसी दशा में उचित तो यही होगा अन्नदाता कि हम लोगों को अपनी अन्तिम शक्ति के प्रयोग की आज्ञा दें और फिर जो कुछ भाग्य में बदा होगा, वह स्वयं हो जायेगा। श्रीमन्त पेशवा साहब की प्रतीक्षा करना अब बेकार है।'

'मैं आप की राय से,' भाऊ साहब गंभीर थे 'सहमत हूँ। जैसा निश्चय करें उसी के अनुसार मैं आज्ञा दूँ।'

बुड्ढा आकाश में अपनी तलवार चमकाता हुआ चिल्ला कर बोला—'भगवान को साक्षी देकर आज मैं अन्नदाता के सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरे शरीर की चाहे बोटियाँ बोटियाँ हो जायँ किन्तु प्राण रहते मेरे मालिक का कोई बाल भी बाँका न कर सकेगा और ये भुजायें अन्तिम साँसों तक अपने मालिक के रक्षार्थ उसी प्रकार लड़ती रहेंगी।'

फिर उसी प्रकार एक बार सब की तलवारें आकाश में चमकीं। चाँद की चाँदनी की चकाचौंध तलवारों की चमक से निष्प्रभ हो गई।

'ठीक है। आप लोग जायँ। सूरज निकलने के एक घंटे पहले सारी सेना खेमों को छोड़ देगी।' भाऊ साहब ने अपनी सम्मति दे दी।

सब चले गये।

सेना के मध्य में, आगे एक विशालकाय हाथी पर भगवाध्वज लहरा रहा था और उसी की छत्र-छाया में खड़े सदाशिवराव भाऊ ने अपनी तलवार को ऊपर नभ में चमकाते हुये कहा 'हर हर महादेव'; और तब सैनिकों ने कहा 'हर हर महादेव, हर हर महादेव हर हर महादेव' फिर कुछ समय तक गूँजता रहा नभ-मंडल में—ह ..र ...ह....र...म ...हा...दे...व...

अब्दाली की सेनायें 'अल्लाह दीन' करती हुई मराठों से भिध गईं। घोर युद्ध। हजारों मरे। हजारों घायल हुए। युद्ध की घनघोरता बढ़ती ही गई। भगवान भास्कर तपने लगे। और जैसे ही उन्होंने मराठों के सिर पर हाथ फेरा, मराठों ने तूफान उठा दिये। पठान विचलित हो उठे और देखते देखते अब्दाली का वजीर, शाहवली खाँ जो बीच में लड़ता हुआ दहाड़ रहा था—अकेला हो गया। उसके सैनिक उसे छोड़कर भाग खड़े हुये। वजीर भागा। इस्लाम पीछे हटा। भाऊ साहब ने अपने हाथी से खड़े-खड़े देखा। उनके लाल कपोल पर प्रसन्नता की रेखा झलक उठी। वे और भी लाल हो गये।

इतनी देर बाद जरा निश्चिन्त होकर उन्होंने अपनी गर्दन घुमाई और

दूर-पास, इधर-उधर ध्यान से देखा। अचानक जनार्दन भानू को अपने हाथी के पीछे देखकर कुछ चौंके। पुकारा 'भानू!'

'जी महाराज।' भानू ने ऊपर देखा।

'तुम्हें यहाँ रहने के लिए किसने कहा?'

'माँ ने।'

'जल्दी पीछे जाओ।'

'लड़ाई बाद चला जाऊँगा,' क्षण भर रुक कर भाऊसाहब के कुछ कहने के पहले ही उसने कहा 'आप अपना काम देखें महाराज। समय बड़ा अमूल्य है।'

भाऊ साहब आगे कुछ न बोल सके।

तीन बजने को आया। यवनों की सेनायें पीछे हटकर फिर जम गई थीं। सैनिक घोड़ों से उतर कर एक दूसरे से गुँथ गये थे। बीच-बीच में 'हर हर महादेव' और 'अल्लाह दीन' के नारों से दिशा गुञ्जरित हो रही थीं। इस प्रकार अभी घंटे भर ही हुये होंगे कि मानों किसी ने मराठों पर जादू फेंका और अचानक बायीं ओर की सारी सेना भागती हुई दिखाई दी। मैदान साफ हो गया। सेनायें भाग रही थीं और भाऊ साहब देख रहे थे। बड़े-बड़े सरदार, महारथी जिन्होंने एक बार नहीं जीवन में सैकड़ों बार ईश्वर को साक्षी देकर, सदाशिवराव भाऊ के रक्षार्थ शपथें ग्रहण की थीं—सब भागते चले जा रहे थे भाऊ साहब ने एक बार फिर अपनी दृष्टि चारों ओर घुमाई परन्तु इसमें और उसमें बड़ा अन्तर था। वे हाथी से उतरे और अपने घोड़े पर सवार हो गये। भगवा अब उनके मस्तक पर शोभा पा रहा था।

उन्होंने जनार्दन भानू की पीठ थपथपाते हुये कहा 'भानू! भइया से कहना कि उनकी आज्ञानुसार उनके आने की बहुत प्रतीक्षा की किन्तु वे अपनी सेना सहित न आ सके। मैदान से भागकर उनके नाम पर कलंक नहीं लगा सकता इसलिये अन्तिम समय उनके दर्शनों से वंचित होना पड़ रहा है। और''''''अच्छा जाओ। शीघ्रता करो।' वे अपने घोड़े को मोड़ते हुये, पास में खड़े बापूजी पन्त से बोले 'पन्त, भानू को लौटाकर तब मेरे पीछे आना। वैसे नहीं।' उनका घोड़ा आगे बढ़ गया।

'लौट रहा हूँ बापू', भानू की आँखें छलछला आई थीं सम्भवतः अभी मैं इस योग्य नहीं हो पाया हूँ। गणपति की यही इच्छा है।'

घोड़े ने मुँह मोड़ लिया।

भाऊ साहब दो सौ सैनिकों के साथ शत्रुओं पर टूट पड़े। परन्तु अचानक किसी स्त्री के कंठस्वर को सुनकर वे विचलित होकर इधर-उधर देखने लगे। जनार्दन भानू की माँ और उसकी पत्नी यशोदा शत्रुओं को चीरती हुई चली आ रही थीं। उन्होंने बढ़कर सहायता दी। कुछ अवकाश मिला।

बुढ़िया हाँफती हुई बोली 'भानू···भाऊ साहब !'

'लौटा दिया है माँ, मेरी आज्ञा से गया।'

'यह उसकी बहू है महाराज। इसने उसके स्थान की पूर्ति कर दी।' फिर वे यशोदा की ओर देखती हुई बोलीं मरते समय एक चिन्ता रही जाती है बेटी।'

'वह भी दूर किये देती हूँ माँ मैं, यवनों के हाथों में नहीं पड़ सकती।' उसने तलवार पेट में भोंक ली।

भानू की माँ के पास अब समय नहीं था। उन्होंने तलवार उठाने का प्रयत्न किया परन्तु वह उठते उठते फिर झुक गई। और घोड़े से गिरता हुआ, उनका अर्ध-चेतन शव कह रहा था 'हर···हर···म···हा··दे···व···!'

भाऊ साहब आगे बढ़ गये।

दूसरे दिन अब्दाली शाह की आज्ञानुसार हजारों की संख्या में भिश्ती, लाशों को धो-धो कर कुछ पहिचानने का प्रयत्न कर रहे थे। दिन भर लग गया। शाम हुई लेकिन जिसकी तलाश थी वह नहीं मिला। दूसरे दिन भी उसी प्रकार काम लगा रहा—कुछ और अधिक परन्तु सब बेकार। वह पवित्र आत्माधारी वीर सम्भवतः अपने शरीर को भी पवित्र बनाना चाहता था। उसका शव यवनों के हाथों में पड़े उसे गवारा नहीं था। भाऊ साहब की लाश नहीं मिली और उसे आज तक भी नहीं खोजा जा सका।

१४ जनवरी १७६१ को पानीपत के मैदान में यह महान युद्ध हुआ था।

दो

(क)

जनार्दन भानू का घोड़ा भागता चला जा रहा था। वह किधर जा रहा था, उसका उधर जाना उसके लिये सुरक्षित था अथवा नहीं, इस मार्ग पर उसे मृत्यु मिलेगी या जीवन ये सारी बातें उसने अपने घोड़े पर छोड़ दी थीं। घोड़ा भागता चला जा रहा था। अभी वह कुछ ही दूर आगे गया होगा कि अचानक 'अल्लाह दीन' के नारों के साथ हजारों शीश भू पर लोटते दिखाई दिये। उसे भास हो गया कि उसका भी रास्ता पुराना ही है। वह काँप उठा, उन राक्षसों की विकरालता को देखक । उसे अपने प्राणों की चिन्ता होने लगी। वह भूल गया भाऊ साहब के सन्देशों को। वह भूल गया उसके व्यक्तित्व को। वह भूल गया माँ, स्त्री और उस महान शक्तिवान ब्रह्म को जिसे सर्वज्ञ, सर्वगत और सर्वस्व मानता चला आया है। उसने घोड़े की रासों को खींचते हुये दूसरी ओर मोड़ना चाहा परन्तु घोड़ा मुड़कर फिर उसी मार्ग पर भागने लगा। क्रोधित भानू ने यथा-शक्ति रासों को ऊपर की ओर ताना। घोड़ा हिनहिनाता हुआ दोनों पैरों पर खड़ा हो गया और जब उसके पैर पृथ्वी पर गिरे तो वह फिर उसी दिशा पर था।

भानू विवश हो गया। उसकी चेष्टा कहीं घोड़े को भी न खो बैठे सोच कर शान्त हो गया। विवशता ने भगवान का पल्ला पकड़ा। उसने सोचते हुए मन को सान्त्वना दी कि जब बिना सर्वव्यापी के संकेतों के वृक्षों की पत्तियाँ तक नहीं हिलतीं तब प्राणों का मोह कैसा? उसने रास ढीली कर दी। घोड़ा कुछ दूर और आगे जाकर अचानक एक ओर को मुड़ गया। जैसे उसे रास्ता ज्ञात हो संध्या होते-होते जनार्दन भानू पानीपत गाँव में आ पहुँचा। घोड़ा गाँव के बाहर हुआ ही था कि किसी ने पीछे से पुकारा 'जनार्दन भानू! भानू!'

भानू ने घोड़ा रोकते हुये पीछे की ओर देखा। वह घोड़े से कूद पड़ा 'आप, दीवान साहब ?'

जुनकोजी शिंदे के दीवान रामाजी पन्त का सिर नीचा हो गया; बोले 'घोड़े को छोड़ दो। हम लोगों के साथ चलो।'

भानू उनके साथ हो लिया और कथनानुसार अपने वस्त्रों को स्थान-स्थान पर नोच डाला।

रात घनघोर अँधेरी। दस बारह मनुष्यों का वह छोटा सा दल, अपनी-अपनी श्वासें रोके—बढ़ता चला जा रहा था। वे लोग किधर जा रहे थे, कहाँ जा रहे थे, इसका उन्हें ज्ञान नहीं और न उन्हें चिन्ता ही थी। लगभग ये लोग डेढ़ या दो कोस ही आये होंगे कि घोड़ों की टापें सुनाई दीं और देखते-देखते इस्लाम के रक्षकों ने काफिरों को घेर लिया। एक बार फिर तलवारें खड़कीं। परन्तु ठीकरों का चट्टानों से क्या मुकाबिला! ३ मराठे काट डाले गये। परन्तु भानू रामाजी पन्त के साथ बच निकला।

रात अँधेरी होती चली जा रही थी और भानू रामाजी पन्त के साथ भागता चला जा रहा था। रात अँधेरी से उजेले में परिवर्तित होने लगी। तब पक्षियों का मधुर कलरव। इस समय तक भानू रामाजी पन्त के साथ लगभग दस कोस की मंजिल तय कर चुका था। हृदय में आशा की भावना जागृत होने लगी थी। प्राणों को रखना और खोना—दोनों की विपरीत दिशायें होते हुये भी मोह एक ही जैसा है।

आठ घंटे मौन रहने के उपरान्त जनार्दन भानू बोला 'भरोसा रखिये दीवान साहब। वह सर्वव्यापी और सर्वरक्षक है।'

'हूँ।' जैसे अभी उनके हृदय में भय की आशंका बनी हुई थी।

'किधर को चल रहे हैं? कुछ इसका भी ज्ञान है दीवान साहब?'

अभी चुपचाप चले चलो। सबेरा होने पर देखेंगे।' कहकर रामाजी चुप हो रहे।

टप टप टप......टप टप टप टप टप टप .....'दीवान साहब'? भानू

रामाजी पन्त को रोकता हुआ धीरे से बोला, 'सवार मालूम हो रहे हैं।'

'किस ओर ! भानू !!' दोनों वहीं खड़े हो गये। कलेजा धक धक करने लगा।

टप टप टप ...... आवाज समीप होती गई। भानू ने शीघ्रता की और निकली हुई बड़ी-बड़ी घासों में, घुटनों के बल रेंगता हुआ उसने अपने को छिपा लिया। रामाजो पन्त अभी इधर उधर ही हो रहे थे कि पच्चीस सवारों के एक जत्थे ने उन्हें घेर लिया। उनमें से अधिक लम्बी दाढ़ी वाला जो अपनी दाढ़ी से भी अधिक काला दिख रहा था हँसता हुआ बोला 'तुम तो जानते हो मियाँ, बुजदिलों की मौत बड़ी बुरी होती है। और फिर उन बुजदिलों की, जिन्होंने अपने मालिक के साथ दग़ा की हो।' वह बड़ी जोरों से हँसा 'अल्लाहताला को एक काफिर और नजर कर रहा हूँ।' उसने तलवार घुमाई। रामाजी पन्त का सिर धड़ से अलग हो गया। सब हँसते हुये आगे बढ़ गये।

यह हृदयविदारक दृश्य ! भानू की आखों से आँसू आ गये। वह चुप-चाप घासों से निकला और साहस करके भी उस बुड्ढे दीवान की ऐंठती हुई काया को दुबारा न देख सका। वह सोचने लगा जीवन-मरण, दोस्त-दुश्मन, हार-जीत सुख-दुख और ...और क्या—बस इन्हीं के हेतु तो ये बड़े बड़े युद्ध। लाखों प्राणों की आहुतियाँ। और ये नर-पिचाश ! वह फूट-फूट कर रोने लगा। मनुष्यों को काटकर ईश्वर को भेंट करने वाले इन्होंने अपने धर्म को इतना नीचे गिरा दिया है ? वह बैठ गया। पैरों के साथ-साथ अब उसके मन ने भी जवाब दे दिया था। उसकी व्यथा, जोवन का अस्तित्व और इनसे भी अधिक विराग की भावनायें जोवन की सार्थकता पर घृणा करने लगी थीं। उसने निश्चय कर लिया जिन्दगी से मौत ही अच्छी है। और इसी कारण बिना भय के, निश्चिन्त होकर वह वहीं बैठ गया। परन्तु उसका यह आत्म-विश्वास बहुत समय तक न टिक सका। दूर की झाड़ी में खरखराहट हुई। उसका सारा ज्ञान काफ़ूर हो गया और बिना सोचे समझे वह पैरों को सिर पर रखकर भागा।

लगभग दो कोस तक वह उसी प्रकार हाँफता भागता चला गया और जब

तनिक दम लेने के विचार से रुकना चाहा तो सामने फिर कुछ वैरियों को आते देख, वह हताश होकर गिर पड़ा। वह उठा। उसके पैर लड़खड़ाये। वह गिरा। उसने फिर साहस किया और रेंगता हुआ घासों में छिप गया।

सवार निकलने लगे थे। दो, चार, छे, आठ, दस और ग्यारह...सवार रुका। वह घोड़े से कूद पड़ा। सब सवार रुक गये। उसने भानू को घसीटते हुए बाहर लाकर खड़ा कर दिया। सब हँस पड़े। उसने म्यान से तलवार निकाली। जिन्दगी और मौत—एक दूसरे की जानी दुश्मन. फिर भी साथ छूटता नहीं। तलवार उठी। बगल वाले बूढ़े सिपाही ने डाँटा 'रहमत! लड़का है। जाने दो। भाग जा लड़के। जहाँ तक भाग सके। भाग।'

जनार्दन भानू के पैरों में स्फूर्ति आ गई।

(ख)

दूर तक, महासागर की भाँति, क्षितिज को छूने वाली उस विशाल ऊसर भूमि में, वह अकेला इधर-उधर, चारों ओर सतर्कता से देखता हुआ लपकता चला जा रहा था। जहाँ तक दृष्टि जाती, कहीं गाँवों का नामोनिशान तक नहीं था। फिर भी आशा घसीटते लिये जा रही थी। भूख-प्यास और लगातार रात दिन चलते रहने की थकान पर जैसे उसने विजय पायी हो। वह चलता जा रहा था, बिना किसी मंजिल के। वह कुछ सोच भी तो नहीं सकता था। इसलिये कि अभी उसे जीना है और इस जीने के लिये उसे अपने को बचाना है। चाहे जैसे भी हो। यही आवाज बार बार उसके हृदय से आ रही थी और इस आवाज को वह उसकी आवाज मानता था जिसके सहारे वह सारी आपदाओं से बचता हुआ यहाँ तक आ पहुँचा है। ऐसा उसका विश्वास था।

दोपहरी हुई। फिर दिन ढलने को आया। भूख अपने साथी का अधिक साथ न दे सकी। अन्त में उसे हार माननी ही पड़ी। क्षुधापीड़ित भानू जंगली बेरों की पत्तियाँ तोड़-तोड़कर खाने लगा। उसे जीना है और जीकर कुछ करना है—इस संकल्प पर अन्य रोड़े डालने वाली शारीरिक शक्तियों ने

पैर टेक दिये। वह चलता ही रहा। अस्ताचल को जाते हुये भगवान भानु ने, जनार्दन भानू को फैली हुई धुयें की एक पतली लीक, दूर से दिखाकर इसका प्रमाण दिया कि वे भी अपने मित्र के रक्षार्थ साथ ही साथ चल रहे थे। और तब वे अन्तर्ध्यान हो गये।

भानू का चित्त प्रसन्नता से खिल उठा। भविष्य की नाना प्रकार की कल्पनायें क्षण-भर में उस युवक हृदय को गुदगुदा गईं। वह कुछ समय के लिये भूल गया सारी आपदाओं को, चिन्ताओं को और अपने को भी। उसके मस्तिष्क में केवल एक ही वस्तु घूम रही थी—उसका उज्ज्वल भविष्य।

छोटी पहाड़ी के निकट वह बसा हुआ छोटा सा गाँव दिखाई देने लगा था। वह लम्बे लम्बे डग रखने लगा। उसे अपनी मंजिल पर अब शीघ्रता से पहुँचना था। परन्तु ज्यों ज्यों उसकी मंजिल पास आती गई, पता नहीं क्यों, उसके पैर उससे किनारा कसने लगे और वह गाँव के बाहर बनी हुई इस छोटी सी झोपड़ी के समीप पहुँचते पहुँचते बैठ गया। उसके पैर मन मन भर के हो रहे थे।

'कौन ?' किसी ने अँधेरे में ध्यान से देखते हुये पूछा।

'मैं', काँपती हुई आवाज में जनार्दन भानू धीमे स्वर में बोला 'एक भूखा-प्यासा ब्राह्मण हूँ महाराज।'

'ब्राह्मण ! कहाँ से आये हो भाई ?'

'बहुत दूर का। भूख और प्यास से कंठ सूख रहा है स्वामीजी। अधिक न बोल सकूँगा।'

पूछने वाले वैरागी ने जनार्दन भानू को सहारा देकर उठाया और झोपड़ी के समीप पहुँचा कर पुकारा 'अलिनी।'

'आई बाबा।' एक छरहरे बदन की लम्बी-लम्बी आखों वाली श्यामल लड़की द्वार पर आकर खड़ी हो गई; 'क्या हो गया है इनको ?'

'भूखे हैं। कहीं दूर के रहने वाले हैं। मेरी चौकी पर आसन बिछा दो।' उन्होंने भानू को लिटाते हुये अलिनी की ओर देखा 'दूध तो होगा बेटी?'

'जी हाँ। गर्म कर लाऊँ?'

'हाँ फुर्ती से।'

दूध पीकर भानू तख्त पर फिर लेट गया। बदन चूर-चूर हो रहा था। बाबा झुकते हुये बोले 'भोजन के उपरान्त सोना। अभी नहीं, भगवान को भजो।' वे कुछ बुदबुदाते हुए अन्दर चले गये।

जनार्दन भानू भोजन करने के उपरान्त कब सो गया ज्ञात नहीं। शायद तख्त पर पड़ते ही नींद आ गई थी। प्रातःकाल कुछ सर्दी अनुभव करने के कारण उसकी नींद खुल गई। गद्दी और लिहाफों के बीच रहने वाली शरीर कम्बलों में कहाँ तक ठंढ आड़ सकती थी। उसकी नींद खुल तो अवश्य गई परन्तु पलकें आखों पर ही लदी थीं। वे किसी प्रकार खुलने में असमर्थ थीं। वह करवट बदलता हुआ सिकुड़कर फिर सो जाने का प्रयास करने लगा। किन्तु अचानक किसी मधुर कंठ से निकली हुई सुरीली आवाज को सुनकर स्वप्नों की दुनिया बसाने लगा। कुछ समय तक उसे स्वप्न का ही भ्रम बना रहा परन्तु यह स्मरण आते ही कि वह जाग्रत अवस्था में है, कुछ सचेत हुआ। शब्द साफ-साफ सुनाई पड़ने लगे थे, 'प्रभु तुम हरो जन की पीर ...।' बड़ी मिठास थी गले में। उस कंठ से निकले हुये शब्द थिरक-थिरक उठ रहे थे। वह एक एक पंक्ति को बार बार तोड़-तोड़ कर, भिन्न भिन्न आरोह-अवरोह के साथ गा रही थी। भानू का हृदय उस स्वर लहरी में खो गया।

गीत समाप्त हुआ। भानू ने कम्बल से सिर निकालकर देखा। उठने का समय हो चुका था। वह उठकर बैठ गया। बगल में पड़ी हुई चौकी पर दृष्टि गई। वह खाली थी। संध्या को वैरागीजी यहीं बैठे हुये थे। उसने सोचा दैनिक क्रियाओं के हेतु बाहर गये होंगे। आते ही होंगे। मुझे भी तो पता नहीं कि मैं हूँ कहाँ? किधर को जाना है। पूछ लूँ तो चलूँ। उनसे अन्य

जानकारी की बातें भी ज्ञात हो जायेंगी। उसने उठकर कुटिया के द्वार को खोल दिया। सामने. दूर पेड़ों के पीछे प्रकाश होने लगा था।

'बैठकर पूजा हो रही है? मैं तो सोच रही थी अभी निद्रा देवी से छुट्टी ही नहीं मिली होगी।' अन्दर के द्वार से प्रवेश करते हुये उसने मुसकरा कर पूछा।

भानू ने गर्दन मोड़कर देखा—चमकते हुये प्रकाश में जैसे कमलिनी खिल रही हो। उसकी आँखें नीची हो गईं। बोला 'अभ्यास तो ऐसा ही रहा है... किन्तु बाबाजी अभी तक नहीं आये।' उसने सोचा, अतीत को कहने से क्या लाभ 'आज्ञा ले लेता तो जाता। आप लोगों के उपकार...।'

'बहुत अधिक हैं। यही न?' हँसती हुई अलिनी बीच में टोक पड़ी—'अच्छा उठो। अभ्यास है तो पूजा आदि से निवृत्त होकर फिर चले जाना। पता नहीं ऐसा अवसर आये न आये। मिले हुये को त्यागना किस लिये?'

'किन्तु आप......।'

'देखो अतिथि, 'आप' शब्द में न तो एकरूपता है और न घनिष्ठता की भावना। मुझे 'तुम' कहकर सम्बोधित किया करो। समझे। मैं बुरा नहीं मानूँगी। अच्छा उठो। तुम्हें स्नान आदि का स्थान दिखा दूँ।'

भानू चुपचाप उठ खड़ा हुआ। परन्तु उसे पैरों में कुछ तकलीफ मालूम हुई। आँगन में आकर उसने उड़ती दृष्टि से देखा—पैर सूज रहे थे। अलिनि आँगन के दाईं ओर वाली कोठरी से एक सफेद धोती और छोटा सा एक गेरुए रंग का टुकड़ा ले आई। पीछे की पटिया को हटाती हुई बोली 'सामने तालाब देख रहे हो?'

भानू अलिनी को देख रहा था। उसके रूप यौवन को देख रहा था। उस के अंग प्रत्यंग को देख रहा था और देख रहा था उसके ममत्व को। उसने वैसे ही कह दिया 'हाँ।'

अलिनी ने उसके हाथों में कपड़े दे दिये।

दैनिक क्रियाओं के उपरान्त भानू ने उस निर्मल जल में स्नान किया और

शान्त-चित्त होकर पूजन पर बैठा। पर अचानक माँ और यशोदा के चित्र खिंच आये। कल्पना साकार हो गई। आखें डबडबा आईं। उसे पछतावा होने लगा। उसे भी लड़ाई में जूझकर मर जाना चाहिये था। उसने सोचा। नेत्रों से आँसू बहने लगे। बड़ी देर तक उसकी ऐसी ही दशा बनी रही। परन्तु कुछ समय उपरान्त चित्त शान्त होने पर कुछ सोचता हुआ पूजन के हेतु चित्त को एकाग्र करने लगा।

पूजन से जब उठा तो दिन काफी चढ़ आया था। उसने शीघ्रता की। किन्तु इसके पहिले कि वह अलिनी से कुछ पूछे; अलिनी ने आँगन में पड़ी हुई मचिया की ओर संकेत किया और बोली 'धूप में बैठ जाओ।' उसने दूध के भरे हुये गिलास को उसके हाथों में थमा दिया।

'बाबाजी अभी तक नहीं आये?' भानू ने बाहर की ओर देखा।

'आते ही होंगे। पहले जल्दी से दूध पी लो।' वह अन्दर चली गई। भानू चुप रहा। दूध पीने लगा।

थोड़ी देर बाद अन्दर से आवाज आई 'दूध पी चुके?'

'हाँ।' उत्तर मिला।

अलिनी एक परात लिये बाहर निकली। परात को भानू के पैरों के समीप रखती हुई बोली 'इसमें पैर रखो।'

'क्यों?' भानू ने आश्चर्य से पूछा।

'पहले रखो तो सही। 'पूछना' तो तुम्हारे जैसे पीछे पड़ा हो।' वह उठकर अन्दर से पतीली में गर्म पानी और कुछ फटे हुये सफेद कपड़े ले आई। 'अब 'क्यों' की बात समझ में आ गई? पैर सूजे हुये हैं। चलने में कष्ट होता होगा। जाते समय मैंने देखा था।'

'अलिनी ....।' भानू कुछ कहकर भी न कह सका।

'यह मेरा कर्तव्य है अतिथि! इससे तुम वंचित नहीं कर सकते।'

'लेकिन इसे मैं स्वयं भी तो कर सकता हूँ।'

'हाँ कर सकते हो किन्तु जब मैं करने दूँ तब तो।' आगे बिना कुछ बोले

वह कपड़े भिगो भिगो कर पैरों को सेकने लगी। थोड़ी देर रुककर उस ने कहा 'चल पाओगे इन पैरों से ?'

'मगर चलना तो है ही अलिनी !'

'और यदि संन्यासी बनाकर यहीं रख लूँ तो ?'

'साध बहुत दिनों की है। कोई सहायक नहीं मिला था। जीवन की बड़ी भारी अभिलाषा पूरी हो जायगी।'

इस बार अलिनी ने उसकी ओर देखा। वह आँखों के द्वारा भानू के हृदय में पहुँच जाना चाहती थी। हँसकर बोली 'जीवन से इतनी विरक्ति !' अभी से ! अन्त तक खींच पाओगे इसे ?'

'प्रयत्न करना अपना कर्तव्य है। फल का झूठा मोह क्यों ?' वह अलिनी के हाथों को रोकता हुआ बोला 'इतना न लाद दो अलिनी, जिसे लेकर आगे चलने में कठिनाई मालूम होने लगे। जीवन का रूप बड़ा भयानक है। इसे मैंने अपनी आँखों देखा है। तुम्हें उसका अन्दाज न होगा।' भानू अलिनी की निष्कपट सेवा का मूल्य आँकने में असमर्थ हो रहा था। उसने पैर खींच लिये।

अलिनी ने परात उठाते हुये वैसे ही सहज भाव से कहा 'भयंकरता और प्रलय के बीच ही में तो सृष्टि की उत्पत्ति हुई है अतिथि, फिर हम तुम डर-कर, कण-कण में फैली हुई इन विशाल भावनाओं से लुक छिपकर, बचकर, कहाँ शरण पा सकेंगे ? इसे तो सोचो। रही लादने वाली बात, वह मेरी निज की है।' वह परात साफ करके अन्दर रखने चली गई।

भानू सुनकर अवाक् रह गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या कहे क्या न कहे। अचानक उसकी नजर दरवाजे की ओर गई। बाबाजी का स्मरण हो आया। उसने पूछा 'आप के बाबाजी अभी तक आये नहीं ?'

अलिनी हँसती हुई निकली 'बड़े लोगों के साथ में अधिक रहना पड़ा

है। क्यों? अच्छा। खाना क्या खाओगे?' साधारण रूप से लपेटे हुए जूड़े को वह खोलने लगी।

भानू अपनी त्रुटि को समझ गया परन्तु उधर ध्यान न देता हुआ बोला 'मैंने बाबाजी के बारे में पूछा था।' उसने अलिनी की ओर देखा। सुन्दरता साकार हो गई थी। उसकी दृष्टि झुक गई।

नितम्बों तक लटके हुए बालों को इधर-उधर छितराती हुई वह बोली 'अपनी मचिया को इस द्वार के सामने खींच लो। तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर भी देती जाऊँगी और भोजन भी पकाती रहूँगी।' वह आँगन के दूसरी ओर वाली कोठरी में चली गई। सम्भवतः वही उसका रसोईघर था।

भानू कुछ अन्यमनस्क हो गया। चुपचाप मचिया खींचकर द्वार के सामने बैठ गया।

'हाँ तो तुम बाबा के'···चौके में बैठती हुई अलिनी ने भानू की ओर देखा। वह सन्न रह गई, 'कुछ त्रुटि हो गई अतिथि।' वह भानू के झुके मुख को देख रही थी। रुक कर कुछ सोचती हुई बोली 'बाबा ने जाते समय मुझसे कहा था कि उनके लौटने तक तुम्हें यहीं रोक रखूँ। क्यों रोक रखूँ, इस के उत्तर में उन्होंने मराठों और यवनों में होने वाले युद्ध की ओर कुछ संकेत किया था। मैंने अधिक पूछने की आवश्यकता नहीं समझी। प्रातःकाल बहुत तड़के, जैसा परसों निश्चित हो चुका था—वे अपने शिष्यों से मिलने चले गये। वे सम्भवतः तुम्हारी परिस्थितियों को नहीं समझ पाये थे। तुम्हारा जाना अनिवार्य है। तुम्हें जाना ही चाहिये।' वह चूल्हे में प्रज्वलित अग्नि को बुझाने लगी।

भानू ने उसकी ओर देखा। उसके मुखमंडल पर पूर्व की ही भाँति शान्ति और सौम्यता झलक रही थी। वहाँ किसी प्रकार का अन्तर नहीं था। उस ने सोचा कितना उदार है हृदय! न दुख की चिन्ता, न सुख की उत्सुकता। सब कुछ उसके लिये मानो समान है। उसने कुछ साहस करके कहा 'क्या आग की आवश्यकता अब नहीं पड़ेगी?'

'लौटकर जला लूँगी। तुम्हें विदा करने कुछ दूर साथ चलूँगी ही। तुम्हें रास्तों का ज्ञान भी कराना है।' वह उसी प्रकार मुसकरा रही थी।

'बाबाजी की अनुपस्थिति में फिर तुम कहाँ रहोगी?'

'इसी कुटिया में। रहने का अभ्यास है। डर नहीं लगता। उठो। समय नष्ट करने से क्या लाभ। आगे का गाँव कुछ फासले पर है। पहुँचते-पहुँचते संध्या हो जायेगी।' वह हाथों को धोकर तैयार हो गई।

भानू कुछ और कहना चाह रहा था लेकिन अलिनी ने ऐसा अवसर ही नहीं दिया। उसे उठ जाना पड़ा। वह चुपचाप उसके पीछे हो लिया। परन्तु उसका हृदय किसी टीस के कारण फटा जा रहा था। वह आज के दिन अब और रुक जाना चाह रहा था। वह अलिनी की आज्ञा लेकर जायेगा। अपनी तबीयत से नहीं। परन्तु बिगड़ी को बनाना जो कठिन होता है।

बाहर का द्वार बन्द करती हुई अलिनी बोली 'इधर से आओ।' वह कुटिया के दाहिनी ओर मुड़ गई।

भानू अब अपने को न रोक सका, 'एक बात कहूँ अलिनी!'

'कहो।' अलिनी उसी प्रकार आगे चल रही थी।

'यदि आज न जाकर, मैं कल जाऊँ तो। तुम्हें बुरा लगेगा?'

अलिनी रुक गई। मुड़कर देखा। भानू पृथ्वी की ओर देखने लगा था। वह लौट पड़ी। पीछे-पीछे जनार्दन भानू भी।

कुटिया के बाहर अलिनी ने मचिया निकालकर रख दी और 'मनु-स्मृति' उसके हाथों में देती हुई बोली 'इसे पढ़ो। तब तक मैं भी झट से भोजन बनाये लेती हूँ।' वह अन्दर चली गई।

भानू ने एक दो बार नहीं, चार छे बार 'मनु स्मृति' पढ़ डाली है परन्तु इस समय वह कहता क्या। चुपचाप बैठकर पन्ने उलटने लगा। एक बार उसके मन में यह भी आया कि क्यों न पुस्तक यहीं रखकर अपने पथ पर निकल चला जाय? सम्भवतः उसे बाहर बैठना बुरा लगा था। परन्तु वह ऐसा कर न सका।

थाली आगे बढ़ाती हुई अलिनी ने कहा 'खाओ।'

'और तुम !' भानू ने आश्चर्य से पूछा।

'संध्या को तुम्हारे साथ खाऊँगी।'

'इस समय नहीं ?'

'केवल एक समय खाती हूँ। दिन में अभ्यास नहीं है। चलो खाओ। थाली सामने आने पर बैठना नहीं चाहिये।'

भानू खाने लगा।

भोजन साधारण होते हुए भी स्वादिष्ट था। भानू ने खाते हुए पूछा 'बाबाजी कब तक आयेंगे ?'

'पन्द्रह बीस दिनों के बाद, दूर-दूर के कई गाँवों में जाना है। उनके शिष्यों का बड़ा अनुरोध था। छे सात वर्षों के उपरान्त इस वर्ष अवसर मिला है।'

फिर कोई बातचीत नहीं हुई। नतमस्तक भानू भोजन कर रहा था और अलिनी सामने बैठी उसे ध्यान से देख रही थी। वह सम्भवतः उसके विषय में बिना उससे पूछे किसी निष्कर्ष पर पहुँच जाना चाह रही थी। 'पन्द्रह बीस दिनों का समय बड़ा लम्बा समय है, नहीं तो उनकी आज्ञानुसार उनके आने के बाद ही जाता।' भानू ने मौन भंग किया। 'अभी तो मुझे यह भी नहीं मालूम कि इस समय मैं हूँ कहाँ और अभी कितनी दूर मुझे चलना है। पानीपत से यह स्थान कितने फासले पर है ? इसका कुछ ज्ञान है ?'

'लगभग बीस बाईस कोस के।'

'और यहाँ से ग्वालियर ?'

'इसका अनुमान नहीं। परन्तु बाबा से सुना है कि वह यहाँ से बहुत दूर है। तुम्हें क्या ग्वालियर जाना है ?'

'उससे भी आगे—पूना। किन्तु इस समय तो ग्वालियर ही जाऊँगा। वहाँ घोड़े का प्रबन्ध हो जायगा।'

भानू भोजन कर चुका था। अलिनी ने उठते हुए कहा 'उठो।'

—o—

तीन

अंधकार की बढ़ती हुई गरिमा को देखकर मार्तंड छिपना चाह रहे थे। अपनी मर्यादा को बचाने का अब यही एक उपाय था। फिर भी अपनी शक्ति का परिचय दिये बिना न रह सके। एक बार सम्पूर्ण नभ-मंडल लाल हो गया।

आँगन में बैठा हुआ जनार्दन भानू 'जैमिनि-दर्शन' पढ़ रहा था। अलिनी दोपहर को चौका बर्तनों से निवृत्त होकर कहीं चली गयी थी। कहाँ जा रही है? कब तक आयेगी? इस विषय में उसने कुछ बतलाया नहीं। केवल शीघ्र लौट आने का ही संकेत किया था। यद्यपि अलिनी का जाना भानू को अच्छा नहीं लगा परन्तु उसे रोका भी कैसे जा सकता था? मन मसोस कर रह गया।

उसके जाने से भानू के हृदय में एक प्रकार की ऐंठन क्यों होने लगी? वह उसे अपने पास क्यों रखना चाह रहा था? इन बातों पर उसे स्वयं आश्चर्य होने लगा था। फिर भी उसकी आँखें, बाहर हवा की सनसनाहट के भ्रम में, बार-बार द्वार की ओर देखने लगती थीं। उसकी दुनिया जैसे अलिनी ने छिपा ली हो। पुस्तक उसके सामने अवश्य खुली हुई थी परन्तु उसका मन किसी और संसार में भ्रमण कर रहा था।

अचानक पट-पट के शब्दों से उसके ध्यान की लड़ियाँ बिखरीं। उसने द्वार की ओर देखा। दो बकरियों के बीच, चार छोटे छोटे बच्चे उछलते-कूदते, कानों को पटपटाते चले आ रहे थे और उनके पीछे उनकी स्वामिनी अलिनी। ऊपर खींचकर बाँधे हुए जूड़े में लाल फूलों की छोटी माला किसी नये रूप का निर्माण कर रही थी। क्षणभर के लिये भानू की पलकें रुकीं और टिक गईं।

अलिनी ने मुसकराते हुये पूछा 'दिन भर तबीयत नहीं लगी क्यों?'

'नहीं तो। यह पुस्तक उठा लाया था। पढ़ता रहा।' भानू ने बहाना किया।

'दर्पण होता तो तुम्हें दिखाती। तब तुम्हें ज्ञात होता कि यह बिगड़ी हुई चेहरे की आकृति पढ़ने से हो गई है या किसी चिन्ता से।'

भानू कुछ न बोला। मौन रहा। अलिनी आँगन के कोने में बनी हुई छोटी-सी कोठरी में बकरियों को बाँधने चली गई। लौटकर बोली 'संध्या को स्नान करते हो?'

'ऊँहूँ।'

'पूजा?'

'नहीं।'

'तो अब उठकर कमरे में चलो। सर्दी पड़ने लगी है। तब तक मैं दूध दूहे लेती हूँ। फिर भोजन का प्रबन्ध करूँगी।'

भानू उठकर कमरे में चला गया।

दूध निकालकर बकरियों के फंदों को सतर्कता से देख-भाल कर उन्हें मजबूती से बाँधा। तदुपरान्त अपनी कोठरी के दिये को जलाकर भानू के पास पहुँची। लकड़ी के बने चिरागदान पर रखे हुए दिये को जलाकर भानू के पास बैठती हुई बोली 'दोपहर को अकेले छोड़कर चले जाने से तुम्हें दुःख हुआ था अतिथि?' अलिनी जैसे भानू के हृदय की व्यथा को समझती थी 'परन्तु उससे अधिक तुम्हें साथ ले जाने में होता। बाबा के साथ-साथ ये बकरियाँ भी न जाने कैसे अपनी कोठरी से निकल भागी थीं। सबेरे दूध पीने में तुमने ध्यान नहीं दिया। वह गाय का था। यदि आज दोपहरी को इतना परिश्रम न करती तो सम्भवतः ये मिलतीं भी नहीं। खैर। इस समय खाओगे क्या? सबेरे मैंने तुम से पूछा तो अवश्य था किन्तु बनाया अपनी इच्छा से।'

भानू को कारण सुनकर उतनी ही प्रसन्नता हुई जितनी किसी मनुष्य

को खोई हुई चीज की अनायास प्राप्ति पर। उसने अलिनी की ओर देखा; 'जो तुम खाओगी वही मैं भी।' उसने कहा।

'किन्तु उतने में श्रीमान् का पेट नहीं भरेगा। सारी रात करवटें बदलते बीत जायेंगी।'

'बीतेगी मेरी न कि तुम्हारी। इसकी चिन्ता मुझे है।'

'अच्छी बात है। जैसी तबीयत।' वह मुसकराई।

चौके से गोरसी निकालकर आँगन में रखा। उसके ऊपर की कुछ राख निकालकर बारह-एक शकरकन्दियाँ रखकर राख से ढक दिया। बाद ऊपर कुछ कंडे रखकर जला दिये। आग पकड़ने लगी। वह दूध के बर्तन को उठा लाई। उसे एक मिट्टी के बर्तन में छानकर गोरसी पर बैठा दिया।

बाहर के द्वार को बन्द करती हुई बोली 'चलो मेरी कोठरी में।'

'क्यों?'

'सोने के लिये।'

'और तुम!'

'मैं भी वहीं सोऊँगी। मेरे साथ सोने में कुछ घबराहट होगी?' अलिनी मुसकराई।

'नहीं नहीं। मैंने वैसे ही पूछा। पता नहीं वहाँ दो व्यक्तियों के लिये प्रबन्ध हो या नहीं। तुम्हें अनावश्यक उलझन में डालने से क्या लाभ?' भानू अपने वाक्यों का विश्लेषण करता हुआ उठ खड़ा हुआ।

अलिनी की कोठरी में दो छोटी छोटी चौकियाँ बिछी थीं। एक ओर एक कोने में तानपूरा रखा था और उसी से सटे हुये एक छोटे से आले में दो चार कापियाँ और एक दो पुस्तक। दूसरी ओर एक अरगनी बँधी थी जिस पर दो चार सफेद कपड़े झूल रहे थे। अलिनी की दुनिया इतने में ही थी।

बाहर वाला कम्बल भानू के हेतु दूसरी चौकी पर बिछाते हुए अलिनी बोली 'इस चौकी पर तुम सोओगे और उस पर मैं। इस कोठरी में सर्दी कम

लगती है। चारों ओर से घिरी हुई है। अच्छा, जरा बैठो। भोजन के प्रबन्ध को ठीक करती आऊँ।'

लगभग सेर भर दूध और छे-एक शकरकन्दी अपनी थाली में रखकर शेष एक बड़े कटोरे में दूध और थाली में शकरकन्दियाँ और थोड़ा गुड़, अलिनी ने भानू की ओर खिसका दिया। अपने हाथों से शकरकन्दियाँ दूध में मलते हुए उसने कहा 'यदि इस प्रकार तुम्हें खाना न पसन्द हो तो सूखी शकरकन्दियाँ खा लो, बाद में दूध पी लेना किन्तु मेरे विचार से दूध में मलकर खाने से अधिक स्वादिष्ट प्रतीत होगा।'

भानू कुछ न बोला। एक-दो शकरकन्दियाँ उसने यों ही सूखी खाईं फिर दो-तीन दूध में मलते हुये उसने कहा 'शरीर को तुमने यहाँ तक तपा लिया है अलिनी?'

'अभी शरीर कहाँ तपी है अतिथि। अभी तो आत्मा को तपा रही हूँ। देखो कब तक तपती है। उसके तपते ही शरीर को तपाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। और ऐसा होने का उपाय है अभ्यास—निरन्तर का अभ्यास।'

'लेकिन मैं समझता हूँ, इससे भी सरल और सीधा मार्ग एक और है। उसे क्यों न अपनाया जाय? क्या इन पचड़ों से बचकर स्वयं उस सर्व-सर्वा के चरणों में अपने को पूर्ण रूप से समर्पित कर देना उचित न होगा? मेरे विचार से यह अधिक सुगम और सुखदायी है।'

अलिनी कुछ सोचती हुई धीरे से बोली 'यह उससे भी कठिन है अतिथि' वह तो अभ्यास की चरम सीमा है—महान् अभ्यास। तब वहाँ दूध और शकरकन्दी में अन्तर नहीं रह जाता। दोनों समान हो जाते हैं। दुःख-सुख, जीवन-मरण, लाभ-हानि, यश-अपयश—सब की तौल एक ही काँटे पर होती है।' वह कटोरा मुँह से लगाकर दूध पीने लगी।

दोनों चुप हो गये। भानू बड़ी गम्भीरता से कुछ सोचने लगा।

कोठरी के द्वार को बन्द करके अलिनी ने कहा 'तुम थोड़ी देर के लिये मेरी चौकी पर बैठ जाओ। तुम्हारे कम्बल में चादर लगा दूँ।'

भानू उठकर अलिनी के तख्त पर बैठ गया। 'तुमने अभी तक ब्याह क्यों नहीं किया अलिनी? मेरी ओर तो अधिकतर अल्प आयु ही में विवाह हो जाया करते हैं।'

'इधर भी वैसा ही है। किन्तु मैंने तो उस नियम का पालन नहीं किया। क्यों नहीं किया, यह मेरे लिये भी रहस्यमय है। एक दो बार बाबा ने संकेत भी किया था परन्तु मैंने नाहीं कर दी। बाबा सम्भवतः यह सोचकर चुप रहे कि अभी मैं इसकी आवश्यकता नहीं समझती', उसने भानू की ओर देखा 'अगर कर लिया होता तो तुमसे कहाँ भेंट हुई होती अतिथि।' वह हँसने लगी।

'अब भविष्य के लिये क्या विचारा है?'

वह चादर कम्बल में लगा चुकी थी। भानू के पास बैठती हुई बोली 'वह स्वयं असत्य है। उस पर सत्य का निर्माण कैसे किया जाय। उसकी कल्पना धोखे की टट्टी के अतिरिक्त और कुछ नहीं। ऐसी दशा में उस पर पूर्व विचारना कहाँ तक सही होगा—तुम स्वयं सोच सकते हो।'

'आशा, सृष्टि की देन है और कर्मण्यता की जननी भी। जो आज वर्तमान है कल भविष्य भी होगा अलिनी।'

'हाँ, सो तो है। परन्तु उस कथित कर्मण्यता में एक शंका की भावना जो निहित है, जो कभी भी किसी ओर ले जा सकती है। उस समय वह उल्टा सीधा देखने का अवसर नहीं देती। यही उसकी त्रुटि है।'

भानू ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह अलिनी की ओर देखता रहा।

'मेरी ओर क्या घूर घूर कर देख रहे हो?'

'वही देख रहा हूँ जिसके देखने की सबेरे से लालसा लगी हुई है। दिन में कई बार प्रयत्न किया कि तुम्हें पूरी तौर से देख लूँ परन्तु ये आँखें जैसे डर सी गई हों। उठतीं नहीं कि फौरन नीचे को झुक जाती हैं। लेकिन इस बार······?'

अलिनी धीरे से भानू के गाल पर थपथपाती हुई हँसकर बोली 'बुरी बात

है अतिथि। ऐसा करने से पाप होता है। चलो सोओ।'

भानू की दुनिया उसके हृदय में सिमट कर आ गई। वह चुपचाप अपनी चौकी पर आकर लेट रहा। कुछ समय बाद भानू ने मौन भंग किया 'नींद आने लगी ?'

'नहीं तो। क्यों ?'

'तुम्हारी माताजी का स्वर्गवास कब हुआ था ?'

'मेरे माता-पिता दोनों ही बाबा हैं। इन्होंने ही मुझे पाल-पोसकर बड़ा किया है। मेरी माँ के विषय में मुझे कुछ जानकारी नहीं। मुझे बाबा ने, झाड़ियों में नवजात शिशु के रूप में पाया था। शायद मेरी जन्म देने वाली स्त्री कोई कुलटा थी।

भानू सन्न रह गया। अलिनी को वैराग्य जीवन की ओर खींच ले जाने वाली शक्ति के अन्तराल में छिपी हुई यही व्यथा थी—उसे अन्दाज हो गया। अलिनी सम्भवतः इसी के प्रायश्चित्त हेतु, जीवन के इस ऊबड़-खाबड़ काल में भी, अपने को घसीटती हुई कठोर से कठोर व्रत की ओर अग्रसर होती चली जा रही थी। यही उसके जीवन का कल्याण मार्ग है। भानू अलिनी के विषय में, उसके व्यक्तित्व और कर्तव्यनिष्ठा के विषय में, उसके ज्ञान और निर्भीकता के विषय में और इनसे भी अधिक उसकी निष्कपटता के विषय में सोचता हुआ कब सो गया, उसे विदित नहीं।

प्रातःकाल नित्य के समय अलिनी की स्वर-लहरी उसके तानपूरा के साथ लहरा उठी। भैरव राग में निकलते हुये एक-एक शब्द साकार हो गये। उसका भुलावा उसकी तन्मयता को मूर्तिमान करता चला जा रहा था। भानू सुन रहा था। वह गा रही थी—

जागती है मेरी दुनिया सो रहे नभ के सितारे॥
किस व्यथा की प्रेरणा से आज जीवन तार झंकृत,
कौन ऐसी कल्पना में गूँजते होकर अलंकृत,
मौन मेरी साधना में आ गया हलचल किनारे॥

तुम नये इस रूप से लेकर नया सन्देश आये,
सृष्टि के कण-कण में देखा प्रीत यौवन रूप छाये,
आ बसो मेरे हृदय में साँस डोरी के सहारे ॥
छा गया है चाँदनी में रूप मानों आज तेरा,
मिट न आये यह कभी फिर प्रात में आकर सबेरा,
यह भुलावा आज साथी दे रहे क्यों बेसहारे ॥

अलिनी तानपूरा लेकर उठती हुई बोली 'स्नान करने अभी जाना है या कुछ समय रुक कर ?'

'नहीं अभी। किन्तु इच्छा थी......।'

'स्नान पूजा के उपरान्त। तुम्हारी विदाई के समय। आज तुम्हें जाना भी तो है।'

भानू उठकर नहाने की तैयारी करने लगा।

स्नान और पूजा से निवृत्त होकर जब भानू आँगन में रखी हुई मचिया पर आकर बैठा तो सूर्य की किरणें उसके चेहरे पर पड़ रही थीं। गोरसी पर मिट्टी के बर्तन में रखे हुए दूध को थाली में ढालते हुए अलिनी ने पूछा 'आज तुम्हारा चला जाना अनिवार्य है ? सोचती थी जीवन......किन्तु तुम्हारा जाना शायद इस रुकने से अधिक महत्व रखता है अन्यथा तुम्हें रुकने में काहे की अड़चन होती ?'

'कल मैं.' भानू ने अलिनी की ओर देखा 'लौटा भी तो नहीं था अपनी इच्छा से और आज जाना भी नहीं हो सकता। अब रही आने वाले कल की बात, उसे कल देखा जायगा।'

अलिनी ने कोई उत्तर नहीं दिया। गिलास में दूध देकर वह रसोईघर में चली गई। फिर कुछ समय तक दोनों अपने-अपने कार्यों में व्यस्त रहे। अलिनी चौके के साथ और भानू अपनी कल्पनाओं में। परन्तु कल्पनायें उसके मस्तिष्क में अधिक देर तक टिक न सकीं। कारण, उसके मूल में छिपी उसकी वास्तविकता का इतना समीप सम्पर्क। अन्त में उसे अलिनी को ढूँढ़ना

ही पड़ा और तब उसे स्मरण आया कि अलिनी अभी से भोजन कार्य में क्यों व्यस्त हो गई ? 'अभी तो दूध,' उसने पूछा 'पिया है अलिनी। भोजन की क्या जल्दी थी ?'

'बैठे बैठे घर में क्या करोगे। जल्दी से भोजन कराकर तुम्हें पहाड़ी दिखाने ले चलूँगी। प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ-साथ समय का भी अच्छा उपयोग हो जायेगा। चलोगे तो सही ?' अलिनी ने चौके से पूछा।

'चलूँगा क्यों नहीं, और फिर तुम्हारे साथ ! यह चलना तो जीवन पर्यन्त हो सकता है अलिनी।' भानू के कहने में वास्तविकता थी।

अलिनी भानू की वास्तविकता का अनुभव करके भी टाल देना चाहती थी। उसने सुनी-अनसुनी करते हुये कहा 'जाओ, कोई पुस्तक ही उठा लाओ। तुम पढ़ते जाना मैं सुनती रहूँगी।'

भानू को यह अच्छा नहीं लगा परन्तु नाहीं भी नहीं किया जा सकता था। उसे विवश होकर जाना ही पड़ा। कात्यायन लिखित 'कात्यायन-गृह्यसूत्र' पढ़ने लगा।

(ख)

उस सुन्दर ताल की भुजाओं में आबद्ध वह छोटी सी पहाड़ी सिमिट कर खो गई थी। हरी साड़ी पर गुच्छेदार फूलों की लाल-लाल कढ़ावट उसकी सुन्दरता में चार चाँद लगा रहे थे। उसे भी अपनी सुन्दरता पर नाज़ था। अलिनी ने हाथ बढ़ाते हुए कहा वैसे तुम नहीं चढ़ पाओगे। हाथ पकड़ो।'

हाथ पकड़ते ही उसने झट से ऊपर खींच लिया। भानू ने अलिनी का हाथ छोड़ना नहीं चाहा। परन्तु अलिनी ने धीरे से मुक्त कर लिया। दोनों ऊपर चढ़ते रहे। आगे-आगे अलिनी और पीछे-पीछे भानू। अब दोनों पहाड़ी की चोटी के समीप तक चढ़ आये थे। चरवाहों का गोल नीचे छूट चुका था। केवल आस-पास दो चार बकरियाँ और गायें चरती हुई दिख रही थीं। अलिनी रुकती हुई बोली 'थक तो नहीं गये ? ऊपर चलकर बैठेंगे। वहाँ बैठने योग्य चिकने चट्टान हैं।'

'नहीं थकूँगा क्या। चलो वहाँ से सारे दृश्य भी अच्छे दिखाई देंगे।'

फिर दोनों मौन चढ़ने लगे।

ऊपर पहुँचकर भानू पत्थर के सहारे एक चिकने चट्टान पर बैठ गया! पास में अलिनी भी बैठ गई। दोनों खामोश थे। सामने नीचे की ओर, मोरों के जोड़े कुछ चुनते हुए इधर-उधर उछल रहे थे। प्रकृति का सौन्दर्य-सम्मोहन केवल मनुष्यों को ही नहीं वरन् सारे जीव-धारियों को वशीभूत कर लेता है परन्तु उसका यह आकर्षण एक सा नहीं है—यही उसकी विशेषता है। अलिनी ने बिना भानू की ओर देखे ही कहा 'कुछ सोच रहे हो ?'

'नहीं।' कह कर चुप हो रहा। कुछ रुककर बोला 'सोचने को अब रहा ही क्या अलिनी! पिताजी का स्वर्गवास पहले ही हो चुका था। माँ की छत्रछाया और पत्नी के अटूट प्रेम से निरुत्साहित जीवन में फिर एक बार उत्साह की भावनायें उमड़ी थीं किन्तु विधाता को शायद यह अच्छा नहीं लगा। उन्ह ने इनको भी छीन लिया।' भानू का गला भर आया था 'अब अकेला हूँ इस संसार में। धन की कमी नहीं। नाते रिश्तेदारों की कमी नहीं। पूना पहुँचने पर ये सब कुछ हो सकते हैं लेकिन......लेकिन.......' भानू ने अलिनी का हाथ पकड़ लिया 'क्यों मेरा साथ न दे सकोगी अलिनी ?'

अलिनी ने देखा भानू के नेत्र सजल हो आये थे। वह दूसरी ओर देखती हुई बोली 'मेरा शरीर पतित है अतिथि। दुष्टा माँ के गर्भ से.......।'

'बस बस। रहने दो,' भानू ने अपने हाथ से अलिनी के मुँह को बन्द कर दिया और धीरे से उसे अपनी गोद में लिटाते हुए बोला 'इतनी सी बात के लिये इतनी बड़ी चिन्ता। कोई तुमने पाप किया है !' भानू कुछ आगे न कह सका। उसकी आँखें अलिनी के मुखमंडल पर टिक गईं।

अलिनी कुछ लजा-सी गई। शीघ्रता से उठती हुई बोली 'चलो चलें। बकरियाँ भी आती होंगी। उनको बाँधना है।'

दोनों उतरने लगे। उसी प्रकार मौनावस्था में। परन्तु दोनों के हृदयों में एक हलचल थी, बेचैनी थी और मीठी-मीठी गुदगुदी। बीस पचीस पग

उतर कर अलिनी रुक गई। उँगलियों से संकेत करते हुये उसने पूछा 'उसे देखते हो अतिथि ?'

'हाँ' भानू ने एक बार उधर देखा और फिर अलिनी की ओर 'क्षितिज को कह रही हो ?'

'उनको किसी ने अलग होते नहीं देखा। आकाश और पृथ्वी का यह अटूट प्रेम चिरस्मरणीय है।' वह बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये फिर चलने लगी। उत्तर की उधेड़बुन में भानू सोचकर भी कुछ न कह सका।

अलिनी के बहुत कुछ कहने पर भी भानू ने उसे भोजन पकाने नहीं दिया और अन्त में चिराग जलते जलते दोनों ने वही शकरकन्दी और दूध ग्रहण करके अपने को कोठरी में बन्द कर लिया। अलिनी ने पहले भानू के बिस्तर को लगाया उसके उपरान्त अपना। दोनों अपने-अपने तख्त पर बैठ गये। टिमटिमाते दिये के प्रकाश में दोनों के चेहरों से भावों का अनुमान लगाना तो बहुत कठिन था फिर भी यह साफ था कि दोनों अभी सोना नहीं चाह रहे थे। परन्तु श्रीगणेश कैसे हो सम्भवतः यही एक अड़चन थी।

'एक बात,' दीवार के सहारे टेकती हुई अन्त में अलिनी बोली 'पूछूँ अतिथि ? बुरा तो न मानोगे ?'

'पूछो।'

'मैंने बहुत विचारा। बहुत समझा। तर्क भी किया लेकिन अन्त में इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकी कि पानीपत के मैदान में होने वाले युद्ध से तुम्हारा क्या सम्बन्ध रहा है ? और क्यों रहा है ? तुम्हें देख सुनकर भी तो इस प्रकार का ऐसा कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता।'

भानू मुसकराया—'अन्त में तुम्हें पूछना ही पड़ा ? चलो, तुमने यह प्रश्न पूछ कर मेरी बड़ी भारी उलझन दूर कर दी वरना मेरी आधी जान तो इसी में घुटी जा रही थी। सच कहता हूँ अलिनी, तुम्हारे निष्कपट स्वभाव और एक अपरिचित व्यक्ति पर, बिना जाने समझे, तुम्हारे सन्देहरहित विश्वास ने मुझे आश्चर्य में डाल दिया था। मैं बार-बार चाहता था कि तुम्हें

कुछ अपना परिचय देकर तुम्हारे अटल विश्वास की पुष्टि कर दूं लेकिन तुम इसका अवसर ही नहीं देती थीं। मैं मन मसोस कर रह जाता था।'

'परिचित-अपरिचित की जानकारी किसी को देखकर थोड़े होती है अतिथि इसका सम्बन्ध तो हृदय से है। और इसी सम्बन्ध के आकर्षण से परिचित अपरिचित और अपरिचित परिचित हो जाता है। रही तुम्हारी बात। सो तुम्हें केवल आकर्षण ही नहीं मिला था वरन् साथ ही महान् आतिथ्य पद की प्राप्ति भी हुई थी।'

'तुमने सम्भवतः पेशवा का नाम सुना ही होगा। यहाँ से बहुत दूर, ग्वालियर से भी बहुत आगे, एक सुन्दर और सम्पन्न नगर पूना है। इसी पूना को तुम पेशवा की राजधानी समझो। मेरे पिताजी इन्हीं पेशवा के शासन में फर्दनवीस के पद पर बहुत समय तक कार्य करते रहे किन्तु उनकी मृत्यु के उपरान्त......।'

'फर्दनवीस का अर्थ तो शायद कागज लिखने वाले से होगा ?' अलिनी ने बीच में टोका 'परन्तु युद्ध से तुम्हारा क्या सम्बन्ध ? वैसे तुम्हारी सरकार का कोई नियम हो उसे मैं नहीं कह सकती।'

'फर्दनवीस का अर्थ तो यही होता है जो तुमने बताया है। किन्तु वास्तविकता कुछ और है। नाम जितना छोटा है, काम उतना ही बड़ा। सारे राज्य के आय-कर का हिसाब और उसकी जाँच-पड़ताल, सैनिक तथा विभिन्न पदों पर काम करने वालों के वेतन और उनका वितरण, राज्य के कोष की देख-रेख और उसकी वृद्धि के हेतु प्रयत्न और साधन। कहने का तात्पर्य कि द्रव्य सम्बन्धी सारे मसलों को इसी छोटे नामधारी फर्दनवीस को देखना पड़ता है।' भानू मुसकराया 'रही युद्ध में आने वाली बात, यदि युद्ध में न आया होता तो हुजूर के दीदार......।'

अलिनी हँस पड़ी, 'रहने दो, यह तुम्हारी अपनी वस्तु नहीं है। किसी की नकल है।'

भानू भी हँसने लगा। 'तुम्हारे सिवा और किसकी हो सकती है। अब तो

सब कुछ तुम्हीं से सीखना है।' भानू जैसे अलिनी की आँखों से उतर कर उसके हृदय में पहुँचने का उपक्रम कर रहा था।

'राजाओं और महाराजाओं के सम्पर्क में रहते-रहते चापलूसी की आदत पड़ गई है,' अलिनी उसी प्रकार हँस रही थी, 'हाँ, फिर तुम्हें युद्ध में क्यों आना पड़ा? बात कुछ और हो रही थी, कहने लगे कुछ और।'

'युद्ध की अधिकतर बातें गोपनीय होती हैं। उन्हें हर स्थान पर कहना मना है। और तुम तो जानती ही हो कि दीवारों के भी कान होते हैं। सम्भव है सेना के साथ-साथ मेरा चलना अर्थात् फर्दनवीस का चलना किसी विशेष रहस्य का कारण हो। ऐसी दशा में तुमसे चिल्ला-चिल्ला कर बताना, कहाँ तक उचित है तुम स्वयं समझ सकती हो।' भानू की बनावटी गम्भीरता कुछ और संकेत कर रही थी।

'तो रहने दो। मुझे तुम्हारी कथा सुनने की आवश्यकता नहीं। तुम अपना रहस्य अपने पास रखो। युद्ध समाप्त हो गया किन्तु रहस्य का महत्व अभी बना ही रहा?' अलिनी के कथन में भी बनावटीपन था।

'अलिनी!' भानू के नेत्रों ने कुछ याचना की।

अलिनी ने देखा और धीरे से आकर उसकी चौकी पर बैठ गई 'यही चाह रहे थे कि तुम्हारे समीप बैठकर तुम्हारी बातें सुनूँ? चलो सुनाओ।'

भानू ने खींचकर उसे अंक में भर लिया। 'मेरी प्रतीक्षा करोगी अलिनी?' वह बोला।

'जब तक बाबा जीवित हैं। उसके बाद नहीं।'

'मुझे इतना ही चाहिये। मैं बहुत शीघ्र लौटूँगा।'

'मनुष्य का सोचना और उसका वैसा ही होना उसके वश की बात नहीं है अतिथि। यह किसी और के हाथ की चीज है।'

'परन्तु विश्वास में एक आनन्द है अलिनी और उसी के सहारे मनुष्य कर्तव्य परायण होकर फल की प्राप्ति में अग्रसर होता रहता है।'

अलिनी ने कोई उत्तर नहीं दिया। वैसे ही चुपचाप पड़ी रही। कुछ रुक

कर बोली 'सर्दी अधिक है। धूप निकलने पर ही जाओगे ? अगले गाँव में तुम्हें रुकना ही पड़ेगा। संध्या के पहले-पहल वहाँ पहुँच जाओगे।'

'ठीक है। धूप निकलने पर ही जाऊँगा। जोगी का भेष तुमने बना दिया है, माँगता खाता ग्वालियर अब पहुँच जाऊँगा।'

'और .....' अलिनी ने उठने के लिये कम्बल उठाया लेकिन भानू ने उसे जोरों से दबा लिया और पतले-पतले कोमल ओंठ किसी भारी बोझ के कारण आगे कहने में असमर्थ से हो गये।

भानू के गाल पर एक हलकी थपकी देती हुई अलिनी बोली 'अच्छा, अब सो जाओ।' वह उठकर अपनी चौकी पर चली आई।

बहुत सबेरे तानपूरा की भनभनाहट से भानू की नींद टूट गई। उसे सुनाई पड़ा। अलिनी गा रही थी—

'जानकर अनजान बन जा......।'

भानू उठकर बैठ गया, अलिनी ने दुहराते हुए गाया—

जानकर अनजान बन जा।
प्रेम की सृष्टी बनाकर आज तू भगवान बन जा।
मौन है संसार मानव, मौन हैं सारी दिशायें;
मौन है जग का जगतपति, मौन हैं सारी व्यथायें;
मौनता की वेदना में मौनता का ज्ञान बन जा।
भूल जायेगी प्रकृति सब भूलने वाली कथायें;
पर कभी क्या मिट सकेंगी प्यार की सम्मिलित व्यथायें;
तू नये शृंगार से नवरूप का आधार बन जा।
विश्व में जो आज मिलता कल उसी का छिन है जाना;
हँस-विहँस कर बन सँवर कर कब है मिटता कौन जाना;
इस न जाने और जाने का तू नव विज्ञान बन जा॥

गीत समाप्त करते हुए अलिनी ने भानू की ओर देखा और तानपूरा

रखती हुई उठ खड़ी हुई। नित्यकर्म का समय हो गया था। कम्बल को शरीर से लपेटता हुआ भानू स्नान के लिये चला गया।

अलिनी दूध का गिलास थमाकर चौके में चली गई। कुछ समय बाद जब वह चौके से निकली तो भानू अपनी यात्रा के लिये तैयार खड़ा था। इस बीच भानू एक बार चौका भी झाँक आया था परन्तु अलिनी अपने कार्यों से अधिक अपनी कल्पनाओं में व्यस्त होने के कारण न जान पाई थी।

'तुम सम्भवतः तैयार हो ?' अलिनी ने उरोजों को ढकते हुए पूछा।

'हाँ। तैयार ही समझो।'

'तो फिर चलो। इसे रख लो। रास्ते में खा लेना।' उसने एक पोटली भानू के हाथों में पकड़ा दी।

दोनों निकले। आगे भानू पीछे-पीछे अलिनी। दोनों मौन थे। पहाड़ी के समीप पहुँचकर भानू रुक गया, 'अब लौटो अलिनी।' उसने मुड़ते हुए कहा।

अलिनी ने झुककर भानू के पैर छुये ही थे कि उसने पकड़कर उठा लिया।—'अलिनी .....।' भानू के शब्दों में भारीपन था।

अलिनी की आँखें डब-डबा आई थीं।

'मेरी प्रतीक्षा करना अलिनी। मैं बहुत शीघ्र लौटूँगा।'

हाथ जोड़ती हुई अलिनी धीरे से बोली 'करूँगी अतिथि।'

चार

भानू की यात्रा में स्फूर्ति थी—लौटने के हेतु। संध्या होने के पहले ही वह आगे वाले गाँव में पहुँच गया। पहली गली के मोड़ पर वह दाहिनी ओर मुड़ा ही था कि किसी ने पीछे से पुकारा 'संन्यासी जी! ओ संन्यासी जी!'

भानू ठिठक कर रुक गया। आगन्तुक, जिसे देखकर अभी युवक कहा जा सकता है—हाथ जोड़ता हुआ जनार्दन भानू के सम्मुख खड़ा हो गया 'आपने शायद पहिचाना नहीं?' उसने पूछा।

भानू ने उसे एक बार ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर तक देखा। 'तुम पूना के सवार शिक्षण विभाग में कारकुन थे?'

'जी!' आगन्तुक मुस्कराया।

'यशवन्त राव! तुम!! यहाँ!!!' भानू ने उसे गले से चिपटा लिया।

'आपने', यशवन्त राव बोला 'तो ऐसा वेश धारण किया है कि पहिचानना भी कठिन है। आप सम्भवतः अभी चले ही आ रहे हैं पीछे वाले गाँव से?'

'हाँ। यहाँ रुक............!'

'सब प्रबन्ध है। चलिये।' दोनों गली से होकर चलने लगे। 'इस गाँव का साहूकार बहुत भला मनुष्य है। उसे मराठों की पराजय और उनकी दुर्दशा की सूचना मिल चुकी है। मैं तो परसों से यहीं हूँ। आज सबेरे जाने वाला था किन्तु उसके आग्रह पर एक दिन के लिये और रुक जाना पड़ा। चलिये अच्छा ही हुआ। आपका दर्शन और साथ दोनों मिले।'

साहूकार का घर आया। दोनों चबूतरे पर चढ़कर बैठक में आ गये। अन्दर सूचना मिलने पर साहूकार निकला। यशवन्त राव से यह सुनकर कि नवागन्तुक, महाराज पेशवा के फड़नवीस और जाति के ब्राह्मण हैं— महाजन ने फौरन झुककर भानू की चरण रज को अपने मस्तक से लगाया और बहुत समय तक अपने को सराहता रहा।

आकाश में तारों की झिलमिलाहट धीरे-धीरे ओझल होने लगी। छोटे-छोटे बादल नील आकाश में तैरने लगे थे। सर्दी की ठिठुरन ने वृक्षों में कँपकँपी उत्पन्न कर दी थी। और ज्यों-ज्यों उनकी कँपकँपी बढ़ती जाती, ठिठुरन में भी उसी प्रकार वृद्धि होती गई। धीरे धीरे गाँव में, घरों के किवाड़ बन्द होने लगे और रात्रि के आगमन के पहले ही वह गाँव अंधकार के साम्राज्य में विलीन हो गया।

भानू बन्द बैठक में, खाट पर लेटा हुआ सोच रहा था—अलिनी को। और यशवन्त राव भजन के प्रबन्ध में तल्लीन था। भोजन तैयार होने पर दोनों भोजन के लिये बैठे। अचानक साहूकार अन्दर से घबड़ाया हुआ निकला और भानू के समीप बैठता हुआ बोला 'महाराज बैरी यवन यहाँ भी पहुँच आये।'

'क्या!' ऊपर उठा हुआ भानू का कौर वहीं रुक गया।

'जी हाँ। ऐसी ही सूचना मिली है। पर आप चिन्ता न करें। आराम से भोजन करें। गाड़ी का प्रबन्ध कर चुका हूँ। बहुत तड़के आप कूच कर सकते हैं।'

भानू भोजन छोड़कर उठ खड़ा हुआ।

'क्यों महाराज!' साहूकार ने आश्चर्य से पूछा।

'अब शीघ्र से शीघ्र चल देना ही उचित है साहूकार जी। रुकने पर जितना संकट हम लोगों के ऊपर आ सकता है उससे कहीं अधिक आप और आपके परिवार पर, भानू ने हाथ-मुँह धोये आप दुखी न होवें परिस्थितियों के प्रतिकूल होने पर उनका विरोध या उनसे अपने को बचाने से अधिक उत्तम है आगे के लिये उसे और अवसर न देना। अपने अहित के साथ आपका अहित करना शोभनीय नहीं। चलो यशवन्त राव। जल्दी निकल चलना ही उत्तम होगा।'

साहूकार कुछ बोल न सका। वह भानू के पैरों को स्पर्श करता हुआ हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

'अवसर मिला,' भानू ने कहा 'तो निकट भविष्य में दर्शन करूँगा।' उसने हाथ जोड़े।

दोनों घर से बाहर हो गये।

जगत को अपरिचित और मिथ्या जानते हुए भी जीवित रहने की आकांक्षा। जीवन रक्षार्थ भयानक से भयानक कष्टों और आपदाओं का सहन, असत्य को सत्य बनाने की अभिलाषा और उसकी पूर्ति के लिये अथक परिश्रम—ये सारी बातें वास्तविक होकर भी प्रत्येक के मस्तिष्क में जैसे एक पहेली बनकर सदैव घूमती रहती हैं और प्राणी विशेष लालबुझक्कड़ों की भाँति इसे बूझने का प्रयत्न करता रहता है। यह है इसकी नवीनता। भानू और यशवन्त चौकन्नी दृष्टि से लम्बे-लम्बे डग रखते हुए आगे बढ़ते चले जा रहे थे। यशवन्त को रास्ते का ज्ञान था इसलिये दिशाभ्रम की आशंका या चिन्ता न थी। दोनों चुप थे। रास्ता बीहड़ और सुनसान होते हुये भी उनके लिए उत्साह-वर्द्धक था। न तो उनके पैरों में थकान थी न सर्दी की ठिठुरन।

रात भर चलते रहने के उपरान्त जब सवेरा होने में विलम्ब दिखाई पड़ा तो उन लोगों ने एक संतोष की साँस लेकर कुछ दूर और आगे निकलने की चेष्टा की। बादल फटने लगा। और देखते देखते नभ नीलवर्ण हो गया। सामने, थोड़े फासले पर, एक गाँव दिखाई देने लगा था। दोनों ने वहीं रुकना निश्चित किया।

जनार्दन भानू, जिसे पैदल तो क्या कभी नंगे पैर चलने में भी उलझन होती रही होगी, लगातार सात दिनों तक यशवन्त राव के साथ माँगता खाता चलता रहा। समय प्रधान है। आठवें दिन ये लोग रेवारी कस्बे में पहुँचे। यहाँ का धनाढ्य साहूकार बोलोराव ने बड़े आवभगत से इन्हें अपने यहाँ टिकाया और आतिथ्य-सत्कार में किसी प्रकार की त्रुटि न होने दी। युद्धस्थल से भागे हुए यहाँ कई अन्य व्यक्तियों से भेंट हुई परन्तु प्रत्येक से पूछने पर भी भानू की माँ और पत्नी के विषय में कुछ ज्ञात न हो सका। केवल भानू

का खिदमतगार जो उन भागे हुये व्यक्तियों में एक था—इतना ही बता सका कि उसने उन्हें मैदान में घोड़े पर लड़ते हुए देखा था।

यद्यपि न रुकने के बहाने भानू के पास बहुत थे और उनमें सत्यता भी थी परन्तु बोलोराव के सत्कार और आग्रह पर एक एक दिन करते करते दस ग्यारह दिनों तक रुक जाना पड़ा। इन्कार करना उसके सामर्थ्य के बाहर की चीज थी—प्रत्येक परिस्थितियों से।

बोलोराव ने घोड़ों का प्रबन्ध किया। दिन निकलते ही, जलपान के बाद भानू की वह छोटी टोली जिसमें छै मराठे और चार ब्राह्मण थे, घोड़ों पर आरूढ़ हो गयी। बोलोराव हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। समीप खड़े भानू ने हाथ जोड़ते हुए कहा 'इतनी जल्दी जाने की मेरी भी इच्छा नहीं थी बोलोरावजी किन्तु विवशता सब कुछ करा देती है। नहीं तो आप ऐसे व्यक्ति का अतिथि बनकर रहना किसे बुरा लगेगा। अवसर मिला तो एक बार इसका आनन्द पूर्ण रूप से लूँगा।'

'मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझूँगा फड़नवीस साहब।' बोलोराव ने उत्तर दिया।

भानू ने घोड़े पर बैठते हुए एड़ लगा दी। सब डीग की ओर चल पड़े। भानू की यात्रा फिर आरम्भ हुई परन्तु यह भय और चिन्तारहित थी। सब आपस में एक दूसरे से आप-बीती बताते चल रहे थे। हर्ष-शोक मिश्रित उनकी अपनी-अपनी कहानियाँ एक दूसरे को आश्चर्य में डाल रही थीं। परन्तु भानू सब से आगे, इनकी बातों से दूर, किसी अन्य चिन्ता में डूबता-उतराता मौन चल रहा था। उसकी कल्पना जिधर भी जाती, अतीत के अतिरिक्त और कुछ समीप नहीं दिखाई पड़ता। उसे ऐसा भास होने लगा जैसे उसकी आत्मा इस एकाकीपन से छटपटाने लगी हो। वह किसी और तरफ जाना चाह रही थी लेकिन जाना किधर चाह रही है इसका उसे भी ज्ञान नहीं। उलझनों और विचारों की समस्याओं को हल करते-करते गोधूलि की बेला आ गई और सामने डीग दिखाई पड़ने लगा।

रात भर विश्राम के उपरान्त दूसरे दिन तड़के ये लोग धवलपुर के लिये चल पड़े और धवलपुर होते हुए ग्वालियर।

भानू ने जिस समय अपनी टोली के साथ दुर्ग में प्रवेश किया—वह दिये बाती का था। एक प्राकृतिक चहल-पहल का था। परन्तु किले की हालत कुछ दूसरी हो रही थी। वह ज्यों ज्यों अन्दर बढ़ता गया चीत्कार और हाहाकार के अतिरिक्त और कुछ नहीं सुनाई पड़ रहा था। अभी वह सहन भी नहीं पार कर पाया होगा कि एक खिदमतगार झुककर सलाम करता हुआ सामने खड़ा हो गया।

'क्या है?' भानू ने घोड़ा रोकते हुये पूछा।

'रानी जी ने.........।'

'कौन सी रानी जी?'

'महाराज भाऊ साहब.........।'

'क्या! वे बचकर आ गईं?'

'जी।'

'लेकिन मेरे विषय में उन्हें क्या मालूम?'

'जी। मैंने ही अभी उन्हें बताया था।'

भानू घोड़े से उतर पड़ा। दूसरे लोग दूसरी ओर चले गये।

एक बड़े कक्ष में भाऊ साहब की पत्नी पार्वती बाई पलंग पर मौन लेटी हुई इधर-उधर देख रही थीं। शरीर पीला पड़ गया। चेहरे पर झुर्रियाँ उभर आई थीं। बदन में कोई शक्ति नहीं थी। जैसे वर्षों का पड़ा हुआ कोई मरीज हो। फिर भी प्राण अटका हुआ था। आशा बड़ी बलवती होती है। भानू ने कक्ष में घुसते ही झुककर प्रणाम किया और पलंग के समीप खड़ा हो गया।

'तुम आ गये नाना।' उन्होंने धीमे स्वर में पूछा।

'जी हाँ।'

उन्होंने करवट बदली 'बैठ जाओ।' वे कुछ रुकीं 'तुम तो उनके......।'

'जी हाँ। उनके साथ-साथ था लेकिन अन्तिम घटनाओं का मुझे भी ज्ञान नहीं। महाराज के आदेशानुसार मुझे मैदान पहले ही छोड़ देना पड़ा था।' नाना ने बातों को घुमाकर उन्हें सान्त्वना देना चाहा। पर उसकी आँखें पार्वती बाई की आँखों से न मिल सकीं।

थोड़े समय तक कक्ष में स्तब्धता छाई रही। नाना किन शब्दों द्वारा उनके हृदय को शान्ति दे। आखों देखे सत्य को असत्य का जामा पहिनावे तो किस ढंग से। वह अधिक प्रयत्न करने पर भी एक शब्द न कह सका।

'अच्छा जाओ,' पार्वती बाई ही बोलीं 'आराम करो। पूना जाने के पहले मुझ से एक बार मिल लेना।'

'जी।' भानू ने झुककर प्रणाम किया और कक्ष के बाहर हो गया।'

जीवन और मरण का रूप कितना सरल और क्षणिक है। परन्तु उनके अन्तर में छिपी हुई जटिलतायें और उनके पीछे होने वाले सारे संघर्ष जिनकी स्थिरता को क्षणभंगुर जानते हुये भी, उनकी प्राप्ति और पूर्ति के हेतु अविरल प्रयत्न करना, किसी अदृश्य की महान शक्तियों का प्रमाण देना ही तो हुआ। भानू इन्हीं विचारों में खिन्नचित्त, दुर्ग में घूम-घूम कर भाग कर आये हुये बारगीरों, बख्शियों, और सिलेदारों से मिल रहा था। वह जहाँ जाता, जिधर जाता - सब तरफ रोना-पीटना ही था। माँ बेटे के लिये स्त्री पति के लिये, बेटा बाप के लिये भाई-भाई के लिये छाती मत्था पीट रहे थे। भानू का हृदय फटने लगा। युद्धभूमि में कटे हुए हजारों मस्तकों और आत्मा-रहित ऐंठती हुई लाशों को देखकर जितनी व्यथा नहीं हुई थी, उससे कहीं अधिक आज इन बिलखते हुये नर-नारियों को देखकर हो रही थी। उसका कोमल हृदय रो उठा। उसकी मानसिक शक्तियाँ शिथिल पड़ने लगीं और वह आगे न बढ़कर पीछे की ओर लौट पड़ा। परन्तु अंधेरे में किसी को झुककर सलाम करते हुये देख कर वह ठमका 'कौन?'

'सरकार को राजकुमार ने......।' खिदमतगार बोला।

'क्या! महादजी शिंदे साहब!!

'जी।'

'और श्रीमन् तुनकोजी शिंदे साहब!'

खिदमतगार का मस्तक झुक गया, 'अभी तक उनका कुछ......।'

'अच्छा। किधर चलना है?' भानू ने आगे सुनना नहीं चाहा।

खिदमतगार बाईं ओर मुड़ पड़ा।

(ख)

श्रीमन्त पन्त प्रधान बाजीराव पेशवा प्रथम की बढ़ती हुई शक्ति और साम्राज्य विस्तार ने उन्हें विवश किया कि वे अपने दूर तक फैले हुये साम्राज्य को अलग-अलग व्यक्तियों के जिम्मे अलग अलग भागों में बाँट दें। कसौटी पर परखे हुये उनके सेवकों का भाग्य चमका। शिंदे को ग्वालियर का इलाका मिला। होलकर को इन्दौर का नागपुर के अधिपति भोंसले हुये और बड़ौदा के गायकवाड़ परन्तु राज्य संचालन के आदेश सारे पेशवा द्वारा दिये जाते थे जो पूना की मसनद पर, परिवार क्रमानुसार एक के बाद दूसरे और दूसरे के बाद तीसरे बैठने के उत्तराधिकारी होते थे। यद्यपि बाजीराव का यह बटवारा एकता और दृढ़ता की वृद्धि के विचार से हुआ था परन्तु आगे चलकर, भावनाओं की उच्छृङ्खलता और अपनत्व की चाह ने इसके विपरीत रास्ते को अपनाया। फलस्वरूप, परिणाम अन्त का विदित है।

यद्यपि उम्र के हिसाब से महादजी नाना से पन्द्रह वर्ष बड़े थे फिर भी दोनों युवकों का अधिक सम्पर्क और विचारों की अभिन्नता के कारण मित्रों जैसा ही व्यवहार था। दोनों एक दूसरे को मित्र समझते थे और दोनों में पटती थी। अतः खिदमतगार द्वारा महादजी के जीवित लौट आने का समाचार सुनकर नाना को उतनी ही प्रसन्नता हुई जितनी महादजी को कुछ देर पहले नाना के दुर्ग में प्रवेश करने की सूचना पाकर हुई थी।

भानू के कक्ष में प्रवेश करते ही महादजी पलंग पर उठकर बैठे और अपनी दोनों भुजाओं को फैला दिया। 'मैं उठ नहीं सकता मित्र।' उन्होंने भानू को गले से लगाया।

पास में रखी हुई हाथीदाँत-मढ़ित तिप्पद पर बैठते हुये भानू ने महादजी के पैरों की ओर देखा 'चोट लग गई ?'

'गणनाथ की कृपा थी नाना कि केवल पैर ही टूट कर रह गया नहीं तो प्राणों के लाले पड़ गये थे। वह यवन क्या था साक्षात् राक्षस था। तुमसे सच कहता हूँ, अब भी, कभी-कभी स्वप्न में उसकी डरावनी सूरत देखकर भय से काँप उठता हूँ।'

भानू हँसने लगा। 'अब पैर की क्या हालत है ?'

'ठीक हो रहा है। आशा है जल्द ठीक हो जायेगा। खैर।' ये सब बातें तो पीछे होंगी। पहले नहा धो लो उसके बाद। बहुत सी बातें अभी करनी हैं।'

दोनों मित्रों ने भोजन साथ-साथ किया और फिर बड़ी रात गये तक मराठों की इस पराजय और उसके कारण साम्राज्य पर आने वाले संकटों के विषय में तर्क-वितर्क होते रहे। बातों के दौरान में दोनों ने अपनी गाथायें भी बतलाईं। और अन्त में, शेष कल के लिये छोड़कर, दोनों सोने की चेष्टा करने लगे।

बातचीत करते तथा लोगों से मिलते-मिलाते भानू को वहाँ दो-तीन दिन और रुक जाना पड़ा। वैसे महादजी की राय थी कि पैर ठीक हो जाने पर वे भी पूना साथ साथ चलेंगे परन्तु भानू की मनःस्थिति बड़ी डावाँडोल हो रही थी। जिस उत्साह और आनन्द की नई कल्पनाओं में ओत-प्रोत, अलिनी से विदा लेकर शीघ्र लौटने का उसने वायदा किया था—सब मोम की भाँति पिघल कर पानी होता जा रहा था। युद्ध की विभीषिका का नग्न-नर्तन उसे ग्वालियर दुर्ग में ही देखने को मिला था। उसे जीवन का वास्तविक रूप और उसकी स्थिरता का महत्व आज विदित हुआ। उसने निश्चय कर लिया—जीवन को सुखी और कल्याणकारी बनाने का केवल एक मात्र साधन है सृष्टिकर्ता की सृष्टि से अपने को खींचकर कर्ता की ओर अपने को रत कर लेना। उसे एकबार पुनः अलिनी का ध्यान आया जिसे वह प्रतीक्षा के बन्धन में स्वयं

बाँधकर आया था; पर यह सोचकर कि मिथ्या जगत के रहने वाले स्वयं सब मिथ्या हैं इसलिये उसके कहे और किये हुए कर्म भी तो मिथ्या हुये। अतः ऐसी दशा में वह किसी प्रकार भी दोषारोपण का भागी नहीं हो सकता' उसके आज तक के सारे कर्म असत्य और अर्थहीन थे। परन्तु अब वह सत्य और सारयुक्त कार्यों की ओर बढ़ेगा जिसके हेतु जीवन की उत्पत्ति हुई है।

भानू के हृदय में पूर्ण रूप से वैराग्य की भावनायें फैल चुकी थी। उसका चित्त संसार के बन्धनों से मुक्त होकर स्वच्छन्द विचरण के लिये छटपटाने लगा। लेकिन हृदय के किसी कोने से आवाज आई—'भाऊ साहब' के सन्दे......' वेग से बढ़ता हुआ जलप्रवाह मानो किसी शिला-खंड के पथ में पड़ जाने के कारण इधर उधर फैल गया हो। कुछ शिथिलता आ गई हो। बात छोटी होते हुये भी विचारणीय थी 'स्वामी और सेवक का सम्बन्ध'—ने भानू के हृदय को भेदा। वह सोचने लगा। किन्तु जैसे किसी निर्णय पर तत्काल पहुँच जाने के कारण वह शान्त हो गया।

तैयारियाँ होने लगीं। चौथे दिन, महादजी से कारणों को समझा कर, दिन की तीसरी घड़ी में, एक विशाल सेना के साथ, जो पूना को प्रस्थान करने वाली थी—वह चल पड़ा।

———

पाँच

स्वयं पन्त प्रधान पेशवा के संरक्षण में एक विशाल सेना जो भाऊ साहब की सहायतार्थ पानीपत को जा रही थी, गोदावरी के समीप बुरहानपुर पर आकर रुक गई। पानीपत का दुखद समाचार उन्हें एक कासिद (चिट्ठी ले जाने वाला) द्वारा मालूम हुआ परन्तु हृदय में छिपी हुई एक अज्ञात आशा की झिल-मिलाहट इस पर पूर्णतया विश्वास नहीं करने देती थी। शायद यह उनकी मृगतृष्णा थी। वे अब किसी बख्शी या बारगीर से आँखों देखी घटनाओं को सुनकर ही पूना लौटना चाहते थे। उन्हें उड़ती हुई खबरों से यह भी मालूम हो चुका था कि भाऊ साहब की पराजय का मुख्य कारण उनके बड़े-बड़े सेना पतियों और सामन्तों का पूर्ण रूप से सहयोग न देना था।

पेशवा को जो व्यथा थी सो तो थी ही लेकिन इस समाचार ने जले पर नमक का असर दिखलाया। वे जिन सामन्तों और सरदारों को विशेष अवसरों पर हाथ खोल कर, जागीरें और धन बाँटा करते थे—उनकी यह गद्दारी। यह नमकहरामी। जले हुये फफोले फूट कर बहने लगे। उनमें और जलन बढ़ गई। उनके स्वभाव में चिड़चिड़ाहट आने लगी। बात-बात में दूसरों के लिये अपशब्द कहना तथा बुरी बुरी गाली देना, उनके लिये अब साधारण सा हो गया था। भाई-भाई का वियोग सहने में असमर्थ हो रहा था।

पेशवा के चित्त की विकलता और असहिष्णुता बढ़ती ही जा रही थी। वे कहीं भी शान्त रूप से कुछ समय के लिये बैठ नहीं पाते थे। कभी-कभी रात्रि में घंटों अपने शिविर में बैठे बैठे रोया करते। कभी किसी दिन रोते हुये चिल्लाकर कहने लगते 'भाऊ का सर्वनाश करने वाला मैं हूँ। मैंने ही उनका वध कराया है। मैं हत्यारा हूँ। मैंने अपने सुख के लिये भाई के साथ दगा की है। मैं अपराधी हूँ। नीच हूँ। मुझे इसकी सजा मिलनी चाहिये और...... ओ SSS ......' कहते-कहते वे फिर फूट-फूट कर रोने लगते। उनका यह

विलाप बहुत समय तक चलता रहता और अन्त में वे सिसकते-सिसकते सो जाते। पेशवा की नई परिणीता—वास्तव में जिनके भोग विलास में पड़कर ही पेशवा उचित समय पर युद्ध-स्थल में नहीं पहुँच सके थे—अपने कक्ष में बैठी, वेदनाग्रसित अपने पति के विलाप को सुना करती। उन्होंने पहले दो-एक बार, ऐसे अवसरों पर समझाने बुझाने की चेष्टा भी की किन्तु यह देखकर कि प्रभाव उलटा पड़ता है—वे मौन हो रहीं। पति की बढ़ती हुई इस अवस्था को देखकर उनके हृदय में एक नई आशंका उत्पन्न होने लगी थी। उनके सोचने-विचारने का दृष्टिकोण धीरे-धीरे संकुचित होता जा रहा था, जो स्वाभाविक था।

कई दिनों बाद आज पेशवा कुछ शान्त दिख रहे थे। रावटी के सामने, बरगद की छाया में एक चाँदी की चौकी पर लाल पारसी-मखमली कालीन बिछी थी जिस पर मखमली गावतकियों के सहारे प्रधान लेटे हुये बैठे थे। उनकी दाईं ओर एक छोटी सी और चाँदी की चौकी थी। उस पर मृगचर्म बिछा था और राजगुरु बैठे हुये कुछ सोच रहे थे। सबेरे की ठंडी वायु बड़ी प्रिय लग रही थी।

प्रधान गर्दन मोड़ते हुये बोले 'गुरुजी।'

राजगुरु ने जिज्ञासा हेतु प्रधान की ओर देखा।

'उस बिचारे नाना की क्या दशा हुई होगी? कहाँ गया था तीर्थाटन को और हो गया कुछ और। समय की.........' कहते-कहते वे कुछ सोचने लगे।

राजगुरु ने मजे हुये शब्दों में कहा 'समय तो प्रधान है राजा। इसका ज्ञान गुरु वशिष्ठ और योगेश्वर कृष्ण तक को नहीं था। तभी तो ब्रह्म ही को सर्वे सर्वा मानकर ऋषियों ने शान्ति का सीधा मार्ग बतलाया है।

प्रधान ने कोई उत्तर नहीं दिया। मौन कुछ सोचते रहे। सामने किसी आहट के कारण उनका सिर ऊपर को उठ गया। प्रहरी ने तीन बार झुककर सलाम किया और खड़ा हो गया।

'क्या है ?' प्रधान ने पूछा ।

'सूचना मिली है कि पानीपत के मैदान की बची हुई सेना जो इस समय ग्वालियर से आ रही है— बहुत समीप आ गई है । महाराज के आज्ञा की प्रतीक्षा है । पड़ाव किस ओर डलवा दिया जाय ।'

प्रधान का उत्सुक मन विह्वल हो उठा । बोले 'कोई विशेष ?'

'जी । नाना फड़नवीस साहब हैं । महाराज के दर्शनों की इच्छा प्रकट की है ।'

'अच्छा !' प्रधान ने विस्मय से कहा 'वह बच गया !! गणनायक की लीला भी अपरम्पार है । उसे सीधे मेरे पास भेजना । सैनिकों का पड़ाव गोदावरी जी के किनारे पड़ेगा । ठीक है ।'

प्रहरी ने फिर तीन बार झुककर सलाम किया ।

प्रधान उठकर टहलने लगे । राजगुरु ने कुछ कहकर पेशवा के चित्त को बहलाना चाहा परन्तु उनकी मुखाकृति देखकर उनके शब्द जबान तक पहुँच कर ही रुक गये । चिन्तामग्न पेशवा कितनी देर तक टहलते रहे, इसका उन्हें ज्ञान नहीं । लेकिन अचानक अपने समीप किसी को झुकते देख कर वे ठिठके । भानू ने चरणस्पर्श करते हुये मत्थे से लगाया । प्रधान ने भानू को देखा और झपटकर उसे हृदय से चिपटा लिया । आँसू की लड़ियाँ गिरने लगीं । उनके प्यारे भाऊ का प्रतिरूप मानो भानू ही था । वे बड़ी देर तक भानू को हृदय से लगाये, उसके अंग-अंग को टटोलते रहे ।

पेशवा की मन की गति स्थिर होने पर भानू ने उन्हें आसन पर बिठाया और स्वयं उनके बगल में बैठ गया । भानू की आँखें भी रो रही थीं । वह कुछ कहे इसके पहले ही प्रधान बोले 'मालूम तो बहुत पहले ही हो चुका था नाना फिर भी आशा लगी थी । खैर । भाऊ ऐसा भाई का वध कराकर मैं अब भी जीवित हूँ, यही मेरे लिय आश्चर्य की बात है । लेकिन इसका प्रायश्चित्त करूँगा जरूर,' उनके नेत्रों से फिर आँसू बहने लगे । उन्होंने कुछ रुककर कहा 'और.....और इन नमकहरामों और कमीनों को, एक एक

करके बुनियाद तक मिटा दूँगा चाहे मेरा साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट क्यों न हो जाय।' वे कुछ बुदबुदाते हुये चुप हो गये।

भानू आँखें पोंछता हुआ शान्त था।

थोड़ी देर बाद कुछ ध्यान आने पर पेशवा ने भानू की ओर देखा 'जाओ। नहा-धोकर भोजन करो।'

भानू नतमस्तक उठ गया।

दोपहरी के बाद लगभग तीन बजे पेशवा ने भानू को बुलवाया और तब एक-एक कर के आदि से अन्त तक वृत्तान्त सुनते रहे। भाऊ की दृढ़ता और पराक्रम सुनकर प्रधान रोमांचित हो उठे। उनकी गर्दन गर्व से अनायास ही तन गई परन्तु अन्त में भानू से यह सुनकर कि उनके आदेशानुसार ही भाऊ साहब ने समस्त सामन्तों और सरदारों के विरुद्ध भी अब्दाली से संधि नहीं की और आखिर तक उनकी प्रतीक्षा करते हुए अब्दाली से जूझ पड़े। पेशवा की कुछ क्षण पहले तनी हुई गर्दन ढीली पड़ गई। उनका हृदय अपनी प्रवंचना की ग्लानि से भर आया। उनका चेहरा जैसे किसी नीच कार्य के करते समय पकड़ जाने के कारण सफेद हो गया था। उनकी जिज्ञासा वाली पहली उत्सुकता जाती रही।

भानू को यह समझते देर न लगी कि उसने ऐसा कहकर प्रधान के दुखित हृदय को और दुखी बना दिया है। उसने तत्क्षण प्रसंग के रूप को बदला। 'महाराज,' वह बोला 'इतना होने के बावजूद भी स्वर्गीय श्रेष्ठ भाऊ साहब ने जिस अदम्य साहस से युद्ध किया उसे आज क्या आगे आने वाली पीढ़ियाँ भुला नहीं सकतीं। आप सम्भवतः विश्वास न करें, दिन के तीन बजे तक तो युद्ध में ऐसा मालूम हो रहा था कि अब्दाली की सेना अब भगी या तब भगी। यवनों में, करीब-करीब भगदड़ शुरू भी हो गई थी। परन्तु होनहार को क्या कहा जाय। अचानक श्रीमल्हार राव होल्कर मैदान से भाग खड़े हुये। उनका अनुकरण उनकी सेना ने किया। और फिर चारों ओर मराठों में भगदड़ मच गई। तख्ता पलट गया। राजकुमार विश्वास राव पहले ही

मारे जा चुके थे। अतः भाऊ साहब हाथी से उतरकर अपने घोड़े पर आरूढ़ हो गये और मुझे लौटने का आदेश देते हुए यवनों को ललकारा।' भानू रुका। उसने प्राचीन की ओर देखा 'वे कायरों की भाँति अपने मुँह पर कालिख पोत कर आपके तथा देश-जाति के नाम पर कलंक लगाना नहीं चाहते थे महाराज! अन्यथा वे भी हम लोगों की भाँति आज आपके सम्मुख होते। उनके अमरत्व को कौन पा सकेगा?'

पेशवा के नेत्र बहने लगे। वे बिना बोले उठकर अन्दर चले गये।

चौथे दिन कनातें बँधने लगीं। पन्त प्रधान पूना के लिये प्रस्थान करेंगे। सब तैयारियाँ हो जाने पर भानू ने अवसर देखकर पेशवा से कहा—'एक बिनती है महाराज।'

'कहो। तुम्हारे लिये भी स्नेह उतना ही है।' प्रधान ने भानू को, उसके पिता के मरने के उपरान्त सदैव इसी स्नेह से ग्रहण किया था। यह उनका बड़प्पन था।

'मैं सोचता था,' भानू नम्र शब्दों में बोला। 'यदि आज्ञा मिल जाती तो कुछ दिनों इसी पतितपावनी के तट पर विश्राम करता। मन में बड़ी अशान्ति है।' उसने निगाह नीची कर ली।

प्रधान मुसकराये 'अच्छी बात है,' उन्होंने भानू को ध्यान से देखा 'जैसी तुम्हारी इच्छा हो।'

'एक भगवान शालग्राम की मूर्ति भी चाहिये थी।'

'अन्दर जाकर छाँट लो। वहाँ कई अच्छी-अच्छी मूर्तियाँ रखी हैं।' कहकर प्रधान दूसरी ओर चले गये।

जैसे तूफान के निकल जाने पर वातावरण में एक हलकापन और नया आकर्षण आ जाता है, ठीक वैसे ही आज भानू को अपने हृदय में अनुभव हो रहा था। जीवन का नया रास्ता, नया पहलू जिसकी उसे तलाश थी—मिल गया। वह बन्धनों से मुक्त प्रभु में अपने को लीन कर लेना चाहता था। पर उसे यह ज्ञान नहीं था कि उसके मकान की भित्तियाँ जितनी मजबूत हैं

उतनी कमजोर भी। उनके बनाने और बिगाड़ने का कार्य एक ही के हाथों में है। वह जिस लगन से बनाता है, उसी लगन से बिगाड़ता भी।

भानू को गोदावरी तट पर रहते अभी कुछ ही दिन हुये थे कि अचानक एक दिन एक कासिद ने पत्र लाकर दिया। 'कहाँ से आये हो।' भानू ने पत्र खोलते हुये पूछा।

'पन्त प्रधान श्रीमन्त महाराज पेशवा के दरबार से।'

पत्र स्वयं पेशवा ने लिखा था 'अन्तिम क्षण सिर पर टँगा है। शीघ्र आओ।'

भानू ने कुछ सोचते हुये पूछा 'दशा चिन्ताजनक है?'

'जी हाँ। बहुत अधिक। सरकार की याद महाराज ने कई बार की है।'

भानू जैसे था वैसे ही चल पड़ा। पिता तुल्य मालिक की आज्ञा ने उसे और कुछ सोचने का अवसर ही नहीं दिया। परन्तु भानू को अपने स्वामी के दर्शन बदे नहीं थे। परनीरी ग्राम पहुँचते-पहुँचते उसे श्रीमन्त के स्वर्गवास का समाचार मिल गया। हृदय में जैसे किसी ने कुछ बेध कर उमैठ दिया हो। फिर भी 'आशा तृष्णा ना मरे' वाली शक्ति पर अपने को ढाढ़स देता हुआ, अधिक शीघ्र पहुँचने का उसने प्रयत्न किया। उसके पहुँचने पर पार्वती भवन की दीवारें—जिसे पेशवा ने पूना से कुछ दूर पर्वत के ऊपर बनवाया था, और जहाँ वे इस समय आत्माहीन पड़े थे—रो रही थीं।

—: द्वितीय इयत्ता :—

With Nana has departed all the wisdom and moderation of the Maratha Government.

Resident Palmer.

छे

(क)

गर्मी की रात । आधी से अधिक हो चुकी थी । हवा मन्थर गति से चलने लगी थी । शनिवार वाडा के ऊपरी भाग में, पीछे की ओर, एक छोटे से कक्ष में अब भी प्रकाश हो रहा था । कमरे का द्वार बन्द था । अन्दर फर्श पर मोटी गद्दी के ऊपर रंग-बिरंगी मखमली कालीन बड़ी सी बिछी थी और पास ही पास गावतकियों के सहारे लेटे हुये नानू और स्वर्गीय पेशवा के ज्येष्ठ पुत्र माधवराव बातें कर रहे थे । परन्तु अभी तक उनकी बातों से किसी प्रकार का कोई निष्कर्ष नहीं निकल पाया था । माधवराव ने कुछ सोचते हुये फिर कहा 'नाना, तुम्हारी बातों से मैं क्या, कोई भी असहमत नहीं हो सकता । लेकिन ऐसे समय जब साम्राज्य की बुनियाद हिलने लगी हैं, मित्र दुश्मन बनते चले जा रहे हैं, साम्राज्य के हड़पने की बाहर तैयारियाँ होने लगी हैं—तब तुम्हारा इसके प्रति क्या कर्तव्य होता है, इसे भी जरा सोचो । फड़नवीसी के लिये आदमियों की कमी नहीं । किन्तु कुसमय में, किस पर कहाँ तक भरोसा किया जाय—यही समझना कठिन है ।'

'तो दूसरे अर्थों में........।'

'देखो नाना,' माधवराव ने बीच में काटा 'तुम्हारी नौकरी कभी नौकर की हैसियत से नहीं देखी गई है । तुम्हारे या परिवार के साथ सदैव घर सा व्यवहार रहा । फिर भी मैं तुम्हें विवश नहीं करता किन्तु इतना अवश्य कहूँगा कि देश और अपने साम्राज्य को अंग्रेजों या यवनों के हाथों में सौंप कर संन्यासी बनना अधिक उचित और सराहनीय नहीं होगा । खैर । अपनी-अपनी तबीयत है ।

मुझे विश्वास नहीं था कि तुम्हारे ऐसे विश्वसनीय व्यक्ति भी ऐसे समय में मेरा साथ छोड़ देंगे।' उनका गला भर आया था।

भानू ने माधवराव की ओर देखा और कुछ सोचने लगा 'जाइये, आराम कीजिये,' वह बोला 'रात अधिक जा चुकी है। आपके कथनानुसार मुझे सब कुछ शिरोधार्य है।'

माधवराव के जाने के बाद भानू भी नीचे उतर आया।

श्रीमन्त माधवराव पेशवा पूना की मसनद पर बैठे और भानू अर्थात् अब जो नाना फड़नवीस के नाम से अधिक जाना जाता था -- साम्राज्य निर्माण में संलग्न, पेशवा के हाथ बटाने में दिन रात एक कर रहा था। पेशवा माधवराव के उत्साह और साहस ने एक नई चेतना का सृजन किया। जनता जनार्दन अपने योग्य युवक शासक की कार्य-पटुता पर आशीर्वाद देती-देती अघा रही थी। साम्राज्य उमंगों से ओत प्रोत हो उठा। नाना फड़नवीस की विलक्षण बुद्धि ने सोने में सुहागा का काम किया और देखते देखते अवनति की ओर घूमता हुआ चक्र, उन्नति की ओर घूमने लगा। लेकिन अचानक एक दिन पेशवा माधवराव के चाचा रघुनाथराव ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। स्वयं पेशवा बनने की महत्वाकांक्षा ने उसकी आँखों पर पर्दा डाल दिया था। माधवराव के सामने बड़ी विषम समस्या उठ खड़ी हुई। क्या किया जाय, क्या न किया जाय -- यह सोचने वाली चीज थी। अन्त में नाना की सलाह से अपने को रघुनाथराव के हाथों में समर्पण कर देना ही माधवराव ने उचित समझा।

रघुनाथराव पेशवा बन गया। पेशवा होते ही उसने साम्राज्य के बड़े-बड़े कार्य वाहकों को जिसे वह माधवराव का आदमी समझता था -- निकाल बाहर किया। अपने पदों से निकाले जाने वालों में सर्वप्रथम नाना फड़नवीस था। नाना की कार्य-कुशलता को वह भलीभाँति समझता था। परन्तु रघुनाथ राव ऐसे अयोग्य और क्षुद्र व्यक्ति के हाथों में पेशवागिरी की बागडोर कब तक टिक सकती थी। जनमत विरुद्ध हो गया। लोगों की तुलनात्मक भावनायें

माधवराव के पक्ष में फैलने लगीं। लोग माधवराव को फिर से पेशवा के रूप में देखने के लिये लालायित हो उठे।

उपयुक्त समय और देश की आवश्यकताओं को समझकर माधवराव ने रघुनाथराव को बन्दी बनाकर महल में बन्द कर दिया और स्वयं पेशवा होने की घोषणा की। नये लोग पदच्युत किये गये और पुराने पदाधिकारियों की नियुक्ति हुई। माधवराव की राय से नाना ने फड़नवीस का भार अपने चचेरे भाई मोरोबा पन्त को देकर स्वयं माधवराव के साथ-साथ सदैव रहने लगा। युवक हरीपन्त फड़के की योग्यता और वफादारी से प्रभावित होकर पेशवा उसे भी साथ-साथ रखने लगे।

महादजी शिंदे, जिसे माधवराव ने पहले ही नाना की सला. से ग्वालियर का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था—आज्ञा दी कि शीघ्र एक बड़ी सेना के साथ वह पूना में हाजिर होवे। इन्दौर से तुकोजी होलकर भी एक बड़ी सेना सहित पूना में उपस्थित हुये। तब विसाजी किशन के सेनापतित्व में एक विशाल सेना, जिसमें केवल पच्चास हजार अश्वारोही सैनिक थे - दुश्मनों को परास्त तथा उत्तर भारत और उसके आस पास के प्रदेशों के विजय हेतु निकल पड़े।

(ख)

अंग्रेजी सरकार की प्रभुता कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में स्थापित हो चुकी थी। अब उनका मुख्यतः व्यापारिक दृष्टिकोण न रहकर सम्पूर्ण देश पर अंग्रेजी शासन स्थापित करने की अभिलाषा जाग्रत होने लगी और इसकी बहुत कुछ पूर्ति बंगाल में कर ली गई थी। बंगाल में तेजी से बढ़ती हुई अंग्रेजी शक्ति को देखकर यही अनुमान लगाया जा रहा था कि थोड़े ही समय में अंग्रेजों की हुकूमत उत्तर भारत पर छा जायेगी।

लेकिन उन्नति का रूप जो बंगाल सरकार के सामने था उसके ठीक विपरीत मद्रास और विशेष कर बम्बई में था। दक्षिण भारत में कर्नाटक का

हैदरअली और मराठे, दो ऐसी शक्तियाँ बढ़ रही थीं जिनके भविष्य को सोचकर अंग्रेजों की सभी उम्मीदों पर पानी फिरने लगा था। मराठों की बढ़ती हुई शक्ति और प्रभुत्व को देखकर अंग्रेजों को समझते देर न लगी कि मद्रास, बम्बई तो दूर, यदि यही दशा रही तो एक दिन बंगाल भी उनके हाथ से बे-हाथ हो जायेगा। तब उनकी क्या दशा होगी? यह उनके कल्पना के बाहर की बात थी। अतः मराठा साम्राज्य का पतन ही, चाहे वह जैसे भी हो—उनके उत्थान का केवल एकमात्र उपाय था।

अपने प्राणों को जिस जोखिम में डालकर अंग्रेजों ने पुर्तगालियों, फ्रांसीसियों और मुसलमानों से, धूर्तता और युद्ध के सम्मिश्रण से, जो कुछ भी अपनी कहलाने वाली चीज हासिल की थी; उसे यों ही, अपने सामने दूसरों को बल-पूर्वक उन पर अधिकार करते कैसे देख सकते थे। यह उनके लिये लज्जा की बात थी। उनकी कुर्बानियों की बात थी। और इससे भी अधिक उनकी रोटियों की बात थी। ऐसी दशा में, इसके हेतु सब कुछ करना उनके लिये थोड़ा ही था। परन्तु यह सब हो कैसे? इसकी चिन्ता हिन्दुस्तान से लेकर लन्दन तक, नीचे से लेकर ऊपर तक सब के मस्तिष्क में एक समस्या बनकर नाच रही थी। मराठों को सैनिक शक्ति द्वारा परास्त करना अंग्रेजों के बस के बाहर की वस्तु थी।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि पेशवा माधवराव को अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति और उनके अन्तर में छिपी हुई मनोभावनाओं का ज्ञान नहीं था परन्तु पहले वे अन्य दुश्मनों को परास्त कर, गृह-कलह को दूर कर, तब उधर बढ़ना चाहते थे। समय और अवसर को देखते हुये उनके लिये ऐसा ही करना उचित था। उन्होंने अपने सरकार के प्रत्येक विभागों का पूर्ण संगठन किया। मिरासदारों (किसानों) को नई-नई छूट दी गई। राज्य के विधानों में उलटफेर किया गया। राम शास्त्री ऐसे योग्य व्यक्ति को काशी से बुलाकर सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया गया। इस प्रकार तेजी से सुधार का कार्य चलने लगा और साथ ही साथ उतनी ही तेजी से,

बाहर मराठी सेना विजय पर विजय भी करती चली जा रही थी। विशेष स्थलों पर स्वयं प्रधान पहुँचकर सेना का संचालन करते और विजयी होते। माधवराव की भुजाओं में जितनी शक्ति थी उतनी ही मस्तिष्क में। वे एक बड़े राजनीतिक और देशभक्त के साथ ही साथ योग्य सेनापति और सैनिक भी थे।

उत्थान की यह प्रगति और एक के बाद दूसरे प्रदेशों पर होते हुए आधिपत्य ने अंग्रेजी सरकार को अपने भविष्य पर चिन्तित कर दिया। क्या हो कैसे हो—इसका निष्कर्ष उन्हें अब हर हालत में निकालना ही था। बम्बई और कलकत्ते के बीच गुप्त वार्तायें होने लगीं। और अन्त में जो निर्णय हुआ उसी के अनुसार बम्बई की सरकार ने पेशवा से प्रार्थना की कि पूना व्यापारिक केन्द्र होने के कारण, अंग्रेजी सरकार एक अपने ऐसे व्यक्ति को वहाँ रखना चाहती है जो विशेष अवसरों पर या किसी उलझन के उपस्थित होने पर, आप की सरकार से बातचीत कर सके और उसे सुलझा सके।"

और उधर मास्टिन को भेजते समय, सारे मामलों को समझाते हुये, इसकी हिदायत दी गई कि 'उसे किसी भी तरह घरेलू मनमुटाव (माधवराव और रघुनाथराव के बीच) बढ़ाकर मराठों में आपसी फूट डलवानी है।'

मास्टिन का पूना में आना, नाना को बहुत ही खटका लेकिन वह विरोध न कर सका। उन दिनों पेशवा की तबीयत खराब थी और दिन प्रति दिन शोचनीय होती जा रही थी।

(ग)

कल रात ही से हजारों मनौतियाँ मानी जा चुकी थीं। लोग मंदिरों में, घरों में, मैदानों में मौन बैठे पेशवा के जीवन के लिये गणपति की आराधना कर रहे थे। नगर का सारा कारोबार बन्द-सा हो गया था। थ्यूर को जाने वाली सड़क पर तिल रखने का स्थान नहीं था। सब उधर को ही भागते चले जा

रहे थे। प्रधान की तबीयत कल रात से कुछ अधिक चिन्ताजनक हो गई थी। इसी कारण वे पूना नहीं लाये जा सके।

'नाना!' माधवराव ने धीरे से कहा।

'जी!' नाना पलंग के कुछ और समीप आ गया।

माधवराव ने उठने का संकेत किया और गावतकियों के सहारे वे कुछ बैठ से गये। उन्होंने चारों ओर नजर दौड़ाई। साम्राज्य के बड़े-बड़े सरदार उपस्थित थे। वे कुछ रुके। जैसे थक गये हों। सब लोग टकटकी बाँधे खड़े थे। 'दादा अभी नहीं आये नाना?' उन्होंने पूछा।

'आते ही होंगे। आप चिन्तित न हों। ईश्वर ने चाहा तो आप शीघ्र स्वस्थ हो जायेंगे।'

माधवराव ने कोई उत्तर नहीं दिया। किन्तु तत्काल नाक के दोनों ओर निकलकर मिट जाने वाली रेखाओं ने यही संकेत किया कि वे इसका उपहास कर रही हैं।

रघुनाथराव आया। पेशवा ने इशारे से पलंग के पास बुलाया। उनकी आँखें कुछ गीली हो गई थीं, 'दादा,' उन्होंने पलंग के समीप खड़े अपने छोटे भाई नारायण के हाथ को रघुनाथराव के हाथों में पकड़ाते हुए कहा 'मेरे मरने के बाद मसनद पर इसी को बैठाना। मैं समझता हूँ तुम को इसमें एतराज न होगा और न इन लोगों को ही।' माधवराव ने सामन्तों की ओर देखा। प्रत्येक ने स्वीकारार्थ अपने-अपने मस्तक नवा लिये। 'लेकिन इसके लिये तुम्हारे संरक्षण की अधिक आवश्यकता है। लड़कपन में कुछ उलटा सीधा न कर बैठे, इसकी देखरेख तुम्हें कुछ समय तक तो करनी ही होगी।'

माधवराव दम लेने लगे। अपनी क्षीण होती शक्ति का वे अधिक से अधिक सदुपयोग करना चाहते थे। उन्होंने रघुनाथराव की ओर देखते हुये फिर कहा 'दादा, मैंने तुम्हारे साथ क्या अच्छा किया है और क्या बुरा, अब न तो इसके बताने का समय रह गया है और न इसकी आवश्यकता ही है।

तुम मेरे पिता तुल्य हो। मैं तुम्हारे साथ भला बुरा दोनों कर सकता हूँ। और तुम्हें दोनों सहना पड़ा था। इस अन्तिम समय में अपनी सारी भूलों के लिये क्षमा की याचना करता हूँ।' पन्त प्रधान ने दोनों हाथ जोड़ दिये।

रघुनाथराव की आँखें डब-डबा आईं। खून अपनी महानता को कैसे त्याग सकता है? वह कुछ बोल न सका। माधवराव के सिर पर हाथ फेरता रहा।

'आप लोगों ने', पेशवा उसी प्रकार हाथ जोड़े बोलते रहे 'जिस लगन और कर्मण्यता सहित साम्राज्य को उन्नति की ओर बढ़ाया है, अगर यही लगन और कर्म-निष्ठा भविष्य में बनी रही तो एक दिन मेरी आत्मा यह देखकर अवश्य प्रसन्न होगी कि भारत भारतवासियों का है और इसके वैरी आपकी शक्तियों द्वारा कुचल दिये गये हैं। मुझे आशा है आपकी एकता सदैव इसी प्रकार बनी रहेगी।' वे कुछ रुके 'यदि कभी मुझसे गल्ती हो गई हो तो उसे भूल जाइयेगा ताकि भविष्य में अन्य किसी प्रकार के मन-मुटाव आपस में न पैदा हो सकें।' नारायणराव का सहारा लेकर पेशवा ने लेटते हुये करवट बदल ली।

एक-एक कर के सब बाहर चले गये। केवल रघुनाथराव, नाना और नारायणराव रुक गये। 'नारायण। दादा को लेकर जाओ। घबड़ाने की बात नहीं। मेरी तबीयत अब पहले से कुछ ठीक मालूम हो रही है। दादा को बाहर सान्त्वना देते रहना। थोड़ी देर बाद माँ को भेज देना। कुछ बातें करनी हैं।'

दोनों के चले जाने पर प्रधान ने नाना को पलंग के समीप बैठा कर धीरे से कहा 'तुम से एक बात कहनी है नाना, तुम से अधिक मैं और किसी पर विश्वास नहीं करता। तुम मेरे दादा को भली-भाँति जानते हो। साम्राज्य का लोभ उन्हें दिन रात बेचैन किये रहता है। पेशवा बनने के लिये वे कब क्या कर बैठें, यह कहा नहीं जा सकता। चूंकि मेरा समय बहुत समीप है। मैं किसी भी दशा में अब जीवित नहीं रह सकता इसलिये तुम्हारे ऊपर इसकी सब से

बड़ी जिम्मेदारी है। तुम मेरे न रहने के बाद, दादा के प्रति सदैव सतर्क रहने की चेष्टा करना अन्यथा साम्राज्य का भाग्य उलट-पुलट सकता है।' वे चुप हो रहे। दम लिया। तब बोले 'अब जाओ। यही कहने के लिये तुम्हें रोक लिया था। जाओ।'

नाना की आखों से आँसू बहने लगे। वह चुप-चाप वहीं खड़ा रहा।

'जाओ नाना। यह सदैव से होता चला आया है। मेरे साथ कोई नई बात नहीं है। अभी कुछ रमा से भी बातें करनी हैं। उनका साथ छूटेगा या और आगे तक होगा।'

नाना ने माधवराव के चरणों पर अपने मस्तक को रख दिया। वह आखें पोंछता हुआ बाहर निकल आया।

पन्त प्रधान माधवराव और उनकी पत्नी रमाबाई में क्या बातें हुई इसे बतलाना तो बहुत कठिन है किन्तु शोकपीड़ित जन-समुदाय ने दूसरे दिन रानी को हँसते हुये अपने आराध्य देव के साथ जलते देखा। सम्भवतः उनकी बातों का यही निष्कर्ष रहा होगा।

माधवराव के साथ-साथ रमाबाई ने भी अपने को अमर कर लिया।

सात

इस वर्ष पूना की ओर बरसात कुछ पहले ही शुरू हो गई थी। मूड़ा और मूठा अभी से उलझने लगी हैं। सोलह मुहल्लों का वह फैला हुआ नगर पहले से अधिक सुघड़ दिख रहा था। परन्तु उसकी सुघड़ता रात के आते ही भयंकरता में परिवर्तित हो जाती थी। प्रकृति जिस उमंग और बनाव सिंगार के साथ इठलाती हुई, अपनी जवानी को छलकाती हुई, इस ऋतु में आती है, पता नहीं क्यों, मिलन की बेला में जब एक दूसरे को पहिचानने की, आनन्द लेने की, एक सरसता बढ़ती है तो वह अधिक भयंकर और कुरूप हो जाती है। सृष्टि रचयिता का यह उलटा नियम जानते हुये भी न जानने का प्रयत्न करना ही उचित और सराहनीय है।

काली अँधेरी रात और उस पर टिपटिपाती हुई बूँदें रात को अधिक डरावनी बना रही थी। शनिवार बाड़ा की पूर्वी खिड़की से एक मनुष्य निकलकर छप छप करता हुआ शहर में अन्तर्धान हो गया।

द्वार पर थप-थप की आवाज सुनकर किसी ने अन्दर से पूछा 'कौन ?'

'मैं हूँ। तुलया पावार !' आगन्तुक धीरे से बोला।

द्वार खुला। तुलया पावार ने घुसते ही पूछा 'साहब तो अभी जगे होंगे ?'

'हाँ। अन्दर चलिये। कमरे में।' दरवाजा बन्द कर दिया गया।

मास्टिन ने उठकर हाथ मिलाते हुये कहा 'इस वक्त आपको तकलीफ करने की क्या जरूरत थी तुलयाजी। बड़े पेशवा साहब अच्छी तरह तो हैं ? आइये बैठिये'; तुलया को जानते हुये भी मास्टिन ने अपने साथ बगल में बैठाया। फिर माथा सिकोड़ता हुआ बोला 'पेशवा साहब से भेंट हो नहीं सकती इसलिये सोचा था आप ही को बुलाकर उनके स्वास्थ्य के विषय में

पूछ लूँ। लेकिन इस अंधेरी रात में आपने नाहक ही तकलीफ की। कल किसी वक्त दिन में बता दिया होता।' मास्टिन तुलया के प्रति सहृदयता प्रकट करते हुये उसकी अन्तरात्मा में बैठने का प्रयत्न कर रहा था। वह अपने गालों की सुर्खी को छिपाने का प्रयास करने लगा।

'खैर! तकलीफ आराम तो भाग्य', तुलया ने अपने हाथ से मस्तक को ठोंका 'की वस्तु है मास्टिन साहब। पर प्रयत्न तो हर एक को करना ही चाहिये। यह उसका कर्तव्य है।' तुलया का संकेत भी उधर ही को था। फिर भी दोनों अभी एक दूसरे को गहराई तक परख लेना चाहते थे। वह फिर बोला 'दिन भर महाराज और महारानी के कामों ही से छुट्टी नहीं मिलती। विशेष कर महारानी जी मेरे अतिरिक्त और किसी पर विश्वास नहीं करतीं, इसलिये उनका एक एक काम, छोटे से बड़े तक, सब मुझी को करना पड़ता है। स्वामी और स्वामिनी का इतना प्यार, मेरी समझ में दुनिया के किसी और दास को नहीं प्राप्त हुआ होगा।'

'हाँ हाँ! यह मुझे अच्छी तरह मालूम है। आप पर बड़े पेशवा रघुनाथराव साहब का विश्वास अटल और काबिले तारीफ है। मैंने अधिकतर लोगों से ऐसा ही सुना है। आपका और महाराज साहब का सम्बन्ध अब नौकर और मालिक का थोड़े रह गया है तुलयाजी। अब तो आप ही उनके शुभचिंतक हैं। सलाहकार हैं। सेवक हैं। और यों कहना चाहिये, जो कुछ भी समझा जाय सब उन्हीं के लिये है।' मास्टिन ने जिज्ञासा भरी दृष्टि से तुलया की ओर देखा।

'यह तो आपने अपने बड़प्पन का परिचय दिया मास्टिन साहब। अगर मैं इसी योग्य होता यो आज......।' तुलया किसी अभिप्राय से रुका।

'ठीक है', मास्टिन को यह ताड़ते देर न लगी 'मुझसे क्या छिपा है। पेशवा साहब की जिन्दगी तो जेल में सड़ते हुये किसी कैदी से भी बदतर है। न किसी से मिल सकते हैं, न महल के बाहर, या यों कहिये कमरे के बाहर निकल सकते हैं।' मास्टिन कुछ गर्दन टेढ़ी करते हुये हँसा। उसकी हँसी उसके कथन को अधिक मजबूत बना रही थी, 'फिर भी तुलयाजी मैं यही कहूँगा कि उनके

ऐसा इन्सान होना इस दुनिया में बहुत ही मुश्किल है। भला सोचिये तो सही, साम्राज्य किसका, हुकूमत किसकी और मसनद पर बैठे कौन? नारायणराव को अभी पेशवा बनाने की जरूरत ही क्या थी। अभी यों ही वे लड़के से हैं। सत्रह अट्ठारह वर्ष की कोई उम्र होती है। और अगर थोड़ी देर के लिये लड़का न भी माना जाय तो स्वर्गीय पेशवा माधवराव को इसकी क्या जरूरत थी कि वे सब सामन्तों और सरदारों को बुलाकर, अपने मरने के बाद, नारायण राव को पेशवा बनाने की इच्छा प्रकट करते और लोगों को 'हाँ' करने के लिये मजबूर करते। यह सिर्फ मतलब नहीं तो और क्या है। मरते मरते भी वे अपनी चालाकियों से बाज नहीं आये। खैर इन चालाकियों से क्या बनता-बिगड़ता है। बड़ा सदा बड़ा ही रहेगा। उसके बड़प्पन पर धब्बा लगाना मुश्किल ही नहीं बल्कि गैरमुमकिन है। और यही वजह है कि मैं क्या मेरी सरकार भी आज उन्हें उसी निगाह से देखती है जो उनकी असलियत होनी चाहिये।' मास्टिन कूटनीति की चालों में उलझा जा रहा था।

मास्टिन रघुनाथराव के विषय में बहुत कुछ पहले ही पता लगा चुका था। केवल उसे एक उपयुक्त आदमी की आवश्यकता थी। उसकी पूर्ति आज उसने कर ली। कैकेयी की मन्थरा और रघुनाथराव के तुलया में यदि किसी प्रकार की विभिन्नता की जा सकती है तो यही कि वहाँ दासी की प्रेरणा थी और यहाँ स्वामी की।

तुलया जिस जानकारी के लिये एक बहाने के जरिये, विशेष कर इस अँधेरी रात में मास्टिन के पास भेजा गया था—वह बात हो गयी। और ठीक इसके विपरीत दूसरी ओर भी वैसा ही हुआ जैसा चाहनेवाला चाहता था। दोनों अपनी मंजिल पर चक्कर काटते हुये पहुँच गये।

तुलया ने अपनी गम्भीरता को बनाये हुये कहा 'आप की सरकार और आपके विचारों को सुनकर मैं समझता हूँ, मेरे महाराज बहुत ही प्रसन्न होंगे। आप लोगों की सद्भावनायें मेरे विचार से, उनके लिये लाभप्रद ही साबित होंगी।'

'बिल्कुल', मार्टिन अपने दोनों पंजों को बार बार सटाता हुआ बोला 'अगर आप सही समझें तो इस विषय में महाराज साहब से जिक्र कीजियेगा। आप जानते हैं कि हमारी सरकार उसीका साथ देती है जो सही और ईमानदारी के रास्ते पर होता है। अधिक मैं क्या कहूँ। ज्यादा कहना, अपने मुँह अपनी बड़ाई करना होगा।'

'अच्छी बात है। अवसर देखकर उनसे संकेत करूँगा। फिर जैसा होगा, मौका लगाकर आप से मिलने की कोशिश करूँगा।'

'जरूर।' दोनों उठ पड़े।

तुलया दो पग चलकर रुक गया। वह फुस-फुसाता हुआ बोला आपका आदमी विश्वासपात्र तो है। इसका अधिक ध्यान रखना होगा। मेरा आना जाना अधिकतर रात ही को हुआ करेगा।'

'आप इससे बेफिक्र रहें तुलया जी। अंग्रेज कौम दगाबाज नहीं होती।'

दोनों ने हंसते हुये हाथ मिलाया। तुलया पवार—रघुनाथराव का वफादार नौकर—अंधकार में विलीन हो गया।

आठ

(क)

आज शुक्रवार का दिन है। शनिवार बाड़ा से लगा हुआ नाना बाड़ा में जिसमें आजकल अंग्रेजी स्कूल है—बड़ी चहल-पहल दिख रही थी। भीतर वाले सहन में बड़े-बड़े तम्बू लगे हुये थे। संगीत का कार्य-क्रम दिन भर से चल रहा था। बीच के बड़े वाले तम्बू में एक छरहरे बदन का, बड़ी बड़ी आखों वाला, लम्बा सा पुरुष बैठा हुआ लोगों से आशीर्वाद और उपहारें ले रहा था। आज नाना फड़नवीस अपनी वर्ष गाँठ मना रहे थे।

नगर के सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति और राज्य के पदाधिकारी आये और चले गये। अभी-अभी, कुछ समय पहले, पेशवा नारायणराव भी आकर हो गया। परन्तु हरीपन्त फड़के का कुछ पता नहीं।

संध्या होने को आई। लोगों का जमाव फिर बढ़ने लगा। रात में नाना की ओर से दावत थी। नृत्य आरम्भ हो गया। नाना आते हुये अतिथियों का स्वयं आदर सत्कार कर रहा था। धनमद और पदमद सन्मान में त्रुटि होने पर अकुला उठता है। उसकी ठेस असहनीय हो जाती है।

नाना का अपना कहलाने वाला तो कोई था नहीं। इस कारण बाहर-भीतर चारों ओर थोड़ी बहुत दृष्टि रखनी ही पड़ती थी। बाहर से अवकाश मिला कि अन्दर पहुँचा। इधर-उधर देखकर। नौकरों को थोडी बहुत हिदायत। डाँट फटकार। नाते रिश्तेदारों के घरों से आई हुई औरतों को सुझाव और फिर जल्दी-बाहर। नाना आतिथ्य सत्कार में आदर्श माना जाता है।

दालान से नीचे उतरते ही किसी ने नाना को बड़े तपाक से फौजी सलामी दी और मुसकराता हुआ खड़ा हो गया। नाना ने ऊपर की ओर देखा

'अच्छा तो आप हैं ? बड़ी जल्दी आये। कल आये होते। आज क्या कोई काम था ? बेकार तकलीफ की। आने में कष्ट हुआ होगा ?'

'सब कह गये या कुछ और कहना है। मैं तो समझा ही था कि तुम्हारा पारा गर्म होगा। लेकिन मैं अपनी मजबूरी को क्या करता। अब जरा ठंढे हो लो तो बताऊँ।' हरीपन्त फड़के हंस रहा था।

दोनों हम उम्र हैं इसके अतिरिक्त फड़के, नाना का सब से अधिक विश्वास पात्र व्यक्ति है। उसे प्यार और मित्रता और इनके समन्वय से जो तीसरी वस्तु उत्पन्न होती है---भरोसा - वह भी इसे प्राप्त है।

नाना हँसने लगा। 'तुम्हें तो हरदम मजाक चाहिये। काम के बनने बिगड़ने से क्या प्रयोजन।'

चलो, तुम्हारा उन लोगों से परिचय करा दें,' हरीपन्त ने सामने की ओर उंगली से संकेत किया 'स्वर्ण दुर्ग से आये हुये हैं। तुम से मिलने के लिये उत्सुक हैं' हरी के संकेत में चिढ़की थी लेकिन नाना इसे नहीं समझ पाया।

नाना ने हरीपन्त की ओर देखा 'सबेरे आये होंगे ?'

'ठीक उसी समय। जब मैं तुम्हारे यहाँ आने को तैयारी कर रहा था।'

'चलो जल्दी से परिचय कराकर अन्दर भोजन के प्रबन्ध में जुट जाओ। करीब-करीब सब लोग आ चुके हैं। खाना जल्दी हो जाय तो अच्छा है।' नाना सामने की ओर देखता हुआ कह रहा था।

परिचय के दौरान में मालुम हुआ कि आगन्तुक स्वर्ण दुर्ग में बख्शी के पद पर नियुक्त हैं। इस समय इनका परिवार केवल इनकी स्त्री और एक मात्र लाड़ली पुत्री लक्ष्मीबाई का है। ईश्वर नें दो पुत्र भी दिये थे किन्तु उन्हें असमय ही छीन लिया गया। माता-पिता की ममता और दुलार, हुंकार सब लक्ष्मी को ही मिली है उनके अभाव में।

'नाना साहब,' बूढ़े बख्शी बोले 'मुझे आप से मिलकर प्रसन्नता तो हुई ही किन्तु मुझसे कहीं अधिक मेरी लक्ष्मी को है। जब से हरी नें उसे बतलाया

कि आप वही नाना हैं जो पानीपत के युद्ध में महाराज भाऊ साहब के साथ साथ थे, तभी से वह मिलने के लिए जान खाए है। क्यों लक्ष्मी?' बख्शी पुत्री की ओर देखकर हँसने लगे, इसे इतिहास से बड़ी रुचि है नाना साहब। इस पर इसने काफी अध्ययन भी किया है। किसी दिन बातें करें। आप को सुनकर आश्चर्य होगा।'

दृष्टि में जहाँ सौन्दर्य है वहीं आकर्षण—एक महान आकर्षण, जिससे मनुष्य मात्र ही क्या, जीव मात्र भी अछूता नहीं रह पाता। लक्ष्मी में भी वही आकर्षण है। एक अद्वितीय आकर्षण। जिसके द्वारा व्यक्ति विशेष का उसकी ओर आकर्षित होना साधारण है। नाना ने लक्ष्मी को दूर से देखा था। आवश्यकता थी पास से देखने की। किन्तु समीप आते आते नेत्र लज्जा के आवरण में छिप गये। उन्हें अपनी बेहयायी पर शर्म आने लगी। फिर भी वे अवसर चूकना नहीं चाहती थीं। मौका मिला। नाना ने गर्दन मोड़ी रूप को देखा। उसकी विशेषता को आँकना चाहा। लेकिन इतना अवसर कहाँ था। पर्दा तो आँखों का है। नाना सकुचाता हुआ बोला यदि आपको इतना शौक है तो किसी दिन सुना दूँगा इतिहास के पत्रों में यह एक बड़ी दर्दनाक घटना घटी है। यवनों की नीचता अपनी सीमा को लाँघ गई थी।' नाना के सामने हजारों लाशें लोटती हुई ओझल हो गईं, फिर माँ की तस्वीर, उसकी दुर्दशा की कल्पना, आई रुकी चली गई। रूप का आकर्षण शिथिल पड़ गया। नाना का हृदय उस वीभत्स कल्पना का अनुभव करने लगा। उसके गालों की लाली कुछ फीकी पड़ गई परन्तु फानूस की उस धुंधली रोशनी में उसे देखा नहीं जा सकता था। लक्ष्मीबाई को यह समझते देर न लगी कि यह व्यक्ति ऊपर से जितना शुष्क दीखता है, भीतर से कहीं अधिक कोमल और भावुक है। खैर, किसी दिन फुर्सत से बैठकर आप को एक एक बातें बताऊँगा। लिखने योग्य हैं।' फिर बख्शी महाशय की ओर देखते हुये उसने कहा 'यदि अनुचित न मानें तो एक प्रार्थना करूँ।'

'कहिये! आप तो यों भी मेरे लड़के के ही समान हैं।'

'यदि हरी ने आपके आने की सूचना दी होती तो मैं स्वयं निमंत्रण लेकर हाजिर हुआ होता लेकिन ऐसा न हो सका। यह हरी की भूल है। हरी अपराधी है। इसलिये दंड आप ही को देना होगा · मेरे यहाँ इस समय भोजन करने की स्वीकृति देकर।'

सब लोग हँसने लगे।

लक्ष्मी की माँ ने अपने पति की ओर देखा। बोली 'झगड़ा तुम लोगों के बीच का और निबटारा करें हम लोग? चलो यही सही।' अब तो भोजन तुम्हारे यहाँ करना ही होगा।'

नाना ने उनकी ओर देखते हुये कृतज्ञता प्रकट की। और हरी को यह बताकर कि इन लोगों को बैठाकर अन्दर भोजन के प्रबन्ध को देखें—वह दूसरी तरफ चला गया।

भोजन समाप्त हुआ। हाथ जोडते हुये नाना सबको बिदा कर रहा था। बख्शीजी के आने पर नाना ने पूछा 'अभी तो आप रहेंगे?'

'हाँ! दशहरे तक विचार है। आगे ईश्वराधीन।'

'तब तो आपके सहयोग का अच्छा उपयोग किया जा सकता है।' नाना की दृष्टि अनायास ही लक्ष्मी की ओर चली गई। लक्ष्मी भी उसकी ओर देख रही थी। वह कुछ झेंप सा गया। हड़बड़ाहट में कुछ और न कह कर 'अच्छी बात है....।' कहते हुये उसने हथेलियों को जोड़ दिया।

पूजा-पाठ से निवृत्त होकर नाना ने जलपान किया और शनिवार बाड़ा के लिये चल पड़ा। आज कागजों की अधिक जाँच-पड़ताल करनी थी। काम कुछ विशेष था। वह अभी अपने बड़े द्वार से बाहर भी न निकल पाया होगा कि पसीने से लथपथ एक घोड़ा रुका। नाना ने उधर देखा। लक्ष्मी घोड़े से कूद कर नीचे खड़ी थी। उसने हाथ जोड़ते हुये नमस्ते किया। नाना ने उसके प्रत्युत्तर में हाथ जोड़े।

'तो आज संध्या को सुनाइयेगा। आऊँ?' लक्ष्मी ने पूछा।

'हाँ, आइये। क्या आज दूर तक निकल गई थीं?' नाना ने लक्ष्मी के अंगों के उभार को देखने की चेष्टा की।

'जी हाँ। तभी तो देर हुई। अच्छा तो आज्ञा है?'

'जरूर।'

लक्ष्मी का घोड़ा उड़ता हुआ शहर को निकल गया।

कमरे के बीच टँगे हुये बड़े-से झाड़ की बत्तियाँ जला दी गई थीं। उनकी लपलपाती हुई सुनहली लौ और दरवाजे के कम्पित पीले रेशमी पर्दे—सम्पूर्ण कमरे में स्वर्ण बिखेर रहे थे। फर्श पर कमरे के बराबर, चौड़े लाल किनारे की दरी थी और उसके ऊपर मोटी कालीन, लाल हाशियों के बीच बिछी थी। मध्य में चार नीले मखमली गद्दे एक दूसरे के आमने सामने दो दो रेशमी गावतकियों के साथ लगा दिये गये थे।

दीवार पर पूरब की ओर भगवान कृष्ण और भगवान शंकर के दो तैल चित्र साथ-साथ लटक रहे थे। उत्तर और दक्षिण की दीवारों पर केवल एक एक तैल चित्र थे किन्तु बहुत बड़े बड़े। इन दोनों चित्रों के कोनों में लिखा था 'पानीपत का युद्ध।' पश्चिम की ओर तीन तस्वीरें थीं। एक बड़ी और दो छोटी छोटी। बीच की बड़ी वाली तस्वीर स्वर्गीय महाराजा बालाजी बाजीराव पेशवा साहब की थी और इधर उधर की दोनों तस्वीरें नाना के पिता माता की थी।

'लक्ष्मीजी यह १७५६ की घटना है,' नाना ने बताना आरम्भ किया। लक्ष्मीबाई सामने वाले गद्दे पर गाव तकिये के सहारे, आगे की ओर कुछ झुकी हुई सुन रही थी। सफेद चेहरे पर गुलाबी कपोल और उनके ऊपर दो भूरी-भूरी आँखें, ईरानी सुन्दरता का सम्मोहन उत्पन्न कर रही थीं। पीछे खड़ा खिदमतगार झालरदार बड़ा पखा झल रहा था जिसकी हवा से जूड़े मे घुसी हुई बड़े-से गुलाब के फूल की पखड़ियाँ हिल हिल कर सिमट जाती थीं। 'कुँवार का मास लग चुका था। भाऊ साहब के सेनापतित्व में एक बड़ी सेना दिल्ली की ओर रवाना हुई। पश्चिम में, लाहौर की तरफ, अफगानों की शक्ति

बढ़ रही थी इसलिये उनको देश के बाहर खदेड़ना मराठों के लिए राजनैतिक दृष्टि से आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य सा हो गया था। भाऊ साहब ने महाराज पेशवा साहब से इस मसले पर विचार-विमर्श किया और यवनों को अटक के पार खदेड़ने का निश्चय करके चल पड़े।

'यह तो आप जानती ही हैं कि मेरी नौकरी पुश्तैनी है। मेरे पिताजी के स्वर्गवास के उपरान्त जब मैं केवल पन्द्रह वर्ष का एक लड़का था—इस पद का दावेदार बना दिया गया। यद्यपि काम धाम मेरे चाचा बाबूरावजी ही करते थे। यह सब महाराज पेशवा साहब की कृपा थी। उनका स्नेह पाकर मैं पिताजी के स्नेह को भूल-सा गया था लक्ष्मीजी! उन्होंने सदैव मुझे लड़के के सदृश माना। वे सदैव यही समझते थे कि उनके तीन नहीं चार लड़के हैं।' नाना का गला भर आया था। उसने पीछे की ओर संकेत किया 'बीच वाली तस्वीर उन्हीं की है।'

लक्ष्मी ने ऊपर की ओर देखा। फिर तकिए को कुछ आगे खींचती हुई सीधी सी बैठ गई।

'खैर, भाऊ साहब जब चलने लगे तो मैंने भी उनके साथ चलने की इच्छा प्रकट की। मथुरा की रज को मस्तक पर लगाने की अभिलाषा थी हो, अनायास अवसर मिल गया था। पहले तो महाराज साहब ही आज्ञा नहीं दे रहे थे क्योंकि कुछ समय पहले बीमार होने के कारण मैं अत्यधिक कमजोर हो गया था। किन्तु तीर्थाटन के नाम पर उन्होंने हामी भर दी। मैं अपनी माँ और यशोदा के साथ चल पड़ा। माँ और मै जितना प्रसन्न था उससे कहीं अधिक प्रसन्नता मेरी स्त्री यशोदा को थी। ऐसा होना उसके लिये स्वाभाविक भी था। वह नहीं चाहती थी कि मैं ऐसी कमजोरी में इतनी लम्बी यात्रा के लिये प्रस्थान करूँ। पर मैं तो व्रज की गलियों में घूमने के लिये बेचैन हो रहा था। भारद्वाज मुनि के आश्रम में बैठकर पुरुषोत्तम राम की कथाओं को सुनने के लिए लालायित था। काशी में भगवान शंकर की छटा भी देखली थी और अन्त में गयातट पर पिता का श्राद्ध करना था जिसके

हेतु पिता पुत्र को जन्म देता है। इतनी बातें और माँ का सहयोग एक पक्ष में। और दूसरी ओर पत्नी की स्वार्थपरता, केवल अपने पति के स्वास्थ्य रक्षा हेतु। यशोदा कहाँ तक सफल भूत हो सकती थी। तमाम बातें और रुकावटों पर भी मैं माँ के साथ चल पड़ा। विवश होकर यशोदा को भी चलना पड़ा। किन्तु उसका सोचना सही निकला। नर्मदा पार करते-करते मेरी तबीयत फिर खराब हो गई। अतिसार रोग ने इतनी पीड़ा पहुँचाई कि मेरा उठना-बैठना दूभर हो गया। यशोदा बड़ी चिन्तित थी परन्तु माँ की अटल धर्म निष्ठा उसकी शान्ति को बनाये हुए थी। भाऊ साहब ने मेरी दशा देखकर सारी सेना को रुकने की आज्ञा दे दी। और मेरी दवा-दारू का समुचित प्रबन्ध करने लगे। तीन चार दिनों में मेरी तबीयत ठीक हुई। तब हम लोग आगे की ओर बढ़े।

भाऊसाहब के पूना छोड़ने के पहले ही महाराज साहब ने सारे मराठे सरदारों को आदेश भेज दिया था कि वे अधिक से अधिक सेना लेकर भाऊ साहब के नेतृत्व में एकत्रित हों और अफगानों को परा त करने के लिये दिल्ली की ओर प्रस्थान करें। अतः चम्बल नदी पार करने के पहले ही मल्हारराावजी होलकर, जुनकोजी शिंदे, दम्भाजी गायकवाड़, यशवन्तराव पवार अन्ताजी मंकेश्वर, गोविन्द पन्त बुन्देले तथा अन्य छोटे छोटे सरदार अपनी-अपनी सेना सहित आमिले। इसके अतिरिक्त पिंडारियों और राजपूत सरदारों ने भी अपना सहयोग दिया। उस समय भाऊ साहब के नेतृत्व में पचपन हजार घुड़सवार, पन्द्रह हजार पैदल और पन्द्रह हजार पिंडारी सैनिक थे। पच्चीस हजार सैनिक ऐसे थे जो किसी भी समय अस्त्र-शस्त्रों सहित तैयार पाए जा सकते थे। लेकिन इनसे भी दुगुनी तो खिदमतगारों तथा अन्य प्रबन्धकों की संख्या थी लक्ष्मी जी! पानीपत के मैदान में जिस समय सेना का पुन:संगठन और आंकड़ा लगाया गया, उस समय कुल संख्या तीन लाख की थी।'

'तीन लाख!' लक्ष्मी ने विस्फारित नेत्रों से नाना की ओर देखा।

'हाँ लक्ष्मीजी ! तीन लाख। और युद्ध के बाद उन तीन लाख व्यक्तियों में केवल एक लाख वापस लौट पाये थे जिनमें अधिकतर घायल और अंग हीन थे। शेष दो लाख सैनिक यवनों के हाथों से काट डाले गये।'

'और अब्दाली की सेना ?' लक्ष्मी ने कुछ दुःखी हृदय से पूछा।

'जैसा मैंने बाद में आँकड़ा इकट्ठा किया था अब्दाली की सेना में इक्तालिस हजार आठसौ घुड़सवार और अड़तालीस हजार पैदल सैनिक थे। किन्तु खिदमतगारों तथा अन्य नौकरों को मिलाकर लगभग सवातीन लाख की संख्या होती थी। अवध के नवाब शुजाउद्दौला भी इस युद्ध में अब्दाली की तरफ से शामिल हुये थे। उनका भी इस्लाम खतरे में आ गया था। उसकी रक्षा किसी भी दशा में उन्हें करनी ही थी।

'आगरा पहुँचने पर भरतपुर का राजा सूरजमल, तीस हजार सैनिकों सहित भाऊ साहब की खिदमत में हाजिर हुआ और उनकी इज्जत की। भाऊ साहब ने भी उसे बड़े आवभगत से लिया। युद्ध का रूप कौन सा और कैसा हो निर्णय करने के लिये दूसरे दिन बड़े बड़े सरदारों की बैठक बैठी। सूरजमल बड़ी नम्रता पूर्वक भाऊ साहब से बोला 'श्रीमन्त आप हिन्दुस्तान के स्वामी हैं। सारी वस्तुयें आपको उपलब्ध हैं। मैं एक केवल जमीन्दार हूँ फिर भी अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ राय आपको देना चाहूँगा। पहली चीज जो मेरी समझ में आ रही है वह यह है कि सरदारों और सैनिकों का परिवार, फिजूल के लिवाजमात तथा भारी भरकम लड़ने वाले युद्ध के हथियार इत्यादि—इस होने वाले युद्ध में रोड़े ही अटकायेंगे। आपके अश्वारोही हिन्दुस्तान के अश्वारोहियों से कहीं अधिक फुर्तीले और तेज हैं किन्तु दुर्रानी (अब्दाली के अश्वारोही) आप से भी अधिक फुर्तीले और तेज हैं। इसलिये अधिक समझदारी की बात तो यह होगी कि अन्य अनावश्यकीय सामानों तथा खिदमतगारों और प्रबन्धकों को चम्बल के पार झाँसी या ग्वालियर में—जो आप ही के आधीन हैं भेज दिया जाय और फिर दुश्मनों के विरुद्ध बिना किसी चिन्ता और झंझटों के युद्ध किया जाय।

'या मैं अपने देश का कोई भी बड़ा दुर्ग, डीग, कुम्भेर या भरतपुर आप के अधिकार में दे सकता हूं जिसमें आप सारा सामान तथा खिदमतगारों और प्रबन्धकों को रख सकें। इस प्रकार आप दूसरे मित्र देशों से सम्पर्क भी रख सकेंगे तथा आप की सेना के लिये सदैव रसद का प्रबन्ध भी आसानी से होता रहेगा। मैं समझता हूँ इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इस उपाय से आपका वैरी किसी भी भाँति आगे बढ़ने में समर्थ न हो सकेगा और अन्त में विवश होकर उसे भागना ही पड़ेगा।'

सूरजमल की राय को अन्य सरदारों ने पसन्द किया। मल्हारराव होलकर और जुनकोजी शिंदे ने तो इसकी बार बार पुष्टि की परन्तु होनहार को कौन मेट सकता है लक्ष्मी जी! भाऊ साहब ने पता नहीं इसका क्या अर्थ लगाया और क्षण भर में उनकी त्योरियाँ चढ़ गईं। उन्होंने कुछ आवेश में आकर कहा 'आप लोगों को मालूम होना चाहिये कि सूरजमल एक मामूली जमीन्दार हैं और उनकी सलाह उन्हीं लोगों के लिये हैं जो उनके श्रेणी के हैं। लेकिन जो उनसे-बहुत अधिक ऊँचे हैं, उन्हें तो इस पर सोचना भी गुनाह है।' फिर उन्होंने मल्हारराव तथा जुनकोजी शिंदे को भी भला बुरा कहा और उठ खड़े हुए। बैठक भंग हो गई। सब लोग अपने-अपने खेमों में चले गये।

'आप से मैं सच कहता हूँ. और लोगों को जो आश्चर्य हुआ सो तो हुआ ही लेकिन मेरे पैर से तो जमीन खिसक गई। मैं उस समय नहीं समझ पा रहा था कि भाऊ साहब ऐसे योग्य और बुद्धमान् व्यक्ति के मुँह से भी ऐसी बातें निकल सकती हैं। भाऊ साहब को जितने समीप से मैंने देखा और समझा था, उतना उनके परिवार वालों को छोड़कर अन्य किसी को सौभाग्य प्राप्त न हुआ होगा। भाऊ साहब की सज्जनता, उनकी वीरता और उनका राज्य प्रबन्ध, सारे साम्राज्य में विख्यात हो चुका था। महाराज पेशवा साहब तो केवल नाम के ही पेशवा थे। सारा कारभार उन्हीं के कंधों पर था और उसे वे उन्नति की ओर बड़ी तेजी से लिये जा रहे थे। लेकिन उस दिन उनके मुँह से ऐसे अपशब्द तथा सारे सरदारों की सलाह को ठुकराकर अपने

कहे को करने के लिये बाध्य करना भविष्य के अंधकार में एक भयानक घटना का सृजन करना ही तो था। सब लोगों के चले जाने के बाद भी मैं वहाँ बैठा हुआ बहुत देर तक उन्हीं मसलों पर सोचता रहा परन्तु निष्कर्ष मेरे पास नहीं था। चुपचाप उठकर अपने खेमें में चला आया।

'कनातें बंधने लगीं और फिर दिल्ली के पथ पर फौजें चल पड़ीं। मथुरा आया। सेनायें रोक दी गईं। मैं व्रज की गलियों में अपने को भूल गया। कर्मयोगी कृष्ण की उस लीला-भूमि को मैं अपनी आखों में बसा लेना चाहता था। वृन्दावन के एक एक भाग को जहाँ जहाँ भी उस गीता के उपदेशक ने अपनी महिमा दिखलाई थी मैंने उसके दर्शन किये और अपने को कृताथ किया। चार दिनों तक मेरी दुनियाँ बृज की गलियों में आ गई थी और उन गलियों में केवल एक ही छवि झलकती थी कृष्ण कन्हैया।

पाँचवें दिन सब लोगों ने दिल्ली के लिये प्रस्थान किया। दिल्ली पर अधिकार करने में भाऊ साहब को उतनी ही देर लगी जितनी देर मुझे आपको इतनी कथा सुनाने में,' नाना मुस्कराया। 'दिल्ली अधिकार में करने के उपरान्त, शाह आलम के लड़के मिर्जा जवन बख्त को भाऊ साहब ने दिल्ली के तख्त पर बैठाया और नबाब शुजाउद्दौलाह को वजीरे आजम घोषित किया.........।

लेकिन आपने तो अभी-अभी बतलाया है कि वह अब्दाली के साथ मिल चुका था।' लक्ष्मी बीच में बोल पड़ी।

हाँ। मिल तो चुका था किन्तु उस समय तक भी उसने भाऊ साहब को अंधकार में ही रखा। भाऊ साहब से उसकी वार्तायें महीनों पहले से चल रहीं थीं। वह सदैव यही कहता रहा कि उसके पिता के साथ पेशवा ने जो एहसान किया है, उसे वह भूल नहीं सकता और किसी भी दशा में भाऊ साहब के विरुद्ध नहीं जा सकेगा। पर उसकी बातें धोखे की टट्टियाँ थीं। एहसान का कर्ज अदा नहीं होता लक्ष्मी जी! उसका सूद व्यक्ति विशेष को जीवन-पर्यन्त तक भरना पड़ता है। बेहयाई और बेशर्मी भी उसके सन्मुख झुक

जाती है। और यही कारण था कि शुजाउद्दौलाह को अन्त तक अपने मुँह से खुले शब्दों में कहने की हिम्मत न हो सकी। इस्लाम के पुजारी को सम्भवतः अपने इस्लाम पर अटूट श्रद्धा नहीं थी यदि थी भी तो उसे कहने की ताकत नहीं थी। भाऊ साहब को बाद में मालूम हुआ कि इस बार शुजाउद्दौलाह इस्लाम की ओर है।

'जैसा सूरजमल ने विशाल सेना के कारण आने वाली रसद तथा अन्य आपत्तियों की ओर संकेत किया था, ठीक वैसा ही हुआ। अभी लड़ाई शुरू भी नहीं हुई थी कि दिल्ली के आस पास के इलाकों का सारा गल्ला उस समुद्र-रूपी सेना ने सोख लिया। गल्ले की कमी का आभास अभी से होने लगा। खैर, दिल्ली से पचास कोस आगे बढ़कर भाऊ साहब ने कुंजपुर पर अधिकार किया। दशहरे का त्योहार आया। भाऊ साहब दिल्ली के लिये लौटे। किन्तु वे सोनपत ही पहुँच पायेंगे होंगे कि उन्हें अहमदशाह अब्दाली के जमुना पार करने की सूचना मिली। वे लौट पड़े। दोनों सेनाओं के हरवालों की मुठभेड़ समलखा सराय पर हुई। परन्तु मराठों को पीछे हटना पड़ा। और पानीपत के मैदान में दोनों सेनायें आकर रुक गई। भाऊ साहब ने बीस गज चौड़ी और चार गज गहरी खाई द्वारा अपनी सेना का घेरा बनवाया और उधर सामने चार कोस की दूरी पर अब्दाली ने बड़े बड़े वृक्षों को काटकर सैनिकों की सुरक्षा स्थापित की।

'वीर को अपनी वीरता पर गर्व तो होता ही है और होना भी चाहिये किन्तु जब उस व्यक्ति विशेष का गर्व अपनी सीमा को उल्लंघन करने लगता है तो उसकी आखों पर पट्टियाँ बंध जाती हैं। वह अपनी कमजोरियों को भूल जाता है और अपने को प्रत्येक रूप से पूर्ण पाता है। लक्ष्मी जी युद्ध में वही सेनापति विजयी होता है जो कम से कम गल्तियाँ करे। भाऊ साहब के गर्व ने उनकी गल्तियों पर पर्दा डाल दिया था। फिर भी मराठों की हार उनकी त्रुटियों से नहीं हुई यही उनकी खूबी थी। इसके जिम्मेदार दूसरे लोग हैं।

'यद्यपि आये दिन छुटपुट मुठभेड़ मराठे और अफगानों में हुआ ही करती थी और उनमें अधिकतर अफगानी ही विजयी होते थे फिर भी भाऊ साहब को विश्वास था कि अन्तिम युद्ध का पासा उन्हीं की ओर होगा। उधर अब्दाली की धारणा भी कुछ-कुछ ऐसी ही थी। तभी तो वह भी संधि के लिये अधिक इच्छुक था रसद की कमी हमारे तरफ थी ही दिन पर दिन यह कमी बजाय घटने के बढ़ती ही गई। भाऊ साहब ने एक पत्र महाराज पेशवा को पूना लिखा। मुझे उसके एक एक शब्द आज भी याद हैं। किसी दिन अवसर मिला तो उन पत्रों को भी दिखलाऊँगा। उन्होंने लिखा था 'हमारी छावनी में रसद की बहुत अधिक कमी है। बाहर से सहायता मिलना असम्भव सा हो गया। क्या हम लोग संधि कर लें। अब्दाली का कहना है कि चम्बल के इस पार के इलाकों को छोड़ देना होगा। नदी के पार के प्रदेशों पर हम कर लगा सकते हैं। क्या हमलोग इस शर्त को मानलें। आप जैसी आज्ञा दें। वैसा करें।'

'तुरन्त पन्त प्रधान का उत्तर आया, 'दादा उनका मतलब रघुनाथराव से था) की राय में भय के कारण लाहौर तक के सारे प्रदेशों को जिसे उन्होंने बड़ी कठिनाइयों के उपरान्त अधिकार में किया है—छोड़ देना एक अपमानजनक बात होगी। अतः तुम्हें उन शर्तों को कतई नहीं मानना है। तुम्हें पूर्णरूप से दुश्मनों को परास्त करना है और सिन्ध तक के सारे प्रदेशों पर अधिकार करना है। तुम्हें किसी भी शर्तों पर अब्दाली से संधि नहीं करनी चाहिये। जैसा तुम उपयुक्त समझो करो। हम लोग बहुत ही शीघ्र तुम्हारी सहायतार्थ आ रहे हैं। तुम्हें डरने की कोई आवश्यकता नहीं।'

मनुष्य का सोचा हुआ यदि हो जाया करे तो फिर उस ब्रह्म की वास्तविकता का महत्व ही क्या? समय बीतता गया। दशा शोचनीय होती गई। महाराज पेशवा साहब नहीं आये। भाऊसाहब ने महाराज के आज्ञानुसार संधि करने से इनकार कर दिया। राजकुमार विश्वासराव ने बिना भाऊ साहब को बताये एक पत्र और महाराज को लिखा—'हम लोगों की हालत डाँवाडोल है।

इससे छुटकारा पाने के लिये कोई साधन भी नहीं। आपको मेरे जैसे दूसरे पुत्र मिल सकते हैं किन्तु भाऊ चाचा ऐसे भाई आपको दूसरे नहीं मिल सकेंगे। इसलिये आपको शीघ्रता से हम लोगों की सहायता के हेतु आना चाहिये।'

नाना कुछ देर चुप रहा। फिर उसने कहा लेकिन महाराज साहब नहीं आये लक्ष्मीजी! उस कर्ता को जो करना था कर दिया। भूख से तड़पते हुये सैनिकों ने प्रार्थना की 'इस प्रकार मरने से अच्छा है युद्ध में लड़कर प्राण गँवाना महाराज।' भाऊ साहब उनकी बातों से सहमत थे। भयंकर युद्ध हुआ। वे कितने वीर और महान् थे, यह उस समय युद्ध क्षेत्र में देखकर ही अनुमान लगाया जा सकता था। उनकी महानता पर आने वाली मराठा सन्तानें गर्व करेंगी। पानीपत का चप्पा-चप्पा आज भी कह रहा है और सृष्टि के अन्त तक कहता रहेगा कि युद्ध की जयश्री की पगिया भाऊ साहब के माथे पर ही शोभायमान हो सकती है—अब्दाली के नहीं।

'युद्ध की भयंकरता को मैं कहाँ तक बताऊँ। यवनों ने जो निर्दयता बरती वह अपनी पराकाष्ठा पर थी। शरण में आये हुए और न आये हुये, सभी काट डाले गये। काटने का तरीका भी उनका अपना ही था—पंक्ति बद्ध करा कर। यह......।'

'लेकिन महाराज साहब पहुँचे क्यों नहीं?' लक्ष्मी की उत्सुकता में कुछ गंभीरता थी।

नाना मुस्कराया, 'न पहुँचने का कारण तो आप ने सुना ही होगा। वैसे आप ही सोचिये, उनके न पहुँचने का कारण क्या हो सकता है?'

लक्ष्मी ने कुछ तिरछी निगाहों से नाना की ओर देखा, आपका ताना हमारी जाति पर है?'

नाना हँस पड़ा। 'अपनी कमजोरियों का अन्दाज है आपको? खैर। यदि पेशवा साहब, पैथान में अपनी नई शादी की रंगरेलियों में न भूल गये

होते तो शायद आज के मराठा साम्राज्य का रूप कुछ दूसरा ही हुआ होता।' कुछ रुककर नाना ने सोचते हुये कहा 'यह सब कहने की बात है लक्ष्मीजी! किसी काम का कोई बहाना तो होना ही चाहिये। न पन्त प्रधान की गल्ती थी न उनकी नई विवाहिता पत्नी की। चूँकि ऐसा होना था, इसलिये, होलें रोजी बहाने मौत की सार्थकता ईश्वर को सिद्ध करनी ही थी। वैसा ही हुआ। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि सब कुछ होते हुए भी, हम लोग दोपहर तक यवनों को पीछे ही खदेड़ते रहे किन्तु अचानक होलकर साहब मैदान से भग खड़े हुये। उनका अनुकरण दूसरे सरदारों ने किया। मैदान साफ हो गया। केवल दो सौ सैनिकों के साथ भाऊ साहब डटे रहे और अन्त में उसी उत्साह के साथ बैरियों से जा जूझे। यही उस वीर की महानता थी।

'पानीपत की लड़ाई समाप्त हुई। मराठों को हराकर इस्लाम के रक्षकों ने इस्लाम की रक्षा की और उसकी बुलन्दी में चार चाँद लगाये। परन्तु यह जानकर आपको अचम्भा होगा कि काबुल का इस्लाम हिन्दुस्तान के इस्लाम से बिगड़ गया। परिणाम स्वरूप शुजा दौला को अपने प्राण रक्षार्थ, एक रात, अपने सैनिकों सहित अब्दाली की छावनी से भागना पड़ा। फिर भी अब्दाली ने नवाब पर बड़ी कृपा की, अन्यथा सिपह सालारों और सैनिकों की तो राय थी कि नवाब को भी घेर कर सैनिकों सहित काट डाला जाय। यदि ऐसा हुआ होता तो सम्भवतः मुझे सबसे अधिक प्रसन्नता हुई होती। इसलिये नहीं कि उसने मराठों का साथ नहीं दिया था वरन् इसलिये कि उनकी आने वाली भावी पीढ़ियाँ इस घटना से शिक्षा ले सकती है कि जाति और धर्म के झूठे ढोंगों को फैलाकर अपने परिवार या पृथ्वी माँ के उपकारों को भूल कर विदेशियों से मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करना तथा उनके साथ-साथ उन्हीं लोगों को काटना या बरबाद करना, जिनके साथ जीवन पर्यन्त रहना है या उन पर राज्य करना है फिर भी पानीपत का यह उदाहरण भारतीय मुसलमानों के अन्दर एक नये और सुलझे हुये विचारों का सृजन करेगा। मुझे अब बहुत कुछ आशा है कि नवाब की भागने वाली घटना

भारतीय मुसलमानों की आँखें खोल देंगी। हमारा उनका चोली दामन का संबन्ध है लक्ष्मी जी ! यदि अन्तर है तो केवल नामों का।

लक्ष्मी कुछ कहना चाहती थी पर कुछ सोचकर, मुँह तक आये हुए शब्दों को फिर पी गई। यदि नाना की दृष्टि कहीं और न होकर लक्ष्मी के मुँह की ओर होती तो शायद वह लक्ष्मी के भावों को ताड़ लिये होते।

'तो ..आज्ञा चाहूँगी। इस कष्ट के लिये बहुत-बहुत धन्यवाद।' लक्ष्मी उठने का प्रयास दिखाती हुई बोली।

'चलिये आपको पहुँचाता आऊँ।' नाना ने उठते हुए कहा।

बाहर बड़े द्वार पर लक्ष्मी आकर रुक गई। 'क्या है ?' नाना ने पूछा।

'उपकृत के पास उपकर्ता के लिये एक मापदंड होना चाहिये नहीं तो भविष्य में कड़वाहट आ जाने की आशंका रहती है। इससे आप भी सहमत होंगे ? आपके कहने को टालना नहीं चाहती थी, इस कारण आपको यहाँ तक आने के लिये कष्ट दिया। मेरे साथ ये दो खिदमतगार चलेंगे। अच्छा। नमस्ते।' लक्ष्मी मुड़ गई।

नाना हतबुद्धि से रह गये। अन्दर लौटने पर उसके मस्तिष्क में दो तस्वीरें नाच रही थीं —एक लक्ष्मी की और दूसरी अलिनी की।

नौ

द्वारिका सिर नवाते हुये बोला 'गरीबपरवर अन्दर हैं, हुजूर।'

'किसी विशेष कार्य में उलझे हुये तो नहीं हैं ! लक्ष्मी ने घोड़े से उतरते हुये पूछा।

'इस विषय में हुजूर को...... ।'

लक्ष्मी अपनी त्रुटि समझ गई। वह अन्दर चली गई। खिदमतगार ने उंगली से संकेत किया उसके पीछे वाले कमरे में, सरकार।'

दरवाजे पर आहट पाकर नाना ने मुड़कर देखा। लक्ष्मी खड़ी थी। 'आइये। मैं कलाकार नहीं हूँ जो अपने या अपने संसार को उसकी वास्तविकता में खो दूं। केवल चित्र-कला से शौक है—वह भी चित्रों के एकत्रित करने का।' वह मुस्कराया।

'किन्तु इस रेखा चित्र को,' नाना के पार्श्व में पड़े हुये कागज के एक छोटे से टुकड़े को उठाते हुये लक्ष्मी ने कहा 'देखकर तो आपके कथन का उलटा ही अर्थ लगाया जा सकता है।' लक्ष्मी उस चित्र को देखती हुई बैठ गई।

चित्र को ध्यान से देखने के उपरान्त लक्ष्मी क्षणभर तक नाना की आँखों में,आँखें डालती हुई बोली 'यदि आप बुरा न माने तो पूँछू। वैसे पूछना उचित नहीं है और न मैं इसके लिये अधिकारिणी ही हूँ। फिर भी पूछने की उत्सुकता इसलिये है कि चित्र स्त्री विशेष की है, जो मेरी जाति से सम्बन्धित है।'

'चित्र जानकारी के ही हेतु बनता है। चाहे वह जिसका हो। इसमें उचित और अनुचित का क्या प्रश्न। आप से पहले मैंने कहा था कि मुझे चित्रों के संग्रह का शौक है और इसी शौक ने इन लकीरों के खींचने की उत्सुकता

मढ़ा दी है। समय की कमी और कामों की अधिकता के कारण, इस खींचा-खांची का भी जब कभी अवसर आ पाता है—विशेष अवकाश मिलने पर। आज कुछ फुर्सत थी। मौसम भी अच्छा था। सबेरे उठा तो अचानक इनकी याद,' नाना ने उस रेखा-चित्र की ओर संकेत किया 'आ गई।' अतीत की कल्पनायें यों भी सुखदायिनी होती हैं, फिर वह अतीत जो सुख मिश्रित क्षण भंगुर रहा हो। मैं उसी में खो गया। तभी से इस सत्य को संवारने में तल्लीन हूँ।

लक्ष्मी जी, सत्ताईस कोस तक निरन्तर, बिना खाये पिये चलते रहने के उपरान्त जब मैं इनकी कुटियों में पहुँचा तो प्रायः मरणासन्न अवस्था ही में था। इनके बाबा ने मुझे शरण दी। और अलिनी ने मेरे प्राणों में चैतन्यता भर दी। सूखे वृक्ष में फिर अंकुर प्रस्फुटित हो उठे। यह उसकी अपनी देन थी। दो दिन रुकने के पश्चात् मैंने बिदा माँगी और उन्हें बाध्य किया कि वे मेरे शीघ्र लौटने की प्रतीक्षा करें लेकिन मैं वैसा न कर सका।'

आखों की झुकावट और मत्थे पर पड़ी हुई सिकुड़न से लक्ष्मी ने अनुमान लगाया कि वास्तव में नाना के हृदय में कहीं इसकी टीस छिपी हुई है। वह चुप-चाप सुनती रही। नाना अपने अतीत को साकार बनाता रहा।

मन की प्रवृत्तियाँ, महाराज साहब की मृत्यु और पेशवा माधवराव साहब की नई-नई अड़चनों ने मुझे उलझनों में गुथ जाने के लिये विवश किया। हमारी माँ जब कभी कहा करती थी लक्ष्मीजी! कि मालिक और नौकर का सम्बन्ध बड़ा टेढ़ा सम्बन्ध है। और सम्भवतः उसी सम्बन्ध को दृढ़ और अमरत्व देने के विचार से मेरी शीघ्रता में विलम्ब हो गया। परिणामस्वरूप अलिनी मेरे जीवन से सदा के लिये अन्तर्ध्यान हो गई और........।'

क्यों? आपके वहाँ पहुँचने पर वे थीं नहीं।' लक्ष्मी ने उत्सुकता से पूछा।

मैं उन्हें लिवाने जा भी तो नहीं सका था। पन्द्रह बारगीरों का एक पत्र

देकर भेजा। पत्र में अपने न आने की कठिनाइयों और उलझनों को लिखते हुये इच्छा प्रकट की थी कि वे इनके संरक्षण में चली आवें। किन्तु वे आईं नहीं! बारगीरों ने केवल एक पत्र लाकर दिया जिसमें केवल इतना ही लिखा था 'प्रेम एक आदर्श है जिसकी प्राप्ति के लिये आवश्यक है लगन। सीमित है—केवल एक। मुझे प्रसन्नता है तुम्हारी उस लगन से। मैंने कुछ पाया है। खोया नहीं। तुम्हारे लिये मैं नहीं कह सकती। शेष के लिये चिन्ता करना अपने को कष्ट देना ही होगा।'

'फिर न मैंने ढुँढ़वाने का प्रयत्न किया और न ऐसा करना उपयुक्त ही समझा। समय व्यतीत होता गया। अलिनी भी धुन्धली पड़ती गई किन्तु प्रेम का स्वरूप, उसकी महिमा और उसकी महानता आज दिन भी उतनी ही आकर्षणीय है जितनी प्रथम भेंट के दिन थी।

लक्ष्मी कुछ बोली नहीं लेकिन उसके पतले ओठों की कोरों से निकली हुई ठुड्डी तक दोनों ओर की रेखायें, प्रेम की महिमा और उसके बड़प्पन पर अविश्वास प्रकट कर रही थीं। नाना की दृष्टि इस रहस्य से वंचित न रह सकी। उसे चोट पहुँची। फिर भी वह चुप रहा।

जलपान का समय हो गया था। दासक एक थाल में कुछ फल और गिलासों में दूध लाया। दोनों मौन फल खाने लगे। किसी ने कोई बातचीत नहीं की। परन्तु नाना अपनी चोट को छिपा न सका। उसके मुँह से निकल ही गया, 'लक्ष्मीजी, शायद प्रेमी की वास्तविकता पर आप की आस्था नहीं के ही बराबर है।'

लक्ष्मी समझ गई कि नाना ने उसके भावों को ताड़ लिया है। पर यह सोचकर कि उसके मनोभावों से नाना के हृदय पर चोट पहुँचेगी, वह चल देना चाहती थी। उसने गोलमोल उत्तर दिया 'नहीं। ऐसा तो नहीं है। लेकिन हाँ, जब कभी इस पर सोचा या विचारा है तब तब इसी परिणाम पर पहुँची हूँ कि प्रेम एक कपोल कल्पित शब्दों का समूह है जिसकी आड़ में, प्राणीमात्र अपने स्वार्थों की सिद्धि करता हुआ, स्वयं को अंधकार में रखकर

सम्बन्धित व्यक्तियों को भी अंधकार में रखने की चेष्टा करता है।'

नाना जैसे देखता-सा रह गया हो। कुछ उपहास के स्वर में बोला 'आपकी परिभाषा समझ में नहीं आई। आपने प्रेम के अस्तित्व को ही मिटा दिया!'

नाना के कथन में जो तीखापन था उससे लक्ष्मी झुंझला गई। 'केवल कहने से ही अस्तित्व का प्रमाणित हो जाना, ऐसा तो नहीं है श्रीमान्। यह कहने की लीक आज की नहीं—बहुत पुरानी है। लीक पीटने वाले सदैव वास्तविकता से कोसों दूर रहते हैं। प्रेम एक आकर्षण है। इस कारण क्षण-भंगुर है। उसमें स्थायित्व नहीं—प्राप्ति की चेष्टा है। चेष्टा का दूसरा रूप स्वार्थ है। स्वार्थ मिथ्या है। अस्तित्व-हीन है।' लक्ष्मी तर्क पर उतर आई थी।

'प्रेम विश्वास है लक्ष्मीजी, और जहाँ विश्वास है, वहीं सुख है। इसे आप भूल गई हैं?'

लक्ष्मी मुसकराई, 'यह कहावत सुनी हुई है; समझी हुई नहीं। जहाँ आकर्षण होगा, वहाँ विश्वास? उलटी सी बात है फड़नवीस साहब। आकर्षण, विश्वास की पुष्टि नहीं करता, इच्छाओं की वृद्धि करता है. इच्छायें, दुख और सर्वनाश की द्योतक हैं।'

'तो आपके कहने का सारांश हुआ कि ईश्वर का प्रेम, माता-पिता का प्रेम, स्त्री-पुरुष का प्रेम, देश दुनियाँ का प्रेम अर्थात् सम्पूर्ण प्रेम मिथ्या है। सत्य नहीं है।'

बिल्कुल। इसमें भी सन्देह किया जा सकता है। ईश्वर से प्रेम का अर्थ है स्वर्ग की, मोक्ष की, सुख इत्यादि की प्राप्ति। यह स्वार्थ ही तो है। फिर प्रेम मिथ्या नहीं तो सत्य कैसे हुआ। इसी प्रकार की अन्य भावनायें माता-पिता, स्त्री पुरुष, देश-जाति आदि-आदि के प्रति होती हैं।'

नाना कुछ गंभीर होकर बोला 'यह तो आपने ईश्वर के प्रति मनुष्यों के प्रेम को बताया किन्तु सृष्टि के प्रति ईश्वर का प्रेम......।'

'ईश्वर किसी से प्रेम नहीं करता महाशय जी। उसकी दृष्टि में सब समान

हैं। न वह किसी से प्रेम करता है न घृणा। न कोई उसका दोस्त है न दुश्मन। न वह किसी को नीचा बनाता है न ऊँचा। विश्व का निर्माता, उसका पालक फिर भी इससे परे—यही उसकी विशेषता है।'

इसके पहले कि नाना कुछ कहे, लक्ष्मी ने तुरन्त कहा 'छोड़िये इस वाद-विवाद के पचड़े को। क्या सत्य है क्या असत्य, क्या भला है क्या बुरा, इसका न अब तक निबटारा हुआ है न शायद कभी हो सकेगा। जो मेरे लिये सत्य है, वही किसी के लिये झूठ है। जो मेरे लिये भला दूसरों के लिये बुरा बन सकता है। विश्व जो स्वयं नाशवान है उसके भीतर इन प्रचलित विचारों पर कहाँ तक और कैसा भरोसा किया जाय? यह अर्थहीन और उलझनों का प्रति-पादक है। जो हो रहा है वही ठीक है। जो आगे होगा वह भी ठीक है। बस इतना समझ लेना ही पर्याप्त और आनन्द दायक है। खैर, मैं यह कहने वाली थी कि यदि आपको कष्ट न हो और कभी अवकाश मिले तो एक मेरी तस्वीर भी बना डालिये। विवाह के उपरान्त, माता पिता को अंधे की लाठी का काम देगी। नहीं वे बेचारे बे मौत मर जायेंगे।

'प्रयास किया था', नाना ने बगल में पड़े हुये एक कागज के टुकड़े की ओर संकेत किया जिस पर इधर-उधर टेढ़ी मेढ़ी लकीरें खिंची थीं, 'संयोगवश आज आप आ भी गई हैं। थोड़ी देर बैठिये। सब......।'

लक्ष्मी ने नाना की आखों से आखें मिलायीं किन्तु उनमें कोई रहस्य है, उसका उसे अन्दाज न हो सका। फिर भी सकुचाती हुई बोली 'न...न...न... इस सूरत में नहीं। कोसों तो घोड़े पर टहल कर आई हूँ। किसी दिन और आऊँगी तब।' लक्ष्मी उठ खड़ी हुई। 'कितना समय मैंने आपका नष्ट किया।'

'लेकिन समय नष्ट होने वाले को यह अखरे तब तो।' नाना हसने लगा। लक्ष्मी तिरछी निगाहों से देखती हुई बाहर निकल गई।

दस

'मार्स्टिन साहब', तुलया कह रहा था 'मेरे महाराज को आपके या आपकी सरकार के प्रति इतनी हमदर्दी होगी—इसे मैं कभी सोच भी नहीं सकता था। मुझसे यह सुनकर कि आप उनके पक्ष में हैं और अवसर पड़ने पर आपकी सरकार से उन्हें हर तरह की सहायता भी मिल सकती है—वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्हें आपकी सचाई और नेकनीयती पर बड़ा विश्वास है। उन्होंने मुझसे आश्वासन दिलाया है कि निकट भविष्य में यदि वे पेशवा बन सके तो अंग्रेजों की मैत्री दोनों के हित में बड़ी लाभप्रद सिद्ध होगी—राजनैतिक और आर्थिक दोनों ही दृष्टि से।'

'तुलयाजी, आपके महाराज पूना की मसनद पर बैठ जायँ इससे ज्यादा मुझे या मेरी सरकार को क्या चाहिये। आप जानते हैं मेरी सरकार जब भी कोई काम करेगी सही करेगी। सही लोगों का साथ देगी चाहे वे कमजोर ही क्यों न हों। मेरी सरकार हिन्दुस्तान में राज्य करना नहीं चाहती तुलयाजी। वह इतने बड़े मुल्क को, जो हर तरह से भरा पूरा है, इस लायक बना देना चाहती है कि यहाँ की गरीब जनता भी सुख और चैन से अपने जीवन को गुज़ार सके।

तुलया ने सिर हिलाते हुये उसके हाँ में हाँ मिलाया।

'लेकिन.' मार्स्टिन ने पूछा 'इसके लिये कोई रास्ता भी निकाला है?'

'यही तो सोचना है! कोई तरकीब समझ में नहीं आ रही है।'

'इसे तो आप समझते हैं कि बाहरी यानी अंग्रेजी सिपाहियों द्वारा चढ़ाई करके, नारायणराव को गिरफ्तार करना और आपके महाराज को मसनद पर बैठाना, गल्त ही नहीं वरना गैर-मुमकिन-सा है। यह आपका घरेलू मामला है। बाहरी लोगों का दख़ल देना, मुमकिन है अपने या अपने मित्र के

लिये काँटे बिछाना होगा। शायद आप मेरी बातों को दूर तक समझ रहे होंगे।

तुलया ने सिर हिलाकर मास्टिन का समर्थन किया।

'इसलिये हमें तो घर में बैठकर, घर ही में सब कुछ करना है। यह रास्ता सीधा और होने वाला है। अब करना क्या है, इसे हम लोग जरा अच्छी तरह सोच लें। वैसे महाराज साहब की क्या राय है। कुछ उन्होंने संकेत किया?'

'मैं आपके पास इसी हेतु भेजा गया हूँ। महाराज के विचार से आप की सलाह अधिक सुलझी हुई और सही होगी।'

मास्टिन बनावटी गम्भीरता लाता हुआ बोला 'शहर की फौजी हालत और उनके सरदारों के बारे में आपको कुछ अन्दाज है?'

'हाँ। इस समय कुल संख्या चार हजार की है और एक-एक हजार सैनिक एक-एक गार्दी सरदारों के आधीन हैं।'

'ये चारों गार्दी मुसलमान ही होंगे?'

'नहीं। सुमेर सिंह और खड्ग सिंह दो हिन्दू। मुहम्मद युसुफ और बहादुर खाँ दो मुसलमान। नारायणराव ने सुमेरसिंह की तैनाती हमारे महाराजके ऊपर कर रखी है। शेष तीन हज़ार बाहर की देखरेख के लिये हैं।'

मास्टिन कुछ सोचने लगा।

ठीक,' वह बोला, 'तुलयाजी जहाँ तक मैं समझता हूँ अगर इन चार सरदारों को किसी भी तरह अपनी ओर मिला लिया जाय तो शायद भविष्य में हर काम — जैसा भी सोचा जायेगा — किया जा सकता है। इन सरदारों को मिलाकर इस वक्त आप अपनी हर मुकदमों को पूरी कर सकते हैं। ऐसा मेरा ख्याल है। और......', कुछ रुकते हुए उसने कहा 'आप पैसे की ताकत पर इसे कर भी लेंगे। लेकिन पहले आपको सिर्फ मुहम्मद युसुफ बहादुर खाँ और खड्ग सिंह पर ही जाल फेंकना है। सुमेर सिंह इनके बाद।'

तुलया की बुद्धि में बात धँस गई। उसने सोचा साहब की पहूँच दूर तक है। वह बोला 'सड़क तो खूब पकड़ी मास्टिन साहब! रही निश्चित् स्थान तक

पहुँचने की—वह गणपति के आधीन है। मैं महाराज साहब से पूछूँगा। मेरे विचार में वे सहमत हो जायँगे।'

'क्या आप अभी जायँगे? रात बहुत अधिक हो चुकी है। मेरी समझ में इस वक्त आप यहीं रुक जायँ। हर काम को बड़ी चालाकी से करने की जरूरत है। थोड़े में सारा बना बनाया बिगड़ न जाय—इसे सदा ध्यान में रखना है।'

'नहीं। आज यहाँ रहने का विचार पहले ही बना चुका था। कल सबेरे जाऊँगा। सोने का प्रबन्ध कराइये।'

रोशनी बुझा दी गई। दोनों अपने-अपने विस्तरे पर लेटे हुये भविष्य की कल्पनाओं में विचरण कर रहे थे। एक की कल्पनाओं में व्यापकता थी, दूसरे में संकुचित। एक में अपने देश, अपनी जाति और स्वयं को उन्नत और समृद्धशाली बनाने की आकाँक्षा थी तो दूसरे में केवल अपने की भावना। पहले के साथ दूसरी की क्या समानता?

भोर होने को आया। एक अब भी कल्पनाओं में झूम रहा था। दूसरा सो चुका था। मार्स्टिन ने तुलया को जगाया।

ग्यारह

परसों से नाना की तबीयत कुछ खराब थी। तबीयत की खराबी का कारण विशेषतः उसकी चिन्तायें थीं। हृदय की बेचैनी बढ़ने के अतिरिक्त घटने का नाम नहीं ले रही थी। किसी भी भले-बुरे निष्कर्ष पर पहुँचने की लालसा उसके लिये समस्या बन गई थी। उसकी बेचैनी और उलझनों का कारण था—पेशवा नारायण राव। पेशवा दिन प्रति दिन उच्छृङ्खल होता जा रहा था। उसकी उद्दण्डता सीमा रहित बन रही थी। छोटे बड़े का लिहाज उठ गया था। वह अपनी दृष्टि में अपने ही को सर्वश्रेष्ठ, सर्वपूर्ण समझने लगा था। जिसे जो चाहा, जहाँ चाहा, जैसा चाहा, कह डाला। वृद्ध कारभारी (प्रधान मंत्री) सखाराम बापू की वही स्थिति थी जो अन्य मंत्रियों और साधारण जनता की।

नरसों की घटना थी। दरबार से उठने पर नारायणराव ने नाना को कुछ ऐसी भद्दी और छोटी बात कह दी कि सुनने वाले सुनकर आश्चर्यचकित हो एक दूसरे का मुँह देखते रह गये। नाना ने सिर नीचा कर लिया। पेशवा हंसता हुआ ऊपर चला गया। नाना को अपने वाड़ा पहुँचते-पहुँचते आफत आ गई। और कमरे में आकर वह पलंग पर गिर पड़ा।

अभी तक जैसे तैसे—सारी खुराफातों के बावजूद—चल ही रहा था परन्तु नरसों की घटना से नाना बड़ा क्षोभित हो उठा था। उसके चित्त की विकलता इतनी बढ़ गई थी कि इन तीन दिनों में वह रोगी सदृश दिखने लगा था। जब से पलंग उसने पकड़ी है, उसके मस्तिष्क में केवल एक ही प्रश्न नाच रहा है 'अब उसे करना क्या चाहिये? क्या पेशवा साम्राज्य से सदा के लिये नाता तोड़ लेना ही उचित होगा? उसने साम्राज्य की सेवा में कोई कसर नहीं रखी। उसके बाप दादों ने भी ऐसा ही किया था। सबने किया था।

कुटुम्ब परिवार ने किया था। अब उस पर कोई उंगली उठाने वाला नहीं। उसके देश के प्रति त्याग, साम्राज्य के प्रति त्याग तथा पेशवा के प्रति त्याग असाधारण हैं। नमक खाकर नमक हलाली ही की है, नमक हरामी नहीं। पेशवा के प्रति उसकी या उसके बाप-दादों की सच्चाई सन्देह रहित है। अब वह किसी भी समय साम्राज्य तथा पेशवा से सम्बंध-विच्छेद कर लेने पर दोषी नहीं हो सकेगा। उसे ऐसा कर लेना उचित है।' वह निर्णय करता हुआ निष्कर्ष पर निकला।

नाना के जीवन में संन्यास के प्रति कितने बार उफान आये और फिर किसी न किसी कारणवश शिथिल पड़ गये। उस जगतपिता के जानने की जिज्ञासा और उसकी प्राप्ति की लालसा, उसके जीवन में सदैव बनी रही। और यही कारण है कि जब-जब उसे अपनी जिन्दगी में कुछ सोचने का अवसर मिला, वह उधर की ही ओर खिंचता हुआ दिखाई पड़ा।

नाना ने करवट ली। उसके मस्तिष्क में एक नया प्रश्न उठा। 'पर ऐसी उलट फेर की अवस्था में उसका ऐसा कर लेना उचित होगा? वह मराठों से सम्बंध तोड़ सकता है, साम्राज्य से सम्बन्ध तोड़ सकता है, पेशवा से सम्बन्ध तोड़ सकता है लेकिन क्या वह राष्ट्र से भी सम्बध तोड़ने का अधिकारी हो सकेगा? हो सकता है उसका कर्तव्य-ऋण पेशवा, साम्राज्य और मराठों पर निकाला जा सके किन्तु राष्ट्र उसका ऋणी नहीं हो सकता। राष्ट्र के प्रति अभी उसे कुछ करना है और फिर ऐसे समय में जब विदेशियों की कूटनीति सम्पूर्ण देश को निगल जाने की ताक में हो। जाल बिछता चला जा रहा है। क्या ऐसा दिन भी आ सकता है जब देश इस जाल के भीतर जकड़कर सदैव के लिये दास बना लिया जाय?'

नाना सिहर उठा। उसने फिर करवट ली। 'ऐसा हो सकता है और सम्भवतः दोषी उसे भी बनना पड़े। लोग उसके पीछे उसे भला बुरा कहेंगे। उसे धिक्कारेंगे। गाली देंगे। वह कायरों में गिना जायेगा। वह स्वयं कलंकित होकर अपने पुरखों को, अपने परिवार को, और मराठा जाति को भी कलंकित

करेगा। आने वाली सन्तानें उसे घृणा की दृष्टि से देखेंगी। लेकिन, उसने तर्क किया 'लेकिन लोगों को ऐसा कहने का अधिकार क्या होगा? मैं ही इसके लिये जिम्मेदार क्यों? देश के व्यक्ति को इस कर्तव्य को समझने और पालन करने का ज्ञान होना चाहिये। सारे के सारे जिम्मेदार होंगे। देश में इन्कलाब किसी व्यक्ति विशेष द्वारा नहीं होता। वह तो सबके सहयोग की दृढ़ता है। उसकी प्राप्ति और स्थायित्व में एकरूपता की आवश्यकता है और यह एकरूपता हमसे आज कोसों दूर है। तब...तब मैं किसी भी दशा में कलंकित या कायर क्यों कहा जा सकूँगा?'

नाना की आत्मा को कुछ शान्ति मिली। उसने एक लम्बी साँस खींची। बुद्धि को कुछ अवकाश मिला। लेकिन कहीं कुछ कमी होने के कारण उसे समझने के हेतु फिर जिज्ञासा बढ़ी 'इन्कलाब, राज परिवर्तन, राष्ट्र पर बढ़ते हुये वैरियों का आधिपत्य—इनके लिए एकता, देश की कर्मण्यता की आवश्यकता होती तो है किन्तु इस संगठन का निर्माण तो किसी व्यक्ति विशेष के ही द्वारा होता है। वह जनसमुदाय का पथ-प्रदर्शक होगा। लोग उसके पीछे चलेंगे, कटेंगे, मरेंगे और अन्त में विजयी होकर उसके सिर पर सेहरा बाँधेंगे। वह कर्णधार होकर अन्त में ईश्वर का अवतार समझा जायेगा। यह है उसकी पराकाष्ठा।

जनता बिना किसी नेतृत्व के कोई कार्य नहीं करती। उसके लिए एक विशेष व्यक्ति का होना बहुत जरूरी है। मैं ऐसा कर सकता हूँ। देश के भीतर जागृति की भावना फैलाई जा सकती है। सम्भव है लोग इसकी खोज में हों। देश को एकता की सूत्र में बाँधा जा सकता है। कुछ परिश्रम है। अँग्रेजों की शक्ति क्षीण की जा सकती है। उन्हें देश से निकलने के लिये विवश किया जा सकता है। वे भारत को लीलना चाहते हैं। इसे लूटना चाहते हैं। वे धन वैभव के साथ-साथ, भारतीय सभ्यता को, समाज को, इसकी कला को परिवर्तन कर देना चाहेंगे जिसका परिणाम सम्भवतः यवन शासकों से भी अधिक भयंकर और घातक होगा।'

नाना के रोयें-रोयें खड़े होगे। उसकी कल्पनाओं में दृढ़ता आई 'वह देश का नेतृत्व करेगा। सम्पूर्ण राष्ट्र को एक ध्वज के नीचे खड़ा कर, वैरियों को परास्त करेगा। परन्तु......' किसी बात के स्मरण होते ही वह चिहुँक उठा, 'परन्तु पेशवा नारायणराव के......।' उसके सारे मनसूबे ढीले पड़ गये। सारी कल्पनायें छितरा गईं। हृदय ग्लानि से भर उठा। भुँभलाहट के साथ साथ सिर में कुछ पीड़ा होने लगी। उसने एक हाथ तकिए के नीचे और दूसरा सिर के ऊपर रखते हुये करवट बदली और सोने की चेष्टा करने लगा। वह पराजित हो चुका था। उसका सारा जोश ठंढा पड़ गया!

सिर पर किसी कोमल स्पर्श के कारण नाना ने धीरे से आँखें खोलीं। सिरहाने लक्ष्मी खड़ी थीं। उसने उसके हाथ पर अपना हाथ रखते हुये कहा 'अधिक ठंढा है लक्ष्मी। अच्छा मालूम हो रहा है।' उसकी दृष्टि झुकी हुई थी।

किन्तु आपका मस्तक तो गर्म नहीं है फिर भी आप हफ्ते से पड़े रोगियों जैसे क्यों दिख रहे हैं? सूरत जैसे बदल सी गई हो। क्या हो गया है आपको? मुझे तो अभी-अभी सवेरे मालूम हुआ था कि आपकी परस-नरसों से कुछ तबीयत खराब है। लक्ष्मी हाथ खींचती हुई बगल में एक गद्दीदार आसन पर बैठ गई।

नाना ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह करवट से सीधा लेट गया। उसके दोनों हाथ उसके सीने पर थे।

लक्ष्मी को नाना की भाव मुद्रा समझते देर न लगी। वह कारण समझ गई। उसने नाना के हाथ को धीरे से उठाकर अपनी दोनों हथेलियों में दबाते हुये कहा 'मुझे स्वयं का अनुभव तो नहीं लेकिन लोगों को कहते हुये सुना हुआ है कि मनुष्य रोगी हो जाने पर अपने विवेक को बिल्कुल ही खो बैठता है। क्या वास्तव में ऐसा कुछ है?' लक्ष्मी होठों के भीतर मुसकरा रही थी।

नाना पर जैसे सेकड़ों घड़े पानी गिर गया हो। उसे तत्काल ही कुछ स्मरण हो आया। वह शर्म से धँसने लगा। 'बिल्कुल तो नहीं मगर कुछ न कुछ शिथिलता आ ही जाती है। नाना ने अपने हाथ को खींचना चाहा परन्तु लक्ष्मी छोड़ न सकी।'

'जिन्दगी से ऊब कर भागने पर शान्ति नहीं मिलती फड़नवीस साहब। वह हर कहीं मृग-तृष्णा ऐसी भरमाती रहेगी।' लक्ष्मी नाना की हथेलियों को सहलाती हुई कह रह थी, 'मुझे फड़के जी से सारा हाल ज्ञात हुआ था। वास्तव में पेशवा साहब की हरकतें निन्दनीय हैं। लेकिन उनसे यह सुनकर कि इसी कारण आप सासांरिक सम्बन्धों को तोड़कर सन्यास की ओर अग्रसर होना चाहते हैं—मुझे आपकी प्रवृत्ति ठीक उन्हीं लोगों ऐसी लगी जो वास्तव म किसी कार्य को न चाहते हुये भी, विवश होकर कर लेते हैं। जिसके लिये, बाद में उन्हें, जीवनभर पश्चात्ताप करना पड़ता हैं। केवल शरीर को तपाकर आप कहाँ तक लाभ उठा सकेंगे—इसे आप स्वयं भी सोच सकते हैं। वैसे सन्यास की महानता तो अवर्णीय है।

नाना ने करवट ली और अपने दूसरे हाथ को भी लक्ष्मी की हथेलियों में दे दिया। उसका सारा शरीर रोमांचित हो उठा था। उसकी दृष्टि में वेदना थी। जो शायद लक्ष्मी के हृदय में चुभने लगी थी। वह उसी प्रकार लक्ष्मी की ओर देखता हुआ बोला, 'मैं बड़ा अभागा हूँ लक्ष्मी। जब से पृथ्वी पर पैर रखा है - यातना चिन्ता, अशान्ति जैसे सबकी सब मेरी सहचरी बन बैठी हों। पिता का सुख, माँ का सुख, स्त्री-सुख, जीविका-सुख, सभी कुछ तो छिन चुका है। अपनी कहलाने वाली वस्तु तो अब मेरे पास कुछ रही नहीं। तब......।'

'अपनत्व की भावना को लेकर जीवन से विराग,' लक्ष्मी ने बीच में टोका 'और जिसमें आनन्द की लालसा हो। इसका परिणाम बड़ा दुःखदायी होगा नाना साहब। आप वहाँ भी शान्ति न पा सकेंगे। कर्तव्य विमुख प्राणी आत्मिक सुख और शान्ति नहीं पा सकता।'

नाना मौन रहा।

लक्ष्मी कुछ उत्तर न पाकर फिर बोल—'आप सरीखे पुरुषों के लिये नासमझ मालिक के अपमान पर अपने कर्तव्यपथ से विचलित हो जाना शोभा नहीं देता। लोगों के लिये यह एक मिसाल बन जायेगी। विशेष कर कायरों के लिये। देश, समाज और साम्राज्य पर आये हुये संकटों के समय, केवल अपमान का आड़ लेकर, निरुद्देश्य, सन्यास के द्वारा आत्मा को शान्ति देने के हेतु भाग खड़े होना, कायरता नहीं तो और क्या कहा जा सकता है? मेरे शब्दों में आपको कड़वाहट मालूम होगी इसलिये कि वे सत्य हैं। सत्य स्वयं कठोर है। अत: इसकी साधना कठोरतम होनी ही चाहिये। आप कठोरता से पीछा छुड़ाकर, अकठोरता द्वारा मानसिक शान्ति नहीं प्राप्त कर सकेंगे। आप......।'

नाना जैसे अकुला उठा हो। सहन नहीं हो रहा था. 'लेकिन मैं यह चाहता कब हूँ लक्ष्मी। न मैं कर्म से डरता हूं न इसकी कठोरता से। मैं अपने कर्तव्य मार्ग से विमुख होना नहीं चाहता। मैं उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। किन्तु जो तुम कहती हो। जिस देश और साम्राज्य की तुमने दुहाई दी है—उसके प्रति कुछ किया जाय, इस पर मैं काफी सोच चुका हूँ। बहुत कुछ सोचने विचारने के उपरान्त भी जब किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सका तो अन्त में मैंने यही रस्ता पकड़ना उचित समझा। फड़के से मेरी बातें हुई थीं आज भी मैं सबेरे से - क्या करें क्या न करें—इन्हीं विचारों में बहुत समय तक उलझता रहा परन्तु कुछ सार न निकाल सका। सेवक अपने स्वामी को सलाह दे सकता है लक्ष्मी, बाध्य नहीं कर सकता और इस समय, पेशवा नारायण राव के शासन काल में, बाध्य करना तो दूर, सलाह देने वाला कर्तव्य भी छीन लिया गया है। अब तुम्हीं बताओ, ऐसी परिस्थिति में मैं क्या कर सकूँगा? अपमानित जीवन से अच्छा है कुटिया में रहकर जीवन व्यतीत करना।'

'कर्तव्य का माप दंड बनाकर देश में जागृति नहीं फूँकी जा सकती

महाशय। केवल अपनी परिस्थितियों को प्रतिकूल बता देने से मनुष्य छुटकारा पाने का अधिकारी नहीं होता। परिस्थितियाँ तो सबके सामने होती हैं। उसे मोड़कर आगे बढ़ने वाला व्यक्ति – व्यक्ति समझा जाता है। कर्मठ और कर्मशूर समझा जाता है। वह परिस्थितियों का दास होता हुआ भी अवसर की प्रतीक्षा किया करता है और जैसे उसे अवसर मिलता है, वह परिस्थितियों का दास होता हुआ भी अवसर की प्रतीक्षा किया करता है। उस पर विजयी होता है।'

नाना ने कोई उत्तर नहीं दिया।

लक्ष्मी समझ गई। फड़नवीस साहब उसकी बातों से सहमत थे। वे जिसकी खोज में थे सम्भवतः उसकी प्राप्ति हो गई। उसने बातों के सिलसिले को बदलते हुये हँसकर कहा 'कुटिया में चले जाने पर लक्ष्मी कहाँ मिलेगी?'

'जैसे यहाँ मिला करती है' नाना भी मुसकरा पड़े।

'अब! आज्ञा है? हाथों को खींच लूँ। रूठियेगा तो नहीं?'

नाना ने अपने हाथों को हटा लिया। लक्ष्मी उठ खड़ी हुई।

'जा रही हो?'

'जी हाँ।'

'कल आओगी?'

'एक अपरिचित पुरुष के पास अविवाहित युवती का आना-जाना समाज की दृष्टि में उपहास जनक है। ऐसा नहीं होना चाहिये। किसी के मुँह को कोई बन्द नहीं कर सकता।' लक्ष्मी के कथन में गंभीरता थी।

नाना भौचक्का सा देख रहा था। वह कुछ समझ नहीं पाया। धीरे से गावतकियों के सहारे ऊपर को खिसक कर बैठ गया। लक्ष्मी कमरे के बाहर हो गई। परन्तु क्षणभर में खिलखिलाती हुई द्वार पर लौटकर फिर खड़ी हो गई, 'फड़नवीस साहब आपे से बाहर हो गये होंगे क्यों? बिगड़े नहीं। कल आऊँगी।' वह चली गई।

नाना हँसता हुआ कुछ मुँह में बुदबुदाता रहा फिर किसी नवीन कल्पना में अपने को भूल सा गया। वह कब तक इसी प्रकार सोचता और अपने को आनन्दित करता रहा, उसे ज्ञान नहीं। लेकिन सामने दरवाजे पर खिदमतगार को खड़ा देखकर उसका तारतम्य टूट गया। 'क्या है?' उसने पूछा।

'सरकार, कारभारी श्री सखाराम बापू साहब पधारे हुये हैं। सरकार को देखना चाहते हैं।'

नाना ने सिर हिला दिया।

बारह

(क)

'सलोनी। ओ सलोनी।'

'कहो सरदार? सलोनी ठिठिक गई।

'कहाँ से आ रही हो?'

'नगर मे। अपनी कहो।'

'रोज रोज पूछती हो सलोनी।'

'रोज रोज कहते भी तो हो। तुम्हारी राज-भवन में तैनाती क्या हो गई मेरे जान की आफत आ गई है। सबेरे साँझ जहाँ भेंट होती है, बस सलोनी। सलोनी। सुनते-सुनते कान पक गये हैं। एक बार नहीं सौ बार कह दिया। सलोनी का नाम न जपा करो। इससे कोई लाभ नहीं। सरदार, अपना काम देखो जो करना है। मेरे पीछे अपने को बरबाद करने से कुछ पल्ले नहीं पड़ेगा। समझे।'

'यह रूप यौवन सदैव ऐसे ही नहीं रहेंगे सलोनी। यह बहार थोड़े दिनों की है। समय निकल जाने पर पछताओगी।' सरदार की आखों में जलन थी।

सलोनी हंसने लगी। 'सरदार, तुम क्षत्रिय हो न? तभी कुछ समझ मोटी है। अरे रूप, यौवन और बहार सबके सब तो नष्ट मेरे होंगे, जलन तुमको काहे की है। तुम्हारी जवानी तो नहीं बिगड़ेगी। बस। उसको बनाये रखो। दूसरे की चिन्ता में क्यों घुले जा रहे हो?' सलोनी जाने लगी।

'सलोनी.........।'

वह फिर रुक गई। 'कुछ और कहना चाहते हो? अच्छा कह डालो। तुम्हें तो कहने की बीमारी सी हो गई है।' वह हंसने लगी।

'सलोनी, क्या मैं इस योग्य भी नहीं हूँ कि मुझसे सीधी दो बातें कर

सको ? जब भी कुछ कहता हूँ तुम उसका उलटा ही उत्तर दिया करती हो। तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ तो तुम मुझे ज्ञान का उपदेश देने लगती हो। कहीं तुम मेरे हृदय की भावनाओं को समझती होती तो शायद तुम्हारा इस प्रकार निष्ठुर व्यवहार मेरे लिये न होता। मैं जितना तुम्हारे समीप आना चाहता हूँ, तुम उतनी ही दूर होती जा रही हो। क्या तुमको मेरे प्रेम पर विश्वास नहीं ? मेरा जीवन तुम्हारे लिये है सलोनी। इसे जब भी चाहो परख कर पुष्टि कर लो।'

सलोनी बड़े जोरों से हंस पड़ी। 'मर्दों के ये लटके बड़े पुराने हैं सरदार। प्रेम का दिखावा तो तुम्हारी जाति से कोई सीखे। बातों में तुम लोग दिल निकाल कर रख देते हो लेकिन सच्चाई की जानकारी भंवरे के कमल से रस चूस कर उड़ जाने के बाद होती है। क्यों ठीक है न ? प्रेम का प्रलोभन तो तुमने बहुत से रूप यौवना स्त्रियों के साथ दरसाया होगा। और फिर स्वार्थ सिद्धि के बाद अपने रस्ते चलते बने होंगे ? आज वही बात तुम मेरे साथ करना चाहते हो। तुमने किसी कुरूप स्त्री से इस प्रकार की चिकनी-चुपड़ी बातें नहीं की होंगी और न उसके साथ प्रेम ही दिखलाया होगा ! इस महल में और भी तो स्त्रियाँ हैं लेकिन उनमें किसी के साथ ऐसी बातें नहीं की। केवल मेरे ही साथ ऐसा क्यों ? कारण मैं सुन्दर हूं। बहुत सुन्दर हूँ। मेरी सुन्दरता में मादकता है। मैं जिधर से निकल जाती हूँ लोग मुझे घूरते रह जाते हैं। क्या मैं उनकी ललचाई दृष्टि को समझती नहीं ? उनकी लिप्साओं को जानती नहीं ? सब जानती हूँ। सब समझती हूँ। और इसीलिये उन्हीं के मुँह पर उनको थूकती हूँ। उन्हें धिक्कारती हूँ जैसा तुम्हारे साथ भी किया करती हूँ।'

सलोनी की ऊटपटांग और खरी बातों से सुमेर सिंह को कुछ तैश आ गया। 'सलोनी, जानती हो मेरे अधिकार में कितने गार्दी हैं ? पूरे एक हजार। मैं अगर चाहूँ तो एक बार सारे नगर को उलट पुलट सकता हूं। मैं उन्हीं सैनिकों का सरदार हूं। इसे तुमने सोचा नहीं है। मेरे एक इशारे पर तुम्हारी

ऐसी सैकड़ों औरतें मेरे पैरों पर लोट सकती हैं। तुम्हारे अकेले की कौन बिसात। तुमने मेरे सीधापन का उलटा अर्थ लगाया है और अपने औकात से आगे बढ़ गई हो। मैं अपनी वासनाओं की तृप्ति आज भी कर सकता हूँ—तुम्हें बलपूर्वक पकड़वा कर। किन्तु ऐसा करना मैंने उचित नहीं समझा। अच्छे काम को अच्छे ढंग से ही करना चाहिये। तभी उसमें आनन्द है। ठीक है। आज का अवसर तुम्हारे लिये अन्तिम अवसर है। इसे सोच विचार लेना। अगर मेरा काम ऐसे नहीं बना तो मैं अपनी शक्ति का उपयोग किये बिना नहीं रह सकूँगा। समझी।'

सलोनी फिर हँस पड़ी। इस बार उसकी लावनता सरदार की आँखों को जैसे चकाचौंध कर गई। सुमेर सिंह क्रोध में कहे हुये शब्दों पर भीतर ही भीतर पश्चात्ताप करने लगा। सलोनी की हँसी रुकने पर बोली 'आगये न अपनी औकात पर? अभी-अभी सलोनी पर अपनी जिन्दगी न्योछावर कर रहे थे और तनिक में त्यौरियों के बल पर वासनाओं की आग बुझाने लगे। यही है तुम्हारे प्रेम का मतलब। सुमेर सिंह तुम्हारी शक्ति का आतंक है तो जरूर लेकिन उसकी सीमा कहाँ तक है, इसे तुमने क्रोध में सोचा नहीं। तुम अपने बल से राजाओं को बना बिगाड़ सकते हो। विरुद्ध सेनाओं से लड़कर विजयी भी हो सकते हो और पराजित भी। लेकिन सलोनी के सामने तुम क्या, तुम से बड़े-बड़े सरदार भी हार कर ही जायेंगे जीत कर नहीं। सलोनी के पास वह जादू है जिसके फंदे में भगवान शंकर और श्रेष्ठ मुनि नारद भी चक्कर काटते रहे। तुम अभी कुछ नादान हो सरदार। अच्छी बात है। अगर तबीयत आवे तो अपनी शक्ति की भी परीक्षा कर लेना। देखना क्या परिणाम निकलता है।' सलोनी ने, बड़े रसीलेपन से सुमेर सिंह की ओर देखा और जाने लगी।

'सलोनी......!'

'मेरे पास समय नहीं है सरदार। और किसी दिन बातें कर लेना।' सलोनी चली गई। उसने दुबारा मुड़कर देखा भी नहीं।

शनिवार बाड़ा के ऊपरी भाग के दूसरी ओर पहुँचने पर सलोनी को किसी ने अपनी ओर आने का संकेत किया। वह इधर उधर देखती हुई उसके पास चली गई। 'क्या समाचार है ?'

'चिड़िया फँसी ही समझिये तुलया जी! सलोनी जिस काम को करना चाहे वह न हो। यह असम्भव-सी चीज है। आप निश्चिन्त रहें। अवसर आने पर वह सब से आगे रहेगा। दो चार दिनों में सब काम और ठीक हुआ जाता है।'

'शाबाश सलोनी! तुम्हें मुँह माँगा इनाम मिलेगा। जाओ। लेकिन बहुत सतर्क रहने की जरूरत है।

'हूँ।' सलोनी चली गई।

तुलया कुछ सोचता हुआ दूसरी ओर चला गया।

सलोनी—महल में नजरबन्द रघुनाथराव की अन्य दासियों में एक दासी है। तुलया को, सलोनी के प्रति सुमेर सिंह के खिंचाव का पता पहले ही लग चुका था। उसने सलोनी को मिलाया। कार्य-सिद्धि के लिये यह सुगम मार्ग था।

(ख)

कई दिनों से सलोनी और सुमेर सिंह में कोई बातचीत नहीं हुई। दोनों एक दूसरे को देखते नित्य हैं और सुमेर सिंह कुछ कहने के लिये प्रयत्न भी करता है लेकिन सलोनी जैसे जानती हुई भी ऐसा नहीं होने देती। वह सरदार को दूर ही से देखकर रास्ता बदलती हुई दूसरी ओर निकल जाती है। सरदार का कलेजा फटकर रह जाता है। लगी तो बड़ी बुरी होती है—चाहे वह जैसी हो।

अपने सैनिकों का निरीक्षण करने के उपरान्त जब सुमेर सिंह, शनिवार बाड़ा के लिये चला तो उसके मन में एक दृढ़ता थी—सलोनी से मिलने

की। हृदय में उठती हुई टीस को अब वह और अधिक सहन नहीं कर सकता था। सलोनी का स्पर्श, उसका आलिंगन और उसकी छलकती हुई जवानी के आनन्द की कल्पना ने सुमेर सिंह को मतवाला बना दिया था। अंधा बना दिया था। सलोनी उसके लिये, उसकी भुजाओं में आबद्ध होकर शिथिल पड़ जाने के लिये, उसके शरीर के लिये – अब अधिक जरूरी थी। सृष्टि का निर्माण केवल इसी आकर्षण के बल पर सारे ब्रह्मांड का संचालन किया करता है। यह रहस्य पुराना होते हुये भी सदैव नवीन बना रहता है।

दोपहर से संध्या हो गई। सुमेर सिंह जिस सकल्प को लेकर प्रतीक्षा में था बेकार हो गया। सलोनी आज एक बार भी बाहर नहीं दिखलाई पड़ी। सरदार कल के विषय में नहीं सोचना चाहता था। कल सम्भवतः उसके लिय एक युग के समान था। दिया बाती का जून हुआ। स्थान-स्थान पर प्रकाश होने लगे। सैनिकों की बदली आई। दिन वाले सैनिक चले गये। रात वाले आये। सरदार ने सबको देखा और कुछ हिदायतें दीं। यह उसके नित्य का कार्य था। सैनिक अपने अपने स्थान पर चले गये। सरदार भी बाहर के लिये चल पड़ा। ऊपर से नीचे उतर कर, मैदान में आने पर, कुछ अँधेरा था। बगल से एक स्त्री निकली। सुमेर सिंह ने ध्यान से देखा। वह कुछ आगे जा चुकी थी। सुमेर सिंह ने धीरे से पुकारा 'सलोनी।'

स्त्री रुक गई। सुमेर सिंह लम्बे डग रखता हुआ समीप पहुँचा। कुछ झुककर देखा। और तब उसे खींचकर अपनी बलिष्ठ भुजाओं में दबा लिया। उसकी गर्म-गर्म सांसें सलोनी के ओष्ठों के समीप होती गई। उसने झटका दिया और अलग हो गई।

सुमेर सिंह ने झुककर सलोनी के पैर पकड़ लिये, 'सलोनी' वह कातर स्वर में बोला 'अब सहा नहीं जा रहा है। मेरी दुनियाँ को बरबाद न करो सलोनी। मैं मर जाऊँगा। तुम्हारे बिना अब मैं एक पल भी जीवित नहीं रह सकता। मेरी......।'

सलोनी सुमेर सिंह का हाथ पकड़कर उठाती हुई धीरे से बोली कौई

इधर से निकलता हुआ देख ले तो।' वह खींचती हुई उसे पीछे की ओर अँधेरे में ले गई। और उसके सीने से चिपट गई।

सुमेर सिंह जैसे नशे में बोल रहा हो, 'अब मेरा साथ न छोड़ना सलोनी। कई महीनों की तपस्या के बाद तो तुम्हें पाया है। आज से हम तुम एक संबंध में बँध गये। हमारा तुम्हारा......।'

'किन्तु यह कैसे हो सकता है सरदार ! मैं दूसरे स्वामी की दासी हूं और तुम दूसरे स्वामी के। दोनों की शत्रुता और वैमनस्यता को तुम समझते ही हो। नारायण राव को,' सलोनी अपना घेरा बना रही थी पेशवा होने का अधिकार था या नहीं, यह तो दूसरी बात है किन्तु दादा साहब के प्रति उनका व्यवहार कितनी नीचता का है। इसे तुम देख रहे हो। इतने बड़े व्यक्ति को बन्दी बनाकर रखना क्या अच्छा कहा जा सकता है ?'

सुमेर सिंह के पास इस समय उचित अनुचित समझने की बुद्धि कहाँ। वह किसी दूसरे लोक में भ्रमण कर रहा था। वह सलोनी की अन्य बातों की ओर ध्यान दिये बिना बोला उन दोनों महाराजों में शत्रुता होने से हमें क्या मतलब ? वे आपस में लड़ें या मरें। हम तो उनके नौकर हैं। उनकी आज्ञाओं का पालन करेंगे। बस। उनके झगड़े का असर हमारे तुम्हारे ऊपर कैसा ? हम दोनों को अब कोई भी अलग नहीं कर सकता '

सलोनी अपने को बाहुपाशों से छुड़ाती हुई अलग हो गई। अगर मान लो कल दादा साहब को कहीं से सैनिक सहायता मिल जाय और वे किसी प्रकार तुम्हारे पेशवा के पंजे से निकल भागें तो क्या तुम उनके विरुद्ध अपने सिपाहियों सहित लड़ने नहीं आओगे ?

'क्यों नहीं आऊँगा। मुझे तो हर हालत में आना ही पड़ेगा।' सलोनी के अचानक वक्षस्थल से अलग हो जाने के कारण उसे कुछ झुंझलाहट आ गई थी। फिर भी अभी वह उसके हाथों को पकड़े सहला रहा था।

'तब हमारा तुम्हारा मेल कैसे स्थापित रह सकता है ?'

'परन्तु ऐसा होगा ही कैसे ? यह असम्भव है।'

'अच्छा माना, ऐसा नहीं हो सकेगा। दादा साहब सदैव नजरबन्द रहेंगे किन्तु हमारा तुम्हारा मिलन तो दूसरों की दृष्टि में सन्देह उत्पन्न करेगा ही और उसका परिणाम या तो प्राणदंड होगा या दोनों को देश निकाला। मैं देश छोड़ने से डरती नहीं सरदार। मैं आज नौकरी छोड़कर तुम्हारे साथ कहीं भी चल सकती हूँ। मेरे लिये तुम्हीं सब कुछ हो। लेकिन अपने कारण तुम्हें दुख में डालने के लिये मैं कभी भी तैयार नहीं हो सकती। इसे तुम पक्का समझो।'

अपने प्रति सलोनी का इतना मोह सुनकर, सुमेरसिंह ने जैसे संसार के सारे ऐश्वर्य को पा लिया हो। उसने धीरे से सलोनी को फिर अपने सीने से चिपटा लिया। 'तो तीसरा उपाय क्या हो सकता है सलोनी ?' उसने पूछा।

सलोनी ने सरदार की आखों में आखें डालीं। बड़ी बड़ी मूछों के नीचे मोटे-मोटे ओठ, सलोनी के पतले कोमल ओष्ठों को परेशान करने लगे। सलोनी ने भी अपनी सुधबुध खो दी। परन्तु अचानक पीछे खटका होने के कारण दोनों अलग हो गये। आखें फाड़कर देखने पर मालूम हुआ—बिल्ली कुछ मुँह में दबाये दौड़ी जा रही थी।

सुमेर सिंह, सलोनी का हाथ पकड़े हुये और पीछे चला गया। अंधेरा अधिक और एकान्त होने के कारण उधर किसी के आने की अब सम्भावना नहीं थी। सलोनी के संकेत पर सुमेर सिंह बैठ गया और वह उसके गोद में थी। सरदार के चौड़े वक्ष को सहलाती हुई सलोनी बोली 'तुम लोग चाहो तो दादा साहब ही को पेशवा बना सकते हो। थोड़ा साहस चाहिये। दादा साहब के प्रति सबको श्रद्धा है। यहाँ तक कि तुम्हारे दूसरे गार्दी सरदार नारायणराव से अधिक दादा साहब ही को चाहते हैं।' सलोनी अपने काम पर आई 'खैर, जो भी हो, अगर ऐसा हो जाता तो शायद हमारी तुम्हारी गाँठ सदा के लिये गंठ जाती।'

'कहती तो तुम ठीक हो सलोनी' सरदार कुछ सोच-सोच कर बोलने

लगा था 'लेकिन यह काम अकेले बूते का नहीं है ? वैसे यदि तुम्हारी इच्छा हो तो अकेले भी कर सकता हूँ लेकिन नतीजा क्या निकलेगा इसे तुम सोच लो।'

'इस प्रकार के काम भला कहीं अकेले होते हैं। तुम्हारी जान क्या फालतू है या तुम मेरे लिये फालतू हो ? पिछले दिनों, मेरे कानों में कुछ ऐसी भनक पड़ी थी जिससे मालूम हुआ कि तुम्हारे अन्य तीनों सरदार कुछ इस प्रकार का काम करना चाहते हैं किन्तु तुम्हारे भय से उनकी हिम्मत नहीं होती है।' सलोनी अपने उरोजों पर सरदार की नाचती हुई हथेलियों को अपनी हथेलियों से तनिक दबाती हुई कुछ रुककर बोली 'यदि कहीं ऐसा हो जाता तो हम तुम स्वर्ग का सुख लूटते और सदा के लिये हमारा खटका मिट जाता। तुम्हारे केवल 'हाँ' से सारा काम बन सकता है।' सलोनी जैसे उठना चाह रही हो।

सुमेर सिंह ने उसे दबाते हुये आश्चर्य से पूछा 'क्या! मेरे और सरदार तैयार हो चुके हैं।'

'बिल्कुल। मुझे ऐसी ही सूचना मिली है।'

'तो ठीक है। मैं उनका साथ दूँगा। साथ साथ तुम मेरी परीक्षा भी कर लोगी।'

सलोनी मुँह बनाती हुई अचानक फुर्ती से उठकर खड़ी हो गई। सुमेर सिंह को भी उठना पड़ा परन्तु उसकी शीघ्रता से चलती हुई सांसें कुछ और चाह रही थीं।

सलोनी मुँह में मुँह सटाती हुई बोली 'कल इसी समय यहाँ मिलना। तुम्हारी भेंट तुलयाजी से कराऊँगी।'

'क्यों ?' सरदार कुछ चकपकाया।

'कल आने पर मालूम होगा। बस। इसी समय। जाओ।' सलोनी दूसरी ओर चली गई।

तेरह

सबेरे से श्वेत चट्टानों सदृश बादलों के बड़े-बड़े टुकड़े आकाश-मंडल में पूरब से पश्चिम की ओर भागते चले जा रहे थे। वायु में ठण्डक थी और गुदगुदी भी। छाँव और धूप का मिश्रण, ऊपर नभ में चमकते हुये कबूतरों और श्यामल चील्हों के चक्कर और उनकी कलेबाजियाँ प्रकृति को अधिक मनोरम बना रही थी।

नाना की तबीयत ठीक थी। लेकिन पूरी नहीं। जलपान के उपरान्त वह फिर पलंग पर लेट रहा और बड़ी बड़ी खिड़कियों से आती हुई उपवन की सुगंध मिश्रित हवाओं का आनन्द लेने लगा। उसकी आखें बन्द थीं और लक्ष्मी कल्पनाओं में आकर उसे रिझा रही थी। वह लक्ष्मी के साथ जिस लोक में भ्रमण कर रहा था, वह अधिक सुन्दर और सुखदायी था। वह अपनी कल्पनाओं में कहाँ तक पहुँच गया यह अनुमान लगाना कठिन था। लेकिन अब वह अपनी सीमा के समीप पहुंच ही रहा था कि किसी के कोमल कंठ से निकला 'लक्ष्मी, आपको अब अधिक परेशान करने लगी है ?'

नाना की आखें खुल गईं। लक्ष्मी बैठी मुसकरा रही थी। नाना ने कुछ कहा नहीं केवल टकटकी लगा कर लक्ष्मी को देखता रहा। उसके नेत्रों में रहस्य था।

'आज कुछ विशेषता आ गई है मेरे चेहरे पर ? बड़े घूर-घूर कर देख रहे हैं।' लक्ष्मी खिसके हुये आंचल को सम्भालने लगी थी।

'ऊहूं। मेरी आँखों में। इसका सम्पर्क हृदय से है न। ध्यान से मेरी आँखों में आँखें डाल कर देखो। तुम्हें भी भेद मालूम हो जायेगा।' नाना हँस रहा था।

'मुझे भेद नहीं जानना है, न हृदय के सम्पर्क और सम्बन्ध ही को समझना है। आपकी चीज आपही को मुबारक।' लक्ष्मी ने अजीब तरह से नाना की ओर देखा। नाना का हृदय कुछ चाहने लगा।

'सुना है लोगों में कुछ चर्चा होने लगी है।' नाना ने कहा।

'कैसी।

'लोगों का कहना है कि लक्ष्मी बाई ने नाना साहब पर कोई टोना कर दिया है वरना नाना साहब की खूबसूरती का लक्ष्मी बाई से क्या तुलना? कहाँ नाना और कहाँ लक्ष्मी'? तुमने भी तो कुछ सुना होगा?'

लक्ष्मी आँखें नचाती हुई बोली 'क्या कहने हैं? आपकी और पूना वालों की सुन्दरता की चर्चा कहाँ नहीं हो रही है? इतनी दूर से मैं आई कैसे हूं? लेकिन पूना वालों ने यह नहीं सोचा कि मेरे आने से उनके फड़नवीस साहब की तकदीर खुल गई नहीं तो जिन्दगी यों ही कट जाती। आया आपके ख्याले-शरीफ में?'

दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े।

हँसी रुकने पर नाना ने बैठते हुये कहा, 'तुम्हारी चोरी से आने की आदत बड़ी बुरी है। मैं अचम्भे में पड़ जाया करता हूँ।'

'यह आदत बुरी होते हुये भी रोगी के लिये सुखप्रदायिनी है। आप की अब तबीयत कैसी है? पहले से कुछ स्वस्थ तो दिख रहे हैं।'

'हाँ बहुत कुछ। एक बात बताओ लक्ष्मी। तुमने यह कैसे जाना कि मैं उस समय तुम्हारे ही विषय में सोच रहा था?'

'वैसे ही जैसे एक चोर दूसरे चोर के विषय में जान लेता है। मैं भी तो कल से आपके बारे में अधिक सोच रही थी इसलिये आपका भी मेरे लिये सोचते रहना स्वाभाविक था। अपूर्ति और पूर्ति की विभिन्नता का मापदंड यही तो है।'

नाना सोचने लगा। 'क्या पूर्ति या प्राप्ति के उपरान्त सम्बन्धित व्यक्तियों या वस्तुओं में भिन्नता आ जाती है? उनमें पहली वाली दशायें नहीं रहती?'

'बिल्कुल नहीं। और ये भावनायें आप या मेरे तक ही सीमित नहीं। यह प्रकृति के कण-कण में व्याप्त हैं और ऐसा होना भी चाहिये वरन् विश्व की सभ्यता, उसकी कला और उसके विज्ञान के घूमते हुये चक्र में जंग न लग जाय? प्राप्य का त्याग और अप्राप्य की लालसा—इसी पर इस ब्रह्मांड की स्थिरता है।'

'तो तुम्हें आत्मा – परमात्मा या आत्मा-आत्मा की अभिन्नता पर विश्वास नहीं और यदि है तो पुरातन का परित्याग और नवीन की आकाँक्षा वाली धारणा छोड़नी पड़ेगी क्योंकि वहाँ जो कुछ है वही सब कुछ है। परिवर्तन ही प्रकृति का नियम है – इस कथन की पुष्टि वहाँ नहीं होती। आत्मा का सम्बन्ध अटूट है, अविनाशी है और लालसा रहित है। वहाँ वासना नहीं-प्रेम है।'

जिस प्रेम के आदर्श को उस दिन लक्ष्मी ने अपने तर्कों द्वारा धूल-धूसरित कर दिया था, आज वही इस समय एक समस्या बन गई। नाना ने लक्ष्मी को बहुत ही अच्छे ढंग से घेरा था। लक्ष्मी कुछ सोचने लगी। नाना अन्दर ही अन्दर हँसा। आज उसका प्रेम विजयी हुआ।

इसके पहले कि लक्ष्मी कुछ कहे नाना आश्चर्य भरे स्वर में शीघ्रता से बोला 'उठो! उठो!! वहाँ से जल्दी उठो!!!'

लक्ष्मी चकपका कर उठ खड़ी हुई 'क्या है?'

नाना ने धीरे से लक्ष्मी के सुन्दर हाथों को पकड़ लिया और पलंग पर बैठाते हुये बोला 'आज मैं जीता। तुम हारी।'

'यह भी जीत मेरी ही है। तुम्हारी नहीं। तुम्हें अभी इसके लिये प्रतीक्षा करनी पड़ेगी', वह मुस्कराई ' किन्तु हो बड़े चतुर?'

नाना हंसने लगा, 'चतुर न होता तो तुम्हें पाता कैसे? अब उसके लिये तुम्हारी क्या राय है?'

'किसके लिये? साफ-साफ कहोगे या पहेली बुझाओगे।' लक्ष्मी ने जानते हुये पूछा।

. . . .

नाना ने खिसक कर लक्ष्मी के कानों में कुछ धीरे से कह दिया।

लक्ष्मी उठ खड़ी हुई 'मैं क्या जानूं इस विषय में? जिससे कहना है उस से कहिये।' उसके मुखमंडल पर स्त्री सुलभ भाव झलक कर ओझल हो गया। 'जा रही हूँ।' वह बोली।

'सन्ध्या को आओगी?'

लक्ष्मी मुँह चिराती हुई बाहर निकल गई।

चौदह

(क)

भादों का महीना और कृष्णपक्ष की वर्षा मानो दिये की भभक का प्रमाण दे रही हो। पूना और उसके आस पास के क्षेत्रों में, इन पन्द्रह दिनों की वर्षा ने बाढ़ का दृश्य उपस्थित कर दिया था। परन्तु दैवयोग से शुक्ल पक्ष के चढ़ते ही पानी पूर्णरूप से थम गया। वैसे बादलों का समूह आता है—चला जाता है। काली घटायें घिरती हैं—उड़ जाती हैं। चाँद किसी रात को हंसता हुआ रात-भर अपने रूप सौन्दर्य को बिखेरा करता है तो किसी-किसी रोज बदलियों में लुकता छिपता ललचाया करता है। कहने का तात्पर्य यह कि अधिक और निरन्तर वर्षा के कारण लोगों में जो शिथिलता और उकताहट आगई थी—कम हो चली है। मौसम कुछ बदला-बदला सा मालूम होने लगा था।

गणपति का त्यौहार आया। महान त्यौहार। दस दिनों के लिए राज्य का सारा कारोबार बन्द कर दिया गया। कार्यालयों में छुट्टियाँ हो गईं। कलाबत्तू और रेशम के कारखाने बन्द कर दिये गये। नगर में धूमधाम बढ़ने लगी। नगर की परिचालक सभा में दस दिनों के लिये कुछ लोगों की और नियुक्ति की गई। बढ़ता हुआ मेला और जनसमूह से उत्पन्न गन्दगी और बीमारियों से बचाव के हेतु सफाई तथा औषधालयों का विशेष प्रबन्ध किया गया। दूर-दूर से आये हुये यात्रियों और दर्शकों के लिये सरकार की ओर से स्थान-स्थान पर बड़े बड़े तम्बू लगाये गये। उनकी सुरक्षा तथा शान्ति की स्थापना के हेतु सैनिकों और सिपाहियों का समुचित प्रबन्ध किया गया।

शहर में खूब चहल पहल थी। दूकानों की सजावट और उन्हें अधिक आकर्षक बनाने के लिये अधिक से अधिक भिन्न-भिन्न प्रकार की नई-नई भड़कदार वस्तुएँ लगाई गई थीं। खिलौनों की दूकानों पर बच्चों की भीड़, प्रत्येक-

खिलौने को लेने का हठ और साथ में आये हुये माता-पिता को रोने की धमकी, चूड़ियों की दूकानों पर स्त्रियों का जमाव और नई से नई चूड़ियों की फरमाइश ; पुरुषों की खरीदारी और आपसी मोल तोल, दूकानदारों से झगड़ा-झपटा ; चर्खियों और चक्कर लगाते हुये घोड़ों पर चढ़ने की होड़ और खींचा-खींची ; स्थान स्थान पर सिद्ध साधु-सन्यासियों के प्रवचन और धर्मोपदेश, ईश्वर की महानता और आवागमन से छुटकारा पाने के साधन, त्रिकालदर्शी भगवान और देवताओं में श्रेष्ठ उनके पुत्र गणेश की महिमा तथा इहलोक और परलोक की उपयोगिता, इधर-उधर छोटी छोटी टोलियों में गोंधलियों का भगवत भजन इत्यादि कार्यों ने मिथ्या जगत को आनन्ददायक और सत्य के रूप में परिवर्तित कर दिया था। पूना नगरी बड़ी ही प्यारी लग रही थी।

अपराह्न का समय आया गणनाथ की सवारी निकलने की तैय्यारियाँ होने लगीं। लगभग चार बजते-बजते सवारी निकली। आगे सजे हुये सिंहासन पर गणनायक की दिव्य मूर्ति चल रही थी जिसे पन्द्रह आदमी उठाये हुये थे। सवारी के ठीक पीछे युवक पेशवा नारायणराव और वृद्ध कारभारी सखारामबापू घोड़े पर आरूढ़ थे। उनके पीछे प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े सभी जाति की, नगर की या बाहर की आई हुई स्त्रियों का विशाल समूह चल रहा था। स्त्रियों के पीछे पुरुष का समूह था और अन्त में राज्य के अन्य मन्त्री गण जिन में नाना फड़नवीस भी था—घोड़ों पर चल रहे थे। एक छोटी सी टुकड़ी सैनिकों की थी—प्रबन्धार्थ।

नगर में, जब एक ओर इस महान पर्व के अवसर पर मनुष्य कहलाने वाली जाति सुन्दर विचारों से ओत-प्रोत, गणपति की जयजयकार करती हुई, आनन्द मग्न सवारी के पीछे झूमती चली जा रही थी तो दूसरी ओर अंग्रेजी सभ्यता और उनकी इन्सानियत का प्रतीक मास्टिन घर के सब से पीछे वाले कमरे में मुहम्मद युसुफ, बहादुर खाँ और खड़ग सिंह से बातें कर रहा था। लेकिन वे लोग अभी किसी की प्रतीक्षा में थे। वैसे निश्चित किया हुआ समय तो बीत चुका था फिर भी आशा थी। अचानक द्वार की ओर पद-ध्वनि

सुनकर लोगों ने उधर देखा—तुलया पवार और उसके पीछे सुमेर सिंह चले आ रहे थे। मास्टिन ने उठकर दोनों से हाथ मिलाते हुये उचित स्थान पर बैठाया।

'आप लोगों के आने में कुछ देर हुई।' मास्टिन ने मुसकराते हुये तुलया से पूछा।

'हाँ। कुछ काम ही ऐसा आ पड़ा था। मास्टिन साहब, 'मेरी इनकी' तुलया ने सरदारों की ओर देखा 'बातें हो चुकी हैं। मैं समझता हूँ अपनी सैनिक शक्तियों द्वारा ये किसी भी कार्य को सरलता पूर्वक कर सकेंगे।'

'बिल्कुल। इनके लिये यह कोई बड़ा काम नहीं है। और......।'

'लेकिन एक चीज' बहादुर खाँ ने टोका 'आप लोगों ने नहीं सोचा। शायद किसी वजह से अगर हम अपने काम में कामयाबी न पा सके तो? फिर तो हमारी जिन्दगी तबाह हो जायेगी। ऐसी हालत में हम कहीं के न रह जायेंगे।'

'यह तो सही है तुलयाजी। सरदार साहबों का कहना गल्त नहीं।' मास्टिन ने इधर भी हामी भरी।

मैंने पहले भी' बहादुर खाँ फिर बोला 'इसीलिये तुलयाजी से कुछ इशारा किया था और रकम भी बताई थी।'

'मैं महाराज साहब से पूछ कर आया हूँ खाँ साहब किन्तु वे तीन लाख से अधिक देने में असमर्थ हैं। उनका कहना है वायदा वही होना चाहिये जिसे पूरा किया जा सके। रही चीज पेशवा बनने के बाद की, इसे वे इस समय कहकर वचन-बद्ध होना नहीं चाहते। अब आप.........।' तुलया ने बताया।

मास्टिन ने सरदारों की ओर देखा 'मंजूर कीजिये। आगे बहुत कुछ होने की उम्मीद है। महाराज साहब की दरियादिली को कौन नहीं जानता। पहले आप उन्हें मसनद पर बैठायें तो फिर देखिये। साथ ही मेरी भी दोस्ती आप लोगों को अच्छी ही साबित होगी।'

सरदारों ने एक दूसरे की ओर देखा। सारांश मंजूरी का था। युसुफ बोला 'रुपयों की अदायगी ?'

'काम हो जाने पर।' तुलया का उत्तर था।

फिर निगाहें एकबार टकराईं, 'काम हो जायेगा। सिर्फ दिन और वक्त जानने की जरूरत है।' युसुफ बोला।

'बताऊँगा, लेकिन आज नहीं। अवसर देखकर। पर इतना आप ध्यान रखें कि सूचना मिलते ही काम फौरन हो जाय वरना समय चूक जाने पर पासा पलट जाने का खतरा रहेगा और उसका परिणाम हमारे आपके लिये कितना भयंकर होगा इसे हम भली-भाँति समझते हैं।'

'इसकी आप फिक्र न करें तुलया साहब। यह जिम्मेदारी हमारी हैं।' युसुफ गर्व से बोला और उठ खड़ा हुआ।

एक के बाद एक, रुक-रुक कर बहादुर खाँ, खड्ग सिंह और युसुफ निकल गये जब सुमेर सिंह जाने लगा तो मास्टिन उससे हाथ मिलाता हुआ तुलया से बोला 'मैं समझता हूं तुलयाजी, सरदार साहब पर ज्यादा भरोसा किया जा सकता है। मेरे ख्याल में मौका आने पर ये आपके काम में कसर न उठा रखेंगे।'

'मुझे भी ऐसी ही आशा है मास्टिन साहब। आगे इनकी मर्जी। चाहे काम को बनावे या बिगाड़ें।'

'सब हो जायेगा तुलयाजी। घबड़ाने की बात नहीं समय आने दीजिये आप जो चाहते हैं वही होगा।' सुमेर सिंह चला गया।

मास्टिन तुलया के कंधे पर हाथ रखता हुआ बोला 'आपने तो कमाल कर दिखाया। जितना मैं सोचता था उससे कहीं आप आगे निकले। सुमेर सिंह को इतनी जल्दी आप काबू में कर लेंगे इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था।'

'बड़ी कठिनाइयों के बाद, तुलया भी हंस रहा था यह हाथ में आया है मास्टिन साहब। आप तो जानते हैं स्त्रियाँ संसार में क्या नहीं कर सकती हैं

और फिर वे स्त्रियाँ जो रूपवान, नवयौवना और चंचल हों। यह उसी का शिकार है।'

'तब ठीक है। यह शिकार आपकी सारी कामनाओं को पूरी करेगा। इसके पीछे अब दो ताकतें काम करने लगी हैं,' मास्टिन हँसा 'लगी की चाह और ज्यादा दौलत पाने की हविश। न होते हुये काम को भी यह कर दिखायेगा। अब, मास्टिन अपने दाँव पर आया 'आपने करने को क्या सोचा है? कुछ निश्चय कर लिया?'

'इसमें सोचना क्या है। नारायणराव के स्थान पर महाराज साहब को और महाराज साहब के स्थान पर नारायणराव को। इससे अधिक हम लोगों को चाहिये भी नहीं।'

'हाँ...चाहिये तो नहीं, लेकिन ..।'

'लेकिन क्या?' तलया ने आश्चर्य से मास्टिन की ओर देखा।

मास्टिन अपने चेहरे पर गंभीरता लाता हुआ बोला 'अगर आज आपके महाराज साहब न होते तो शायद नारायणराव पर इस आने वाली आफत की किसी ने कल्पना तक न की होती। आज नारायणराव के लिये आपके महाराज साहब आस्तीन के साँप हो रहे हैं। यही हालत महाराज साहब की भी हो सकती है। पेशवा बनने के बाद। इसे आप जरा दूर तक सोचिये तुलया जी।'

तुलया ने भेद भरी आँखों से अँग्रेज की तरफ देखा।

'इसका उपाय बहुत सीधा है', मास्टिन ने झुकते हुये तुलया के कुछ कानों में कहा 'दुश्मनों से बचने के लिये यही सीधा रास्ता है। आगे आप लोग जानें। हमारी सरकार जब आपका साथ देने का वायदा कर चुकी है तो किसी भी हालत में पीछे नहीं हटेगी।' मास्टिन ने सिर नीचा कर लिया। जैसे वह किसी गंभीर प्रश्न पर विचार करने लगा हो।

थोड़ी देर तक वहाँ स्तब्धता बनी रही। दोनों मौन बैठे रहे। अन्त में तुलया ने उठते हुये कहा 'सवारी लौटने के पहले ही मुझे निकल जाना चाहिये।'

मास्टिन ने उठकर हाथ मिलाया।

'आपकी सलाह में काफी तथ्य है साहब। इसपर सोच लेने के बाद ही कोई काम किया जायेगा। आपकी इस दूरदर्शिता की मैं सराहना करूँगा। मौका देखकर फिर आऊँगा।' तुलया घर के बाहर हो गया।

मास्टिन अपनी जीत पर हँस रहा था।

(ख)

आज भाद्रपद तेरस है। मेला का नवाँ दिन। नित्य की भाँति आज भी देवालयों में वेदमन्त्र और घंटों की घरघराहट से नगर प्रतिध्वनित हो रहा था। परन्तु कुछ वृद्ध विशिष्ट पुरुषों को वातावरण में हलकापन प्रतीत हो रहा था। वे इसे अपशकुन मानते थे। फिर भी मौन थे। शुभ दिनों में इस प्रकार के विचार पापपूर्ण हैं। कल पर्व का अन्तिम दिन है। मूड़ा-मूठा के संगम में गणनाथ की विसर्जित मूर्ति का सब दर्शन करें—यही महान पुण्य है।

लगभग दिन के दस बजने को होंगे। पेशवा नारायणराव का बुड्ढा नौकर चप्पाजी तिलेकर उन्हें कपड़े पहिना रहा था। 'बाबा', तिलेकर की गोद में ही नारायणराव पला पुसा था, 'फड़के को हमारे साथ चलनेकी सूचना है।'

'जी महाराज। वे नीचे आ चुके हैं।'

'मैं एक बार नहीं पचीसों बार कह चुका कि तुम मुझे महाराज कह कर न सम्बोधित किया करो। किन्तु तुम ध्यान ही नहीं देते। तुम मेरे पिता से भी बड़े हो बाबा।'

तिलेकर मुसकराने लगा। अँगरखे को पहिनाते हुये बोला 'भगवान रामचन्द्र जी के लंका से लौटने के बाद उनका राज्याभिषेक हुआ महाराज और वे अयोध्या के सिंहासन पर बैठे। देश देशान्तर में लंका विजय और उनके आगमन की सूचना फैल गई। राज्याभिषेक के थोड़े दिनों बाद, एक दिन एक बुड्ढा—हमारे ही ऐसा होगा लाठी टेकता, राम राम चिल्लाता दरबार में आ पहुँचा। संयोगवश उस समय भगवान राज सिंहासन पर ही

थे। अचानक जब बुड्ढे की उधर दृष्टि गई तो वह ठिठका और खड़ा हो गया। तब तक भगवान सिंहासन छोड़कर दौड़े और वे बुड्ढे के समीप आकर पैर छूने को झुके ही होंगे कि बुड्ढा पीछे हटता हुआ चिल्ला उठा—महाराजा रुकिये। अब आप मेरे वाले राम नहीं हैं। आप महाराज रामचन्द्र हैं। मैं अब प्रजा हूँ। राजा पिता है और प्रजा पुत्र। उलटा कार्य करके अनर्थ न कीजिये महाराज। मैं घोर नरक का भागी हूँगा। मैंने आपको पुत्र ऐसा पाला है। सही है। आपने मुझे पिता तुल्य समझा है। यह भी उचित है। किन्तु हमारा आपका पहले वाला व्यवहार समाप्त हो चुका। हाँ, हृदय का जो अपनी धरोहर है—वैसे ही रहेगी जैसे पहले थी। उसमें कोई परिवर्तन नहीं।' तिलेकर की आँखें डबडबा आई थीं। वह जूते को पोंछकर पहिनाता हुआ बोला 'यही चीज अब मेरे पास है महाराज। इससे अधिक मैं चाहता भी नहीं। वह उतारे हुये कपड़ों को लेकर दूसरे कमरे में चला गया।

युवक पेशवा का हृदय भर आया। स्वयं साफा उतारकर मस्तक पर रखा और बाहर निकलने के लिये मुड़ा ही था कि मुसकराती हुई गंगा आ खड़ी हुई। छोटे-छोटे श्वेत चाँदी जैसे दाँत श्यामल बदलियों में कौंध रहे थे। 'कहाँ की तैयारी हो गई सबेरे सबेरे। आपकी जनता बड़ी निर्दयी है। क्या वह समझती नहीं कि राजा के पास भी हृदय होता है? भावनायें होती हैं। सबेरे से साँझ तक एक न एक पचड़ा लगाये ही रहती है।'

नारायणराव ने हँसकर गंगा की ठुड्डी पकड़ते हुए धीरे से कहा 'रात का समय तो नहीं लेती?'

'चलिये, सब बातों का मजाक ही बना लेते हैं। कब तक लौटियेगा? त्यौहार के दिनों में.....।'

'बहुत देर नहीं लगेगी। कोलाबा के रघुजी आंगरे साहब आये हुये हैं। किसी विशेष कार्य के लिये बुलाया था। आज मैंने समय दे दिया है। बात करके शीघ्र ही लौटूंगा।' पेशवा चला गया।

गंगा अपनी दाहिनी आँख मलती हुई सोने वाले कमरे में चली गई। कल से उसकी दाहिनी फड़क रही है। वह चिन्तित थी।

रघुजी ने जो कुछ पेशवा को बताया वह बड़ा भयानक और वीभत्स था; पेशवा सुनकर पीला पड़ गया। 'दादा का,' पेशवा के स्वर में भय था 'हाथ होगा!'

'चाहे हाथ जिसका हो इसे बाद में देखना। अब आवश्यकता है सतर्क हो जाने की। खोज बीन शीघ्र शुरू हो जानी चाहिये। यहाँ बुलाने का यही अभिप्राय था।'

नारायणराव ने कोई उत्तर नहीं दिया और न उसने अधिक पूछा ही। वह बाहर आकर घोड़े पर बैठता हुआ बोला 'पार्वती मंदिर चलना है फड़के?'

'जी हाँ महाराज। वहीं जलपान का प्रबन्ध किया गया है। कुछ आमंत्रित और अतिथि भी हैं।' फड़के बड़े आश्चर्य से नारायणराव के चेहरे की ओर देख रहा था।

नारायणराव ने आगे कुछ नहीं कहा। मौन सिर लटकाए सोचता चलने लगा। पार्वती मन्दिर आया। लोग पहले से प्रतीक्षा में थे। पेशवा ने जैसे-तैसे जलपान किया और तत्काल ही चलने के लिये उठ खड़ा हुआ। घोड़े को नगर की ओर मोड़ता हुआ बोला 'जानते हो, रघुजी ने क्यों बुलाया था? मेरी हत्या के लिये षड़यन्त्र रचा जा रहा है। दादा जो कुछ न कर दें। उनके लिये सब थोड़ा है।'

हरीपन्त घोड़े की रास झिटकता हुआ पेशवा के बगल में आ गया। वह आँखें फाड़ता हुआ नारायणराव की ओर देख रहा था 'महाराज की हत्या के लिये?'

'हूँ' कुछ ऐसी ही बात है। अब जरूरत इसके पता लगाने की है। जितनी जल्दी हो सके यह काम आरम्भ हो जाय। मैं समझता हूँ तुम आज ही से इस काम में हाथ लगा दो।'

'जी। दोपहर में एक मित्र के यहाँ निमंत्रण है। भोजन के उपरान्त ही इस कार्य में जुट जाऊँगा। दादा साहब की नीचता की हद हो गई।'

नारायणराव मौन रहा। शनिवार बाड़ा आया पेशवा ऊपर चला गया।

'भोजन का प्रबन्ध कराऊँ ?' गंगा बाई ने पूछा।

'ऊहूँ' इच्छा नहीं है।' नारायणराव पलंग पर लेट गया।

गंगा ने ध्यान से अपने पति को देखा। पेशवा का चेहरा कुछ बता रहा था। वह पलंग पर बैठती हुई अनायास ही पूछ बैठी 'आंगरे साहब ने क्यों बुलाया था ?'

'मेरी हत्या का षड्यन्त्र हो रहा है इसकी भनक उनको कहीं से लगी है। यही कहना था।'

गंगा के हृदय में जैसे किसी ने बर्छी भोंक दी हो। वह अवाक रह गई। उसकी फड़कती हुई आँखों का भविष्य उसे विकल करने लगा। फिर भी उसने बड़ी समझदारी से काम लिया। कुछ रुककर ढाढ़स देती हुई बोली 'इसकी जाँच के लिये कुछ प्रबन्ध किया गया ?' 'हाँ।'

गंगा की विकलता में ओट लग गई। अब आप थोड़ी देर आराम कर लें। राज-काज में ये सब चक्र चला ही करते हैं। इसके लिये कहाँ तक चिन्ता कीजियेगा। फिर इस अफवाह की प्रभाविकता ही क्या ? मैं मंदिर जा रही हूँ। अभी शीघ्र ही लौट आऊँगी।' वह चली गई।

एक बजने का समय होगा। सलोनी महल के इधर-उधर दौड़ती तुलया पवार को ढूँढ़ रही थी। तुलया मिला। उसने संकेत से उसे दूसरी ओर चलने के लिये कहा।

'आपके षड्यन्त्र का पता पेशवा को मालूम होगया बड़ी बुरी आफत आई।' गंगाबाई को पार्वती बाई से कहते हुये सुना है। वे गणनायक के मदिर में मनौतियाँ मनाने गई हैं।' सलोनी पसीने से तरबतर हो रही थी।

तुलया के सामने अँधेरा छा गया। वह किधर का भी न हुआ। क्षण-भर में भविष्य की हजारों कल्पनायें उसके मस्तिष्क में आईं और विलीन हो

गईं। पर उसकी सतर्क बुद्धि ने उसे सहारा देना नहीं छोड़ा। उसे निर्णय करते देर न लगी।

'सुमेर सिंह से' वह सलोनी को आदेश दे रहा था 'सारा भेद बताते हुये कहना कि मैंने भेजा है। जो कुछ करना है शीघ्र से शीघ्र करें अन्यथा सारा काम उल्टा हो जाने को है। जल्दी जाओ सलोनी जल्दी। बड़ा धोखा हो गया।'

सलोनी नीचे को दौड़ी।

शनिवार बाड़ा की पूरब वाली खिड़की का ड्योढ़ीद्वार तोड़ डाला गया और नंगी तलवार लिये पाँच सौ गार्दियों सहित चारो सरदार महल में घुस पड़े। अन्दर कार्यालय में कुछ काम करते हुये कुलकरनियों से सरदारों ने अपने पिछले वेतन की माँग पेश की। कुलकरनियों ने समझाया और उन्हें आश्वासन दिया कि महाराज के उठते ही उनके वेतन की बात कही जायेगी। यह मसला महाराज के उठने पर ही तय हो सकता है।

बात करता हुआ मुहम्मद युसुफ कनखियों से इधर उधर देखकर हँसा और उसने झट से उस कुलकरनी की गरदन उड़ा दी। दूसरे ने दूसरे और तीसरे की। तीसरे ने चौथे की। भगदड़ मच गई। पाँचवाँ भाग कर पास खड़ी गऊ माता की आड़ में छिपना चाह रहा था। परन्तु छिपने और छिपाने वाली दोनों ही काट डाले गये।

राजप्रसाद का बड़ा द्वार बन्द कर दिया गया और सब नंगी तलवार लेकर महल में दौड़ने लगे। भवन में कुहराम मच गया। दास दासियाँ भागने लगीं। होनहार की प्रबलता ने सबके मस्तिष्क और शौर्य पर पर्दा डाल दिया। सभी छिपकर अपने प्राणों की रक्षा करना चाहते थे—लड़कर नहीं। तुलया सरदारों को लेकर, ऊपर पेशवा के कमरे की ओर लपका।

नारायणराव को हंगामा समझते देर न लगी। वह अपने कमरे के पिछले द्वार से भग कर पार्वती बाई के पास पहुँचा। उसके मुँह से केवल इतना ही

निकला 'चाची।' पार्वती बाई रोने लगीं। उन्होंने काँपते स्वर में कहा 'दादा के पास बेटे, दादा के पास'।

नारायण राव वहाँ से दौड़ा और पूजा करते हुये रघुनाथराव के शरीर से चिपट कर चिल्लाया, 'दादा बचाओ! दादा बचाओ!! मुझे साम्राज्य नहीं चाहिये दादा। यह सब कुछ तुम्हारा है। मुझे केवल बचा लो दादा। बस बचा लो।'

चाचा की भुजाओं ने अनायास भतीजे को जकड़ लिया। खून की कोशिश ने एक बार फिर जोर मारा परन्तु वह बहुत क्षणिक था। साम्राज्य की लोलुपता ने उसे टिकने नहीं दिया और पीछा करते हुये तुलया के सामने आते ही चाचा के हाथ ढीले पड़ कर अलग हो गये। तुलया ने पेशवा के दोनों पैरों को पकड़ कर खींचा। वह मुँह के बल पृथ्वी पर गिर पड़ा। सुमेर सिंह की तलवार चलने लगी परन्तु बदन पेशवा का नहीं, चपाजी तिलेकर का कट रहा था। तिलेकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। सुमेर सिंह ने अब पेशवा पर वार करना चाहा लेकिन अचानक किसी ने पीछे से धक्का मारा। सरदार मुँह के बल गिरते-गिरते बचा। धक्का मारने वाली बुढ़िया दासी, दौड़ कर नारायणराव के शरीर से चिपट गई। क्रोधित गर्दी की तलवार चली और उसने चिपटे हुये दोनों शरीर के टुकड़े टुकड़े कर दिये।

चाचा ने शान्ति की सांसें लीं। वह कमरे के अन्दर चला गया। तुलया हँसा और सरदार की पीठ ठोंकता हुआ उसकी सराहना की। पीछे द्वार की ओर कुछ खटका। एक बुढ़िया की डरावनी सूरत पर दो लाल-लाल आँखें घूर रही थीं। पिशाचिनी। तुलया सिहर उठा। बुढ़िया चिल्लाई 'नराधम। मेरे मालिक को मुझसे छीन लिया। तेरे बदन में कीड़े पड़ेंगे रे कीड़े......।'

सुमेर सिंह ने लपक कर गर्दन अलग कर दी।

इस आध घंटे के अन्दर सात ब्राह्मण, दो खिदमतगार, दो दासियाँ और एक गाय काट डाली गई।

बाहर शहर में एक अजीब दौड़-धूप मची थी, लेकिन महल में हो क्या रहा है किसी को पता नहीं। नाना सो रहा था, उसे जगाकर सूचित किया गया। वह दौड़ा। बड़ी कोतवाली बुधवार पर राज्य के मंत्री तथा अन्य कर्मचारी एकत्रित थे परन्तु घटना की जानकारी किसी को नहीं थी। किस प्रकार क्या किया जाय सब यही सोच रहे थे। नाना के पहुँचते ही सारा हाल बताया गया। नाना ने सोचा। और कोई रास्ता नहीं था। अतः मावनराव प्रतिनिधि और मालोजी घोरपड़े को घटना की जानकारी के हेतु महल में भेजना उचित समझा गया। नगर के कुछ अन्य प्रभावशाली व्यक्ति भी उनके साथ हो लिये। शनिवार बाड़ा पहुँचने पर इनके हथियार उतरवा लिये गये तब इन्हें महल में प्रवेश करने की आज्ञा दी गई।

महल का वातावरण शान्त हो चुका था। जो जहाँ था वहीं श्वाँसे रोके छिपा था। रघुनाथराव अपने कमरे से निकलकर बाहर वाले मैदान में आ बैठा। उसके चारों ओर नंगी तलवार धारी गार्दी खड़े थे। मावनराव प्रतिनिधि तथा अन्य व्यक्तियों के सामने आने पर रघुनाथराव ने बैठने का संकेत किया। सब बैठ गये। बैठते ही मावनराव ने पूछा 'दादा साहब (रघुनाथराव दादा साहब से सम्बोधित होते थे) यह हंगामा, कुलकर्नियों का कत्ल, गौ माँ की हत्या, गार्दियों का महल पर अधिकार और निकली हुई तलवारों के घेरे में आपका बैठा होना—ये सब आखों देखते हुये भी विश्वास नहीं हो रहा है। यह आपने किया क्या ?' बुड्ढा प्रतिनिधि क्रोध में अपनी परिस्थिति को भूल सा गया था। उसकी आँखों में खून से लथपथ ब्राह्मण कुलकर्नियों की लाशें घूम रही थीं। वह क्षणभर के लिये रुका और जैसे किसी विशेष बात के स्मरण हो आने से वह शीघ्रता से बोला 'और...पेशवा नारायणराव। क्या बन्दी बना लिये गये ?' उसकी आँखें रघुनाथराव को घूर रही थीं।

एक संग इतने प्रश्न तथा नारायणराव की जानकारी के प्रति उत्सुकता और इस नीचता की जड़ में अपने को समझकर रघुनाथराव कुछ विचलित तो अवश्य हुआ पर उसकी गंभीरता में किसी प्रकार की कमी नहीं आई।

वह वैसे ही शान्त भाव से बोला—'नारायणराव की मृत्यु हो गई प्रतिनिधि साहब। मैंने उसे बन्दी बनने का ही आदेश दिया था किन्तु अपनी रक्षार्थ वह मेरे सरदारों से जूझ गया। परिणाम मृत्यु के अतिरिक्त और क्या हो सकता था। खैर। यह सब तो हुआ ही करता है। जो जन्मता है वह मरता भी है।' रघुनाथराव के स्वर में अहंता थी 'दुख मुझे भी है परन्तु किया क्या जाय। जो होना था सो हो गया। अब आगे देखना है।'

लोगों ने जैसे कुछ समझा नहीं। सब रघुनाथराव को, मुँह खोले देख रहे थे। 'महान अनर्थ किया आपने.' प्रतिनिधि के शब्द काँप रहे थे 'यह घोर नरहत्या काँड! आपने सारी जाति को कलंकित कर दिया दादा साहब। आप .... ।'

'माधवराव!' रघुनाथराव कड़े स्वर में बोला 'जो हो गया सो हो गया। भला हुआ या बुरा इसका तुम्हें निबटारा नहीं करना है। तुम जिस जानकारी के लिये यहाँ आये थे, वह तुम्हें विदित हो गया। अब नारायणराव मर चुका है। वंश में पूना की मसनद पर बैठने के लिये और कोई उत्तराधिकारी नहीं इसलिये मैं अपने को पेशवा घोषित करता हूँ। साम्राज्य के संचालन का भार अब मेरे कन्धों पर है।' उसने इधर उधर देखा 'अच्छा, अब तुम लोग जा सकते हो।'

प्रतिनिधि ने कुछ और कहना चाहा परन्तु मालोजी हाथ पकड़कर उठ खड़े हुये। सब लोग बाहर चले आये।

इस बीच कोतवाली पर कारभारी सखाराम बापू, हरीपन्त फड़के और मोरोबा फड़नवीस भी आ चुके थे। माधवराव के आने पर सारा हाल मालूम हुआ। सुनकर लोगों के पैरों से जमीन खिसक गई। सब एक दूसरे को ताकते रह गये। चेहरे पर मुर्दनी छा गई। बापू अपने स्थान से उठे और कोतवाली के बाहर हो गये। उन्होंने कुछ कहा नहीं। नाना बैठा सोचता रहा। अन्त में फड़के से बोला फड़के! अब समय नष्ट करने से लाभ नहीं। रात अधिक होती जा रही है। सम्भव है अभी और देर लगे। प्रतिनिधिजी तथा अन्य

लोग हैं ही, दादा साहब से मिलकर शव के दाह संस्कार का प्रबन्ध कराओ।"
नाना अपने बाड़ा को चला गया। उसका हृदय फट रहा था।

नाना प्रकार की परेशानियाँ और उलूलजलूल बातों के बाद रात के बारह बजे गार्दियों ने पेशवा के शव को ले जाने की अनुमति दी। पेशवा के बिखरे हुए अंगों को इकट्ठा करके एक गठरी बाँधी गयी। शरीर की यह दुर्दशा। देखनेवालों की आँखें पथरा गई थीं। फड़के गठरी के पास खड़ा रो रहा था। रह रहकर उसके मस्तिष्क में एक ही बात टकरा रही थी, 'काश, भोजन करने न जाकर इस मामले की खोज-बीन आरम्भ कर दी होती तो वह अपने मालिक को इस षड्यंत्र से बचा लिये होता।'

मास्टिन को महल में आने की अनुमति मिल गई थी। वह भी सबके साथ खड़ा दुःख प्रकट कर रहा था।

नासिक की गलियों में सड़कों पर, हाट बाजारों में एक बुढ़िया जो देखने से किसी सम्भ्रान्त घर की जान पड़ती थी बाल बिखराये, तन के कपड़ों को इधर-उधर लपेटे, कुछ दिनों से घूमने लगी है। इसको न अपनी सुध है न तन की। न भोजन की न वस्त्र की। वह हँसती है तो कुछ समय तक हंसती ही रह जाती है। चुप रहती है तो कई दिनों तक उसे बोलते कोई देखता ही नहीं। बातें करती हैं तो सड़क और गलियों में लोगों का चलना दूभर हो जाता है।

इधर कई दिनों से वह बोलने की मनोवृत्ति में है। लोग उसे दूर से देखते ही रास्ता काटकर दूसरी ओर निकल जाते हैं। अभी-अभी वह गली की मोड़ से निकली ही थी कि सड़क पर उसने एक व्यक्ति को पकड़ ही तो लिया। वह उसे हिलाती हुई बोली 'तुम मुझे पहिचानते हो। मैं राजमाता हूं राजमाता। बड़े पेशवा साहब की स्त्री। मैंने अपनी कोख से तीन रत्न उत्पन्न किये तीन। तीनों बड़े होनहार। बड़े सुन्दर। लेकिन न जाने सबके सब मुझसे अलग क्यों रहते हैं। एक गया पानीपत के युद्ध में तो वहाँ से लौटा ही नहीं। लोगों से पूछती हूं तो कोई इधर की बताता है तो कोई उधर

की। जाने दो। कभी न कभी आयेगा ही।' मनुष्य नत मस्तक सुन रहा था, 'और दूसरे को कोई बीमारी हो गई है। बड़ी बुरी बीमारी। लोग कहते हैं वह वैद्यों की सलाह से किसी दूर देश में दवा कराने गया है।' बुढ़िया जोरों से हँसी। उसने इधर-उधर देखा और कुछ आगे को झुकती हुई धीरे धीरे बोली 'एक बात जानते हो? यहाँ सारे नगर में हल्ला है कि मेरे तीसरे लड़के को रघुनाथराव ने कटवा डाला। ऐसा भी कहीं हुआ है? क्यों तुम्हीं बताओ ऐसा भी कहीं हो सकता है?'

वह व्यक्ति चुप रहा।

बुढ़िया झुंझलाई 'तुम बिल्कुल पागल हो क्या? कोई बात तुम्हारे दिमाग में आती नहीं?' बुढ़िया दौड़ी और सड़क के दूसरी ओर जाते हुए एक दूसरे व्यक्ति को पकड़कर खड़ी हो गई 'क्यों जी, तुम बताओ। चाचा भी अपने भतीजे को मरवा सकता है। इतना महान अनर्थ!'

मनुष्य चुप रहा। उसकी आँखें छलछला आई थीं। बुढ़िया ने उसकी आँखों को घूरा। हँसी। मरवा सकता है। अवश्य मरवा सकता है। बड़ा नराधम है वह। नर पिशाच।' वह अपने बालों को नोचती हुई दूसरी ओर मुड़ गई।

तृतीय इयत्ता

Nana Phadnis was certainly a great Statesman. His life was entirely public. In private he was a man of street veracity, human, frugal and charitable. His whole time was regulated with the strictest order and the business personally transacted by him almost exceeds credibility. Nana doubtless shines out as the last genius produced by the Maratha Nation.

Grant Duff

पन्द्रह

नाना रात भर पलंग पर करवटें ही बदलता रहा नींद नहीं आई। एक असम्भव सम्भव हो गया। मराठा इतिहास के पन्नों में यह बदरंगा खूनी धब्बों का पृष्ठ, किसी भी पढ़नेवाले के लिये जीवन में लोलुपताओं और उसकी चाह का एक नया दृष्टिकोण उपस्थित करेगा। इतिहास का यह पन्ना केवल मराठा साम्राज्य पर ही वरन् सारी जात पर अमिट कलंक की कालिमा पोत गया। नाना को तनिक भी सन्देह नहीं था कि पेशवा का हत्यारा रघुनाथराव के अतिरिक्त अन्य कोई हो सकता है परन्तु यह कच्ची बात कैसे कही जा सकती थी जब तक प्रमाण न हो। प्रमाण और उसकी प्रमाणिकता, रघुनाथराव पर उसके अपराध का आरोप, उसकी छानबीन और अन्त में निष्पक्ष भाव से निर्णय इत्यादि समस्याओं के सुलझाव, फड़नवीस के दिमाग को चाटे डाल रहे थे।

सबेरा हो गया। पक्षियों का कलरव और उनके पंखों की फड़फड़ाहट सुनाई पड़ने लगी। नाना उठकर कमरे में टहलने लगा। सूर्य की किरणें रोशनदानों से कमरे में आने लगी। खिदमतगार बहुत समय से द्वार पर खड़ा बोलने का साहस कर रहा था। अन्त में उसने साहस बटोर कर कहा 'सरकार।'

नाना ने उसकी ओर देखा फिर इधर-उधर, 'बड़ी देर हो गई!' चलो। नाना दैनिक क्रियाओं के लिये चला गया।

छोटा सा मकान। बहुत साफ। बाहर भीतर सब समान। सहन में या मकान के अन्दर जो कुछ भी जहाँ रखा था बहुत कायदे से रखा था और स्थान पर रखा था। उस साधारण से मकान की सफाई और चमक, उस मार्ग से जाते हुये किसी भी यात्री को अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं छोड़ती

थी। मकान की सादगी और लघुता, और उसमें निवास करने वाले का व्यक्तित्व तथा पद दोनों ही आदर्श के अन्तिम श्रेणी पर पहुँच चुके थे।

सामनेवाले दालान से एक लगा हुआ छोटा-सा कमरा था। भीतर आमने-सामने दो चौकियाँ रखी थीं जिन पर बहुत ही मामुली किस्म के कम्बल डाल दिये गये थे। द्वार के बायीं ओर वाले तख्त पर सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्याय-मूर्ति रामशास्त्री बैठे हुये कोई पुस्तक पढ़ रहे थे परन्तु उनकी बुद्धि सम्भवतः किसी और चिन्तन में लगी हुई थी सहन में किसी की आहट पाकर उन्होंने झुककर देखा। फड़नवीस चले आ रहे थे। सामने आने पर नाना ने शिष्टता-पूर्वक प्रणाम किया और उधर वाले तख्त पर बैठ गया।

'सब कुशल है ?'

'जी हाँ।'

'कल की घटना बड़ी विचित्र हो गई ?'

'जी हाँ! बहुत ही दुखदायी।......अनहोनी को होनी कर दिया गया।'

'क्यों नहीं ? भूत को देखते हुये तो ऐसा ही कहा जा सकता है। गौ और ब्राह्मणों का इस प्रकार वध। होनहार युवक पेशवा के जीवन से खिलवाड़ खेल कर महान पाप किया गया है फड़नवीस साहब।'

'जी हाँ! इसमें क्या सन्देह।'

'गंगाबाई की कैसी दशा है' शास्त्री ने उत्सुकता से पूछा 'रात ही से बेहोश पड़ी हैं। इस कन्या का जीवन भी नष्ट हो गया। आप शनिवार बाड़ा गये थे ?'

'जी नहीं।'

'क्यों !' रामशास्त्री ने नाना को आश्चर्य से देखा।

'अब जाना न जाना बराबर है शास्त्रीजी! पेशवा नारायणराव साहब के साथ-साथ मेरे भी सारे सम्बन्ध टूट गये। रहे दादा साहब, उनके विचारों में यों भी मैं अच्छा स्थान नहीं रखता।'

'मतलब ? आप अपने पद पर कार्य भी नहीं करेंगे ?'

'जी नहीं ! दादा साहब के नये मंत्रि मंडल में मेरे लिये कोई स्थान नहीं होगा। इसलिये पहले से अलग हो जाना मैंने उचित समझा है। झगड़ा बढ़ाने का परिणाम भयकर ही होगा। फिर ऐसे समय।'

'उचित है। दलबन्दी का रोग बुरा होता है। कभी किसी को बनाती है तो कभी किसी को बिगाड़ती है।'

क्षणभर की मौनता के बाद नाना ने पूछा 'एक जानकारी के हेतु आया था।'

'अवश्य कहिये।'

'इस हत्या के विषय में आपके.......विचार......।'

'कि.......आपका अभिप्राय इसकी तहकीकात से।'

'जी हाँ ! जी हाँ।'

'न्याय के समक्ष राजा रंक दोनों ही समान हैं नाना साहब। वहाँ बलवान और निर्बल का प्रश्न नहीं। सबके लिये कसौटी एक है। कल तहकीकात आरम्भ हो जायगी। बहुत शीघ्र इसका निर्णय भी करना है। मैं समझता हूँ इस समय हर आदमी बड़ी दुविधा में पड़ा है। सब को जानकारी की जिज्ञासा भी है।'

'शास्त्री जी आप तो जानते हैं। हमारी पीढ़ी पेशवा के नमक पर पली है उस नमक के बदले उन लोगों ने जो सेवायें और त्याग किये उसका पुरस्कार मेरा पद जिसे पुश्तैनी का रूप मिल चुका है। यह तो उनकी बात रही लेकिन मैं तो किधर का भी न हो सका शास्त्री जी। स्वर्गीय पेशवा माधवराव साहब की आत्मा को क्या उत्तर दूँगा। मैं महान पातकी हूँ। मैंने मालिक को दगा दिया है शास्त्रीजी।' नाना का गला भर आया था। वह अपने को जैसे भूल गया हो, 'मरते-मरते उन्होंने मुझसे कुछ कहा था किन्तु मैं उसमें अयोग्य सिद्ध हुआ।'

रामशास्त्री सान्त्वना के रूप में बोले 'भवितव्यता को योग्यता और

अयोग्यता से विजित करना चाहते हैं नाना साहब ? आप सरीखा ईश्वर की...... ।'

'सही कहते हैं। मन के सन्तोष के लिये दूसरा रास्ता ही कौन है। धैर्य रखना ही पड़ेगा।' कुछ रुककर नाना ने सोचते हुये पूछा 'तहकीकात में अधिक दिन......... ।'

'प्रयत्न करूँगा शीघ्र से शीघ्र समाप्त करने का।'

'ठीक है। तब मैं भी अपने विषय में कुछ निर्णय कर पाऊँगा। जनता आपकी बड़ी सराहना करेगी शास्त्री साहब।'

'मेरी नहीं। न्याय की।'

'आपने गिरती छानी में थूनी लगा दी।' नाना उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़ते हुये बिदा ली।

नाना जब निकला तो उसकी मनस्थिति पहले जैसी नहीं थी। हृदय उतना भारीपन का अनुभव नहीं कर रहा था। रात की व्याकुलता और अंधकार में टटोलते हुये असहाय व्यक्ति की दशा में कुछ परिवर्तन का आभास हो रहा था। आशा की पतली किरण कहीं लुपलुपाने लगी थी। वह वहाँ से सीधा बापू के पास पहुँचा। कुछ समय तक विचार-विमर्श करने के उपरान्त वह उठ खड़ा हुआ। चलते-चलते उसने दुबारा उस बात की याद दिलाई और बाहर हो गया। रास्ते में बापू की कुछ बातें बार-बार खटक रही थीं परन्तु उनपर वह अधिक सोचना नहीं चाहता था। कुअवसर, सहनशीलता और नम्रता दोनों खोजता है। उनको भूल जाना ही उसने उचित समझा।

हरीपन्त फड़के का बाड़ा आया। खिदमतगार ने दौड़कर अन्दर सूचना दी। फड़के नाना का हाथ पकड़ता हुआ अन्दर ले गया। 'अभी-अभी मैं भी चला आ रहा हूँ।'

'महल से।'

'हाँ।'

'बैठो, कुछ बातें करनी हैं।'

दोनों बैठ गये। नाना ने जो कुछ कहा, जो कुछ समझाया, फड़के पूर्ण रूप से सहमत था। 'इन बातों को,' वह बोला 'मुझसे कहने की आवश्यकता नहीं थी नाना। तुम उलटा-सीधा जो कुछ भी करो, फड़के उसमें सबसे आगे रहेगा।'

नाना उठ खड़ा हुआ। "चल रहा हूँ। अभी मोरोबा दादा से मिलना है। अपने काम में सर्तक रहो। मेरे यहाँ आने की आवश्यकता नहीं। समझे।" नाना ने भेद भरी दृष्टि से फड़के की ओर देखा।

'समझता हूँ '

बाहर आने पर लक्ष्मी के पिता से भेंट हो गई। नाना को रुकना पड़ा। बुड्ढे बख्शी को बड़ा दुख था। वे बार-बार शोक प्रकट करने के अतिरिक्त और कुछ कह नहीं पा रहे थे। इसी बीच उनकी पत्नी भी आ गई। उनके सन्मुख भी यही प्रश्न। 'नारायणराव महाराज की जो हत्या हुई सो तो हुई ही किन्तु गंगाबाई के जीवन का क्या होगा ?' बुढ़िया की आखों में आँसू भर आये। नाना और कहता ही क्या, स्वयं संवेदना प्रकट करता हुआ, फिर मिलने के लिये कहकर, चलने की अनुमति ली।

दिन ढल चुका था। जब नाना घर पहुँचा। जल्दी-जल्दी भोजन किया और फिर बाहर। मोरोबा दादा से उसकी काफी देर तक बातें होती रहीं। 'और सब तो ठीक है। नाना। मैं उनसे सहमत हूँ और तुम्हारे साथ भी हूँ, लेकिन जहाँ तक प्रश्न है नारायणराव की हत्या में दादा साहब के हाथ का, बस वहीं मैं तुमसे अलग हूँ। दादा साहब पर इस प्रकार का सन्देह करना उचित नहीं है।'

'तो मैंने कब कहा कि दादा साहब हत्यारे हैं ही। इसका निर्णय तो राम शास्त्री साहब के फैसले की घोषणा के उपरान्त ही किया जा सकता है। उनका फैसला, जैसा भी कहे – मान्य सबको होगा ?' नाना ने अपनी आँखों पर बल देते हुये मोरोबा को देखा।

'हाँ। यह ठीक है। वहाँ सन्देह का स्थान नहीं। मैं समझता हूँ अभी

हम लोगों को फैसले की प्रतीक्षा करनी चाहिये। फैसला जैसा भी होगा उसीके अनुसार अपने कार्य के रूप का निर्णय करेंगे। अभी से कुछ सोचना या करना ठीक नहीं।'

नाना ने आगे बात नहीं चलाई। 'यही पूछने के लिये' वह खड़ा होता हुआ बोला 'चला आया था। घोषणा के उपरान्त सोचा जायेगा।'

'सोच समझकर काम करने से सफलता मिलने की आशा रहती है। जल्दी बाजी ठीक नहीं।'

वहाँ से नाना सीधा पटवर्धन के पास गया। उनसे बात-चीत की। फिर रास्ते से मिलकर अपनी योजना बताई। वे सभी नाना से सहमत थे।

नाना जब लौटा तो संध्या विदा ले चुकी थी।

सोलह

दादा साहब रघुनाथराव का आतंक छा गया। साहस और सामना करने की भावनायें लुप्त हो गईं। गार्दियों के अत्याचार और उनकी मनमानी लोग देखते और बर्दाश्त करते। नगर ने सराय का रूप ले लिया था जहाँ सुरक्षा का विश्वास पाते हुए भी मन के कोने में भय छिपा रहता है। नगर-निवासी इस जानकारी से अनभिज्ञ नहीं थे कि पेशवा का हत्यारा रघुनाथराव ही है। वे उसे अपना राजा बनाना तो दूर, उसकी सूरत तक देखना नहीं चाहते थे। इससे उनका पूर्वज बिगड़ता था। उन्हें पाप का भागी होना पड़ता था। ब्राह्मणों की हत्या ब्राह्मण द्वारा। इतना ही नहीं, ब्राह्मण राजा की हत्या उसके चाचा द्वारा। यह घटना उनके समाज में उनके इतिहास में पहली थी और अपने ढंग की थी। वे साम्राज्य के भविष्य के प्रति, समाज के भविष्य के प्रति और अपने देश के भविष्य के प्रति शंकित हो उठे थे। उनका सन्देह उन्हें बार-बार चेतावनी दे रहा था कि यदि पूना की मसनद पर रघुनाथराव पेशवा बनकर बैठा रहा तो अवश्य ही मराठा साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। फिर भी सब मौन थे। आतंक और भय ने सबको कँपा दिया था। शिवाजी का शौर्य उनकी धमनियों से विलीन हो चुका था। वे कायर हो गये थे।

केवल सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधिपति रामशास्त्री और पेशवा साम्राज्य का अनन्य भक्त और सेवक नाना फड़नवीस उस आतंकता के विरोध में अपने को दृढ़ और कर्मशील बनाये हुए थे। एक न्याय के आदर्श को स्थापित करने में संलग्न था तो दूसरा अमर बनाने में।

विजयादशमी का त्योहार आया। रघुनाथराव की विजयादशमी मनी। पर नागरिकों के पास यह शक्ति कहाँ? जैसे तैसे त्योहार समाप्त हुआ। नगर के बाहर जलगाँव में कनातें पड़ने लगीं। सेना प्रत्याहार करती हुई निकल

पड़ी। रघुनाथराव महल छोड़कर शिविर में आ गया। हैदरअली और निजय अली दोनों के आक्रमणों की आशंका थी।

लगभग आधा कुँवार समाप्त हो चुका था। आज पूना में बड़ी सनसनी थी। घरों-घरों में, दूकान बाजारों में, गलियों सड़कों पर, कचहरी दफ्तरों में, प्रत्येक स्थान पर केवल यही चर्चा चल रही थी कि कल प्रधान न्यायाधीश रामशास्त्री अलगाँव में अपना निर्णय सुनावेंगे। नगर में बेचैनी थी। लोगों ने किसी प्रकार रात गुजारी।

अलेगाँव में दरबार लगा था। रघुनाथराव पेशवा मसनद पर बैठा सामन्त सरदारों से विचार-विमर्श कर रहा था। रामशास्त्री के आगमन की सूचना दी गई। शास्त्री महोदय आये। भरे हुये दरबार की उत्सुकता बढ़ गई। रघुनाथराव ने न्यायाधीश को देखा और न्यायाधीश ने हत्यारों को। रामशास्त्री रघुनाथराव के समीप आकर खड़े हो गये। उन्होंने सरसरी निगाह से चारों ओर देखा। वे रघुनाथराव से बोले 'आपके जिस अभियोग की मैं तहकीकात कर रहा था वह पूरा हो गया। आज उसका फैसला सुनाना है। अभियोग......।'

'मैं आपसे,' रघुनाथराव के स्वर में कड़वाहट थी 'पहले भी कई बार कह चुका हूँ कि यह पेशवा का घरेलू मामला है। जन साधारण से सम्बन्ध नहीं रखता। आपको इस सम्बन्ध में तहकीकात करने का कोई अधिकार नहीं।'

'आपका कहना उचित है। अधिकार मुझे नहीं मेरे न्याय को है। न्याय किसी में भेद नहीं बरतता। आप इसे भली-भाँति समझते हैं।'

'न्याय का बनाने वाला मैं हूं। मैंने उसको जन्म दिया है वह मेरे आधीन है। मैं जैसा चाहूँगा वैसा होगा। वह जैसा चाहे वैसा नहीं।' रघुनाथराव कुछ गर्म पड़ रहा था।

रामशास्त्री मुसकराये, 'श्रीमान्, आप कुछ भूल कर रहे हैं। आप मेरे बनाने वाले हैं—न्याय के नहीं। मैं आपके आधीन हूं। आप जैसा भी चाहें

मेरे साथ कर सकते हैं। आपकी चाहत मेरे तक ही सीमित है। उसके आगे, न्याय के समीप वह लड़खड़ा कर गिर पड़ेगी।

'लेकिन......।'

'मैं यहाँ आपसे वाद विवाद करने नहीं आया हूँ। मुझे कुछ कहना है। क्या आप निर्णय सुनने के लिये शान्त रहना पसन्द करेंगे ?' न्यायाधीश बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ऊँचे शब्दों में बोला 'बयालिस दिनों के परिश्रम और तमाम न्यायिक जाँचों के उपरान्त मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूं कि पेशवा नारायणराव की हत्या के अपराधी श्रीमान् रघुनाथराव हैं। श्री रघुनाथराव हत्यारे हैं और जैसा आप,' उन्होंने चारों ओर देखा 'सब जानते हैं एक हत्यारा किसी भी दशा में पूना की मसनद पर बैठने का अधिकारी नहीं......'

'बन्द करो,' मसनद पर हाथ पटकता हुआ रघुनाथराव चिल्लाया। सामन्त सरदारों ने तलवारें खींच लीं, 'तुम्हें नहीं मालूम शास्त्री कि तुम कहाँ क्या कह रहे हो ? पेशवा रघुनाथराव की शक्ति का तुम्हें ज्ञान नहीं ?'

म्यान से निकली हुई सैकड़ों तलवारों को रामशास्त्री देख रहे थे। वे मुसकराये 'इस शक्ति से वह अधिक बलवती है दादा साहब जिसके सहारे मैं यहाँ खड़ा हूँ। वह तलवार से नहीं कटती और न मिटती है। इन तलवारों पर इन्साफ की धार चढ़वाइये इन्साफ़ की। तब शायद आप सफलीभूत भी हो सकें।' वे उसी प्रकार मुसकरा रहे थे।

'मैंने तुमको पदच्युत किया।' रघुनाथराव के संकेत पर तलवारें म्यान में चली गईं।

'मुझे स्वीकार है।' न्याय-मूर्ति दरबार के बाहर हो गये।

रघुनाथराव उठ खड़ा हुआ। दरबार भंग कर दिया गया। पेशवा रघुनाथ-राव का यह अन्तिम दरबार था।

रात बारह को जाचुकी होगी। सन्नाटा और निस्तब्धता। साँय-साँय करती हुई अंधेरी रात डरावनी बन गई थी। पूना के पश्चिम-दक्षिण कोण पर पहाड़ी के नीचे फैली हुई झील (आज वह झील सूख चुकी है। कोई चिन्ता नहीं)

शान्त थी। थोड़ी ही देर के बाद दो डोंगियाँ झील के बीचोबीच आकर रुकीं। बैठने वालों ने चारों ओर देखा। 'ठीक है।' एक बोला।

'अब बापू। रामशास्त्री का निर्णय तो हम लोगों ने सुन लिया,' बड़ी-बड़ी आँखों वाला व्यक्ति धीरे-धीरे कह रहा था, 'नगर-निवासियों पर उसके प्रभाव को भी हम लोगों ने देखा। निर्णय सुनने के उपरान्त रघुनाथराव के शिविरों में भी इस चर्चा को लेकर बड़ी हलचल है। मुझे इसकी सूचना भी मिली है। आप हम सब में वृद्ध और योग्य भी हैं। जैसा सम्मति दें उसी के अनुसार कार्य प्रणाली बनाई जाय।'

'समय तो अब शीघ्रता का ही है। जितनी जल्दी जो कुछ किया जा सके, कर लेना उचित होगा अन्यथा विरोध की उमड़ी हुई भावनायें धीरे-धीरे शिथिल पड़ जायेंगी। तब बड़ी अड़चन होगी।'

'मैं समझता हूँ बापू,' बड़ी-बड़ी आँखों वाला ही बोल रहा था 'यद्यपि रघुनाथराव की सद्भावनायें आपके प्रति नहीं के बराबर हैं फिर भी यदि आप अपने पद के कार्य-भार को संभालना चाहें तो वह आपत्ति नहीं करेगा। ऐसी दशा में आप उसके साथ शिविर में रहकर उसके प्रति विरोधात्मक भावनायें फैला सकते हैं। साथ ही साथ निजाम अली को भी अपनी ओर फोड़ सकेंगे। यह अधिक महत्वपूर्ण है और आपके अतिरिक्त दूसरा इसे कर भी नहीं सकता।'

मोरोबा बोला 'हरीपन्त फड़के के साथ जो कुछ थोड़ी बहुत सेना यहाँ है, वह है ही। रघुनाथराव को उस पर विश्वास भी है। मैं अपने पद पर काम कर रहा हूँ। नाना यहाँ जा नहीं सकते। इसलिये हर हालत में आपका रघुनाथराव के साथ साथ रहना जरूरी है। बिना उसके साथ रहे यह कार्य नहीं हो सकेगा। यहाँ जो कुछ नाना को करना है कर रहे हैं और करते रहेंगे।'

बापू ने सोचते हुये अपनी अनुमति दे दी। बात तय हो गई। अब वे लोग और समस्याओं पर मंत्रणा करने लगे। कार्य में सफल हो जाने पर

साम्राज्य प्रबन्ध, उसकी सुव्यवस्था और जन-साधारण को अधिक से अधिक सुख और शान्ति देने की कैसी-कैसी प्रणालियाँ होंगी—इस पर भी विचार विनिमय हुआ। नक्षत्रों ने भोर का संकेत दिया। डोंगियाँ मोड़ दी गईं।

नाना, बापू, फड़के और मोरोबा की बैठक शुभदायिनी ही रही।

द्वार पर घोड़ा रुकता हुआ देखकर द्वारगोप सचेत हुआ। घोड़ा रुका। द्वारगोप ने झुककर सलाम किया।

'तुम्हारे सरकार?' घुड़सवार ने पूछा।

'जी, अभी हाल ही में उठे हैं। लेकिन कहीं जाने की तैय्यारी भी हो रही है।'

'क्या कल रात में अधिक समय तक जगते रहे?'

'जी हाँ। बहुत रात गये तक।'

लक्ष्मी घोड़े से कूदकर दौड़ती हुई अन्दर चली गई।

नाना कमरे में ऊपर नीचे टहल रहा था। खटखट शब्द के कारण उसे द्वार की ओर देखना पड़ा। लक्ष्मी आ रही थी। वह रुका। लक्ष्मी को देखा और आगे बढ़कर लक्ष्मी का हाथ पकड़ते हुये परिरम्भ कर लिया। 'मैं आज बहुत प्रसन्न हूँ लक्ष्मी, मेरे जीवन ने एक नया रूप लिया है जो कष्ट प्रद होते हुए भी आन्तरिक सौख्य का स्रष्टा है। सम्भवतः तुम भी उस जीवन को पसन्द करोगी?'

लक्ष्मी उधर ध्यान न देकर कुछ ऐंठती हुई बोली मालूम है मैं कितनी बार लौट चुकी हूँ।'

'मालूम है। और तुम्हें भी तो मेरी उलझनों का ज्ञान होगा।' नाना ने लक्ष्मी के मस्तक को चूम लिया।

'चलिये हटिये। हर वक्त की हँसी अच्छी नहीं होती।' लक्ष्मी अपने को छुड़ाती हुई अलग हो गई, 'हम लोग अब जा रहे हैं।'

नाना ठट्ठा मारकर हँस पड़ा, 'तो जाने का क्रोध मेरे ऊपर उतारा

जा रहा है। जाना चाहिये ही। बहुत दिन हो गये यहाँ आये हुये। कब तक जाना है ?'

'एक हफ्ते के अन्दर-अन्दर।'

'अच्छी बात है। जाने के एक दिन पहले की दावत मेरे यहाँ की कबूल हो। मन्जूर है ?'

लक्ष्मी ने नाना की ओर देखा और जाने लगी। नाना ने हाथ पकड़ लिया और उसकी ठुड्डी को ऊपर उठाते हुये हँसकर बोला 'कल संध्या को पक्की कर आया हूँ। शीघ्र ही शुभ मुहूर्त......।'

'क्या ?' लक्ष्मी समझती हुई भी अपनी उत्सुकता को न रोक सकी।

'वही, जिसके लिये त्येवर चढ़े हैं।'

लक्ष्मी हाथ छुड़ाकर भागी।

'सुनो, एक बात तो सुनती जाओ।'

लक्ष्मी लौटी, 'जल्दी जो कुछ कहना हो कहो। मेरे पास समय नहीं है।'

'तो उलटा चोर अब कोतवाल को डाँटेगा। बाजी मेरी और रौब...।'

'अंधे के हाथ बटेर लगी और बन गये शिकारी ?'

'लगी तो, चाहे जैसे' नाना मुसकरा रहा था 'अब निकल जाय तो समझूँ।'

'यह देखो—निकली पकड़ो तो जानूँ।' लक्ष्मी आँखों से ताना मारती हुई निकल गई।

'पकड़ी पकड़ाई को क्या पकड़ूँ। वह कहीं जा नहीं पायेगी। पर फड़फड़ाती हुई चक्कर लगाकर फिर आ जायेगी।'

लक्ष्मी दरवाजे पर पहुँचकर अंगुली बिराती हुई बोली 'कल रात में आपका भोजन मेरे यहाँ होगा। समझे। जल्दी बोलिये।'

नाना ने सिर हिलाया। लक्ष्मी चली गई।

सत्रह

(क)

नागपुर के मुधोजी भोंसले और सबाजी भोंसले, दोनों भाई आपस में लड़ गये। दोनों ही राज्य के उत्तराधिकारी बनना चाहते थे। यद्यपि पेशवा नारायण राव ने सबाजी भोंसले को ही 'सेना साहब सूबा' की पदवी दी परन्तु हत्या के उपरान्त मुधोजी स्वयं नागपुर राज्य का सर्वेसर्वा बनने का स्वप्न देखने लगा। परिणाम-स्वरूप सबाजी ने हैदराबाद के निजाम अली की सहायता से मुधोजी को निकाल भगाया और राज्य का पूर्ण अधिकारी हो गया। मुधोजी ने रघुनाथ राव से सहायता माँगी और स्वयं अपनी सेना सहित अलेगाँव आकर शरण ली। रघुनाथराव ने त्रिम्बक राव पेथे के सेनापतित्व में एक बड़ी सेना सबाजी को पराजित करके बन्दी बनाने के हेतु भेजी।

इधर नाना अपने काम में कमर कसकर जुट गया था। लोगों से मिलना, उन्हें उचित अनुचित का ज्ञान कराना और अधिक से अधिक जन-पक्ष को अपनी ओर लाने का प्रयास करना—केवल यही एक उसके पास काम था। न भोजन की चिन्ता न सोने की। यदि चिन्ता थी तो हत्यारे को मसनद से हटाने की। उसके परिश्रम और निःस्वार्थ प्रेम से वातावरण में विभिन्नता आते देर न लगी। लोगों के हृदयों में कुछ-कुछ साहस की भावना जागृत हुई। नाना को प्रोत्साहन मिला। कर्म में सफलता मिलने की आशा झलकी। वह और आगे बढ़ा। हैदराबाद—स्थित पेशवा साम्राज्य के राजदूत कृष्णराव काले से पत्र-व्यवहार किया और इस पवित्र कार्य में सहयोग देने के लिये प्रार्थना की। काले पक्ष में आ गया। नाना की विलक्षण बुद्धि ने त्रिम्बकराव पेथे को भी अपनी ओर फोड़ लिया और साथ ही सबाजी भोंसले को अपने पक्ष में लाने के लिये त्रिम्बकराव द्वारा प्रयत्न कराने लगा। नाना ने त्रिम्बकराव को यह भी लिखा कि सेना अभी वहाँ से हटायी न जाय।

शीघ्र ही नई कार्यवाही के अनुसार नई सूचना दी जायेगी जिसके अनुसार भविष्य में कार्य संचालित किया जायेगा।

उधर सखाराम बापू ने भी अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया था। काले के द्वारा निजाम अली को अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु प्रत्यक्ष रूप से सबको यही विदित था कि वे निजाम अली को रघुनाथराव के पक्ष में लाने का प्रयास कर रहे हैं। लगभग दो महीने तक बापू की गुप्त वार्ता चलती रही। और अन्त में निजाम अली की ओर से कृष्णराव द्वारा आश्वासन मिलने पर बापू कार्तिक मास में बीमारी का बहाना कर पूना लौट आये।

बापू के आने पर शीघ्र ही नाना ने 'बारभाई कारभार' के नाम से एक कार्य-कारिणी बनाई जिसमें स्वयं हरीपन्त फड़के, सखाराम बापू, मोरोबा फड़नीस, त्रिम्बकराव पेथे, बाबूजी नायक, मालो जी घोरपड़े, भावनराव प्रतिनिधि, रस्ते, पटवर्धन, तथा महादजी सिंदे और तुकोजी होलकर रखे गये। यद्यपि नाम के थे तो बारह व्यक्ति परन्तु काम करने वाले मुख्यतः नाना और बापू ही थे। कार्यकारिणी बनने के उपरान्त दूसरे दिन बैठक हुई जिसमें तय हुआ कि हरीपन्त फड़के और त्रिम्बकराव पेथे की अधिनता में एक सेना भेजकर रघुनाथराव को बन्दी बना लिया जाय। त्रिम्बकराव को सूचना भेज दी गई। और शीघ्र ही दोनों सेनापतियों के नेतृत्व में दो सेनायें दो मार्गों से रघुनाथराव के विरुद्ध चल पड़ीं। नाना इतना ही कर के चुप नहीं हुआ। उसने एक घोषणा पत्र निकाला जिसमें लिखा 'रघुनाथराव बाजीराव ने पेशवा नारायणराव का सर्वनाश करके महान पाप किया है। उसने जबरदस्ती हमलोगों से पेशवाई चोंगा छीनकर स्वयं धारण कर लिया है। परन्तु अब वह उस स्थिति में नहीं है। उसके विरुद्ध त्रिम्बकराव पेथे की अधीनता में एक सेना भेजी जा चुकी है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को निमंत्रित किया जाता है कि वे इस पवित्र कार्य में अपना सहयोग दें। इसी प्रकार अन्य पत्र भी नाना ने भिन्न भिन्न मराठे सरदारों के पास भेजे।

विलारी में रघुनाथराव को अपने विरुद्ध होती हुई कारस्वाइयों की कुछ भनक पड़ी परन्तु तत्काल ही उसे पेथे और फड़के के सेनापतित्व में आती हुई सेनाओं की भी सूचना दी गई। क्षणभर के लिये उसके आखों के सामने अधेरा छा गया। इतने थोड़े समय में इतना बड़ा परिवर्तन ! वह जैसे कुछ समझ नहीं पा रहा था। लेकिन वह अपने को पराजित भी नहीं देख सकता था। वह पीछे मिराज की ओर लौटा, सतारा पर अधिकार जमाने के लिये। किन्तु केसगाम पहुँचते-पहुँचते उसकी मुठ भेड़ त्रिम्बकराव से हो ही तो गई। दुर्भाग्यवश युद्ध में पेथे घायल हुआ और उसकी मृत्यु हो गई। आशा-निराशा में परिणत होने लगी। सेना के पैर डगमगाने लगे। लेकिन इसी बीच सतारा से फड़के ने पहुँच कर स्थिति संभाल ली। फड़के के साथ निजाम अली और भोसले की सेनायें भी थीं। केसगाम का विजयी रघुनाथराव, 'रघु भरारी' (रघुभगोड़ा) बन गया। उसे हरीपन्त की सम्मिलित सेनाओं से सामना करने का साहस न हो सका। वह उत्तर की ओर भाग चला।

काम की अधिकता के कारण नाना का मिलना-जुलना, आना सब बन्द-सा हो गया था। लक्ष्मी से भेंट हुये कई दिन हो गये। केवल दावत के दिन दो-चार बातें हुई थी—फिर नहीं। बख्शी जी से बात तय हो गई है। फाल्गुन तक उन्हें अब रुकना है।

सबेरे शनिवार बाडा पहुँचने पर एक दासी झुककर सलाम करती हुई एक ओर खड़ी हो गई। 'क्या है ?' नाना ने पूछा।

'सरकार को महारानी जी ने...... ।'

'अभी ।'

'जी हाँ ।'

ऊपर कमरे में पहुँचने पर गंगाबाई ने बैठने का संकेत किया। नाना बैठ गया। गर्भवती गंगाबाई पलंग पर बैठी थी। शरीर कृश और पीला पड़ गया था। वह धीरे से बोली 'मेरी हत्या के षड्यन्त्र के विषय में आपको पता तो होगा ही ?'

'हाँ । मुझे पता है ।'

'किन्तु उसके लिये कोई प्रबन्ध नहीं हुआ ।'

'ऐसी आशा आपको नहीं करनी चाहिये । आप समझती हैं मैं चुप बैठा हूं ? क्या मुझे चिन्ता नहीं ? लेकिन क्या करूँ रघुनाथराव का भय सबको खाये जा रहा है । कोई भी शरण देने को तैय्यार नहीं होता । कल बापू से सलाह की थी । पुरन्दर दुर्ग के अतिरिक्त अब और कोई स्थान नहीं है । दो-चार दिनों में हम सब वहीं चलेंगे । प्रबन्ध के लिये आदेश भेज दिया है । आप बिल्कुल न घबडायें ।'

गंगाबाई की आखों में आँसू भर आये, 'फड़नवीस साहब. आप लोगों के अतिरिक्त दूमरा मेरा कौन है । पेशवा साहब की हत्या और मेरा वैधव्य, पूर्व जन्म की कमाइयों का फल है । मुझे तो उन्हीं के साथ मर जाना चाहिये था लेकिन अभी कुछ और भोगना है । उसे कौन मेट सकता है ? मैं अभागिन हूं फड़नवीस साहब ।' गंगाबाई फूट फूट कर रोने लगी ।

'यह सब कहने के लिये ः रानी जी ! ईश्वर को जो करना है, उसे वह करेगा ही' नाना का गला भरा हुआ था 'उसकी इच्छाओं को बदलना असम्भव है । बीते हुये को स्मरण करके अपने को दुखी न कीजिये भगवान ने चाहा तो पूना की मसनद खाली नहीं रहेगी । आप सन्तोष रखें । आप ही के धैर्य से हम लोगों में कर्मण्यता आयेगी अन्यथा हतोत्साहित होते कितनी देर लगती है ?'

गंगा आँखें पोंछती रही । कुछ बोली नहीं । नाना ने उठते हुये कहा 'जा रहा हूँ । आज अधिक काम देखना है ।'

गंगाबाई हाथ जोड़ती हुई बोली 'जीने की लालसा नहीं थी नाना साहब किन्तु एक आशा के सहारे जीवित रहने के लिये विवश होना पड़ रहा है । उसे बचा लीजिये ।'

'आज उसी आशा पर साम्राज्य जी रहा है रानी जी ! गणपति हम सब की आशा अवश्य पूर्ण करेंगे । आप विश्वास रखिये ।' नाना चला गया ।

शनिवार वाड़ा खाली कर दिया गया था। पुरन्दर के दुर्ग से सारा कार्य संचालन होने लगा। परन्तु उलझनें और कठिनाइयाँ एक के बाद दूसरी आती ही गईं। अभी रघुनाथराव से छुटकारा भी न मिल पाया था कि अचानक मास्टिन पूना से निकलकर बम्बई पहुँचा और थाना के दुर्ग को अधिकार में करने के लिये बम्बई सरकार को सचेत किया। सालसिट का यह प्रदेश अंग्रेजी सरकार के निगाहों में बहुत समय से धंसा था ही, फौरन कुछ सेना जल मार्ग से और कुछ थल मार्ग से कूच कर गई।

अंग्रेजों के इस प्रकार के आक्रमण का सम्भवतः किसी को स्वप्न में भी आशा न थी; जब कि मराठों और अंग्रेजों में पहले से मित्रता का सम्पर्क चला आ रहा था। पर अंग्रेज इस सम्पर्क का अर्थ समझते हों तब तो। वे तो समय से लाभ उठाने के लिये आये थे। उनकी सभ्यता में ईमान्दारी, दुश्मनी, दोस्ती, भला-बुरा—सब समान समझा जाता था. धूर्तता के बल पर, अवसर से लाभ उठाना जैसे उनका एकमात्र लक्ष्य था।

नाना को आक्रमण की सूचना मिली। उलझा हुआ दिमाग अकुला उठा। आपत्तियों का यह तारतम्य! वह वेदना से भर उठा। उसने सोचा। ठंढी बुद्धि से सोचा। उसके हतोत्साहित मन को कहीं से प्रेरणा मिली। उसने शीघ्र 'बारभाइयो' की बैठक बुलाई। उपस्थित सदस्यों में, बहुत रात गये तक भिन्न-भिन्न प्रकार की बातें होती रहीं परन्तु निर्णय अन्त तक न हो सका। बैठक दूसरे दिन के लिये स्थगित कर दी गई। पर नाना ने दूसरे ही दिन विसाजी कृष्ण के नेतृत्व में सेना भेज दी। दुर्भाग्यवश विसाजी कृष्ण के पहुँचने के पहले ही थाना का दुर्ग अँग्रेजों के अधिकार में जा चुका था।

युद्ध, एक के स्थान पर दो हो गये। समस्यायें उलझ-उलझ कर जटिल होती जा रही थीं। 'बारभाइयों' में भिन्न-भिन्न प्रकार की चर्चायें होने लगी थीं। कोई इधर की कहता तो कोई उधर की। नित्य बैठकें होतीं, वादाविवाद होते और स्थगित हो जाती। अधिकतर सदस्य अँग्रेजों से संधि के पक्ष में थे। गोरों का विरोध, उनके सामर्थ के बाहर की वस्तु थी। टोपीवाले मानो उनके

लिये हौवा हो रहे हों। लेकिन नाना की राय कुछ और थी। वह युद्ध के पक्ष में था। वह कुछ और सोच रहा था। अन्त में निर्णय उसी की इच्छानुसार हुआ। सर्वसम्मति से घोषित किया गया—युद्ध जारी रखा जाय।

नाना समझता था दुश्मन कैसे पछाड़ा जा सकता है। साथ ही उसे वैरी को केवल परास्त ही नहीं करना था केवल हराकर चुप हो जाना ही नहीं था; उसे अपनी वाहवाही नहीं सुननी थी। उसे तो इससे भी अधिक महान कार्य करना था। अँग्रेजों को देश से विदेश करना था। उसने शीघ्र ही, निर्णय होते ही समुद्री बेड़ों की शक्ति की ओर ध्यान दिया। उसे शक्तिशाली बनाने के लिये जितने भी साधन हो सके थे जुटाये। बनानेवाले के लिये बनाते क्या देर लगती है? देखते-देखते अँग्रेजी समुद्री व्यापार पूर्ण रूप से बन्द कर दिया गया। बाहर से बम्बई में वस्तुओं का पहुँचना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव हो गया। बम्बई में हाहाकार मचने लगा। विलायतियों के मनसूबे ढीले पड़ने लगे। समुद्री शक्ति में संसार को हेय दिखाने वाले, मराठी समुद्री शक्ति से परास्त हों—लज्जा की ही तो बात थी। बंगाल से बम्बई तक तहलका मच गया। बड़ी कोशिशें की गईं परन्तु सब बेकार।

इन कठिनाइयों और मुसीबतों के बीच जब नाना को केवल आशा थी यत्र-तत्र रेखायें ही दृष्टिगोचर हो रही थी—चैत्र मास में गंगाबाई की कोख से पुत्र रत्न ने जन्म लया। समाचार पाते ही नाना नाच उठा। नौबतें बजने लगीं। मंदिरों, में पूजा-पाठ, घंटा घड़ियाल बजने लगे। पूना में दीवाली मनाई गई। बड़े-बड़े सेठ साहुकारों ने गरीबों को भोजन कराया। वस्त्र बाँटे। रूपये पैसे दिये। सारे साम्राज्य में खबर बिजली की भाँति फैल गई। पुरन्दर में, दुर्ग के नीचे, बड़े मैदान में हजारों ब्राह्मणों को भोजन कराया गया। नाना ने स्वयं लोगों को भिन्न-भिन्न प्रकार के उपहार दिये। दुख के उपरान्त आये हुये सुख को जितनी शीघ्रता और असहनशीलता से, व्यतीत को बिसार कर, ग्रहण करने की लिप्सा जाग्रत होती है, यदि वैसी ही लिप्सा सुख के बाद दुख के लिये भी होती तो सम्भवतः मानवमात्र सृष्टि एक जटिल

समस्या को कब का हल कर चुका होता। हल जानते हुये भी हल न करना—यही है विचित्रता।

देश के कोने-कोने से नाना के पास बधाइयाँ आने लगीं। नाना के प्रति लोगों की श्रद्धा अब और अधिक बढ़ गई। नाना की स्वयं झिलमिलाती आशा-किरणों ने सूर्य का स्थान ले लिया। उसके लड़खड़ाते पैर जम गये। अन्तिम विजय उसकी होगी उसे विश्वास होने लगा। अपने मालिक और राष्ट्र के प्रति स्वार्थरहित भक्ति और सेवा के कारण वह दिन प्रति दिन जनप्रिय होता गया। धीरे-धीरे साम्राज्य का सारा कारोबार उसके हाथों में सिमटने लगा।

हफ्तों के नाच-रंग के समाप्त होते ही नाना ने शीघ्र ही 'बारभइयों' की एक विशेष बैठक की और बच्चे को पेशवा घोषित करने का प्रस्ताव रखा। यद्यपि कुछ एक सदस्यों के विचार से अभी यह बहुत जल्दी थी फिर भी समय और परिस्थितियों को देखते हुये अधिक सदस्यों ने नाना के कथनानुसार शीघ्र बच्चे को पेशवा घोषित कर देना ही उचित समझा। यह अधिक कल्याण-कारी और शुभ था। नाना ने ऊपर-नीचे सभी तरह से समझाकर बताया था। तैय्यारियाँ होने लगीं। राजपंडित साइत और शुभ मुहूर्त देखने लगे। पुरन्दर दुर्ग के नीचे, मैदान में बड़ी बड़ी चान्दनियाँ पड़ने लगीं। आने वाले अतिथियों के लिये पदानुसार रावटियों और खेमों का प्रबन्ध होने लगा। दूर-समीप सभी मराठे सरदारों, सामन्तों को सन्देश भेज दिये गये। दरबार की सजावट और उसकी शान में किसी प्रकार की कमी न हो, इसका विशेष ध्यान रखा गया।

राजपंडित की बतलायी हुई तिथि पर बड़े धूमधाम से दरबार लगा। चालीस दिन के उस शिशु को, भरे दरबार के बीच, बिछे हुये मसनद पर नाना ने लाकर लिटा दिया। वायुमंडल श्रीमन्त पन्त प्रधान सवाई माधवराव नारायण की जयजयकार से गुञ्जरित हो उठा। दूर, बहुत दूर रघुभरारी और उसके साथी अँग्रेजों ने भी सुना और वे धक् से रह गये।

अठारह

बालक के जन्मते ही लक्ष्मी के पिता विवाह की तैयारियाँ करने लगे। दैवयोग से उनके लिये यह अवसर अच्छा मिल गया था। सवाई माधवराव पेशवा घोषित हुआ और उसके बाद ही शुभ मुहूर्त देखकर बख्शीजी ने अपनी पुत्री लक्ष्मी का हाथ नाना के हाथों में दिया। लक्ष्मी दुलहन बनकर नाना के घर आई।

गर्मी की रात परन्तु. झुरझुराती हुई ठंढी हवा, मस्त विचरती हुई चाँदनी, पर ललचाई हुई चाँद की दृष्टि—पुरन्दर के प्रदेश को स्वर्गमय बना रही थी। दुर्ग के अन्दर सब लोग सो रहे थे। केवल पहरे पर तैनात सैनिकों की आहट कभी कभी सुनाई पड़ जाती थी। लक्ष्मी नाना की गोद में सिर रखे चाँद को देख रही थी। नाना अपनी हथेली से लक्ष्मी की आँखों को ढँकता हुआ बोला, 'उधर न देखो। उसकी नजर लग जायेगी। देखती नहीं कितनी बुरी तरह तुम्हें घूर रहा है। बड़ी मुश्किलों से तो तुम्हें पाया हूँ।' उसने हथेली हटा ली।

'क्यों नहीं', लक्ष्मी ने नाना की आँखों में देखा—'बड़ी घोर तपस्या करनी पड़ी थी।'

'घोर तपस्या! प्रेम करना घोर तपस्या नहीं तो खिलवाड़ है? महान घोर तपस्या है। तुम्हीं बताओ यदि इतनी बड़ी तपस्या न की होती तो तुम मेरे साथ विवाह करने के लिये राजी कैसे होती?' लक्ष्मी प्रेम के शब्द से चिढ़ती है। नाना को चिढ़ाने में आनन्द आता है। चिढ़ना और चिढ़ाना, यही है इस संयोग का आनन्द।

'यह अर्थ भी आपने खूब लगाया। यह मेरी तबीयत थी। मैंने आप से विवाह कर लिया। इसमें प्रेम-सरेम का क्या चक्कर?'

'तब तुमने मेरे धनपद अथवा मेरी सुन्दरता पर रीझ कर विवाह किया होगा ?'

'आः हः,' लक्ष्मी ने गर्दन टेढ़ी करते हुये तिरछी दृष्टि से देखा—'अपनी सुन्दरता को बचाइये महाराज, नहीं, मेरी तो दूर. कहीं आपकी नजर आपको न लग जाय। बिचारा चाँद भी इस वक्त शर्मा रहा है।' लक्ष्मी ने चाँद की ओर देखा।

'धन नहीं, पद नहीं, रूप नहीं, प्रेम नहीं। फिर भी चुम्बक की भाँति खिंचती चली आईं क्यों ? किस लिये ?'

'तबीयत। और किस लिये।'

'इसी तबीयत को तो प्रेम की भाषा में प्रेम के नाम से पुकारते हैं। दूसरे को समझने का प्रयत्न करना, अर्थ हुआ उससे प्रेम करना। तुमने मुझे देखा। मुझसे बातें कीं और तब मुझे समझने की चेष्टा करने लगीं। बस प्रेम का जादू चलने लगा।'

लक्ष्मी उठकर बैठ गई। 'अच्छी बात है। आज मेरा आपका तर्क हो जाय। बड़ी प्रेम की दुहाई दिया करते हैं। चलिये, मैंने माना कि प्रेम करना एक दूसरे को समझना है। ठीक। समझ लिया। अब इस समझने के बाद कौन सी दशा आयेगी ?'

'संयोग। जीवन में एक दूसरे के कार्यों में हाथ बटाकर सुख से रहने की भावना। पति को देवता और पत्नी को अर्धांगिनी समझकर जीवन के उच्चतम शिखर पर पहुँचने की निष्ठा। यही इसका अन्त।' नाना अन्दर ही अन्दर हँस रहा था।

'रुकिये। अभी कैसे अन्त। यह आपने कर्तव्यों की व्याख्या की है। प्रेम की तो कीजिये।'

'प्रेम का व्यापक रूप कर्तव्य ही तो है लक्ष्मी।'

लक्ष्मी मुसकराई, 'अच्छी बात है। इसे भी मान लिया। अब हमें श्रीमान

यह बताने का कष्ट करें कि प्रेम केवल एक स्त्री से और एक बार जीवन में होता है या बार-बार।'

'नहीं, केवल एक बार और एक से।'

'ठीक। आपने लक्ष्मी से प्रेम किया। और आपके कथनानुसार प्रेम का आदर्श स्थापित हुआ मुझे जीवनसंगिनी बनाकर। मान लीजिये कुछ समय उपरान्त कहीं आपने एक दूसरी लक्ष्मी को देखा जो इस लक्ष्मी से अधिक सुन्दर, सुशील और गुणवान प्रतीत हुई। सृष्टि में जो न हो सके—ऐसी कोई कल्पना तो है नहीं। इसलिये आपका उसकी ओर आकर्षित होना भी स्वाभाविक है। सुन्दर वस्तु का ग्रहण करना, उसे अपने पास रखना—यह प्राकृतिक देन है। इसमें कोई इन्कार नहीं कर सकता। तब ऐसी दशा में आपका दूसरी लक्ष्मी से प्रेम प्रदर्शित करना और उसे भी वैवाहिक सम्बन्ध में बाँधकर—यदि वह भी चाहती है तो—जीवनसंगिनी बना लेना अनुचित न होगा, लेकिन आप के प्रेम की मर्यादा तो नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी। उसकी कपोल कल्पित महानता पर धब्बे लग जायेंगे।'

नाना लक्ष्मी की विलक्षणता को देखकर भीतर ही भीतर मुग्ध हो रहा था, पर ऊपर की गंभीरता को उसने नष्ट नहीं होने दिया। वह उसी गम्भीरता से बोला—'इच्छाओं को तुम दुःख मानती हो।'

'हाँ।'

'इच्छाओं का सम्बन्ध मन से है। इसे भी तुम मानोगी।'

'अवश्य।'

'मन मतंग है, चंचल है। उसके पास न भले बुरे का ज्ञान है, न परखने की शक्ति। नवीनता के प्रति आकर्षित होकर उसे प्राप्त करना यही उसका एक मात्र ध्येय है। अतः मतंग को वशीभूत करने के लिये अंकुश की आवश्यकता पड़ेगी ही और वह है इसके लिये बुद्धि। बुद्धि द्वारा संचालित कर्मों का सम्बन्ध आत्मा से होता है और आत्मा से सम्पर्क रखने वाली वस्तु सत्य होगी। प्रेम होगी।' नाना रुका। हवा के कारण चेहरे पर आये

हुये लम्बे-लम्बे बालों को पीछे करता हुआ बोला—'प्रेम और अंकुश का सम्पर्क शायद तुम्हें खटके, परन्तु जैसा भगवान कृष्ण ने बार-बार गीता में कहा है अभ्यास और एकाग्रता के बल पर ही ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है, जो स्वयं प्रेम-स्वरूप है।'

लक्ष्मी खिलखिला कर हँस पड़ी—'ईश्वर का पल्ला पकड़ कर प्रेम की दुहाई नहीं दी जा सकती फड़नवीस साहब! ब्रह्म प्रेम स्वरूप है या नहीं, यह एक दूसरा विषय है। रही बात अभ्यास और एकाग्रता की—इसे मैं कुछ समझी नहीं।'

'उदाहरणार्थ, मान लो मैंने तुम को कहीं देखा था। तुम्हारे विषय में किसी से सुना। या तुमने मुझे कहीं देखा या किसी से सुना और अनायास हृदय में आत्मीयता के भाव जाग्रत हो उठे। आत्मा ने तत्काल उसकी पुष्टि कर दी। बस। मेरे या तुम्हारे लिए वह साधना की वस्तु हो गई क्योंकि यह आवश्यक तो नहीं है कि जिसे मैं प्रेम करूँ या तुम करो, वह भी वैसा करे ही। अतः साधना की सिद्धि के लिये केवल दो उपाय हैं—अभ्यास और एकाग्रता। प्रे·······।'

'आगे न बढ़िये। यह भी तो सम्भव है कि आत्मा की ऐसी प्रेरणा दुबारा किसी दूसरे पुरुष या स्त्री के लिये जो प्रथम से अधिक रूपवान, सुशील और गुणवान हो—उत्पन्न हो जाय तब?'

'हाँ हो सकता है। पुरुषोत्तम राम ने बालि का बध वृक्ष की ओट से किया। संकेत द्वारा लक्ष्मण से शूर्पणखा के नाक-कान कटवाये। भगवती के सम्मुख पूजा करते हुये मेघनाद को पूजा छोड़कर लड़ने के लिये बाध्य किया गया। पुरुषोत्तम राम के ये सारे कर्म उस युग के लिये निन्दनीय थे। इनसे सामाजिक और धार्मिक दोनों नीति का उलंघन होता था। फिर भी राजा राम 'पुरुषोत्तम' ही रहे। इतना ही नहीं, माता तुल्य भावजों को अपनी स्त्रियाँ बनाकर रखने वाले विभीषण, राम के परम भक्तों में एक भक्त थे।

'महाभारत के कृष्ण ने शपथ ग्रहण करने के उपरान्त भी रण में समयानुसार चक्र को धारण किया और शत्रुओं का हनन किया। फिर भी 'कर्मयोगी,' 'योगेश्वर', 'परम पूज्य' इत्यादि-इत्यादि नामों से विभूषित होते ही रहे।' नाना रुका। लक्ष्मी की ठोढ़ी पकड़ते हुये कहा—'दो चार और ब्याह कर स्त्रियाँ रख लेना आसान है। भविष्य में मैं भी ऐसा कर सकता हूँ, लेकिन जो कुछ मैंने तुमको दिया है या तुमसे पाया है, वह न दूसरे को दे सकूँगा और न पा सकूँगा।'

इसके पहले कि लक्ष्मी कुछ बोले नाना ने धीरे से उसे अपनी ओर खींचते हुये कहा—'मैं तर्क में तुमसे नहीं जीत सकता प्रिये।'

'और न मैं तुमसे प्रेम में।'

फिर दोनों बोलने में असमर्थ हो गये।

उन्नीस

दासी ने गंगा बाई को सूचना दी—'श्रीमन्त नाना फड़नवीस साहब बुरहानपुर से लौट आये हैं। आपसे मिलना चाहते हैं।'

'लिवा लाओ।' गंगा बाई ने धोती ठीक करते हुये कहा।

'राजमाता को बधाई देने आया हूँ।' नाना कक्ष में पैर रखता हुआ हँसकर बोला।

'बधाई तो मुझे देनी चाहिये नाना साहब। यह सौभाग्य आपके परिश्रम का फल है अन्यथा न राजमाता होती न राजा।' गंगा बाई हँसती हुई एक गद्दीदार त्रिपद खींचकर बोली 'आइये बैठिये। और समाचार तो ठीक है?'

'अगर नहीं भी ठीक हुआ तो आप को बताने क्यों लगा? उसे अपने तक ही रखकर क्यों न झेल लिया जाय। आप से बताना एक सुखी व्यक्ति को बिना किसी कारण दुःखी बनाना ही तो होगा?'

युवती के कपोलों पर एक गंभीरता की रेखा फैलकर विलीन हो गई, 'मेरे प्रति यह अन्याय होगा नाना साहब। आपके उपकारों का बदला, आप की परेशानियों में हिस्सा बटाकर ही दिया जा सकता है। दूसरा साधन मेरे पास क्या है। इस एकाकी जीवन को केवल सुखों के बोझ से लाद कर नहीं घसीटा जा सकता। साथ-साथ दुःखों और चिन्ताओं का होना भी अत्यन्त आवश्यक है।'

नाना विस्फारित नेत्रों से उस सत्रह वर्षीया विधवा को देखते रह गया। उसका यौवन और रूप, फिर एकाकी जीवन का विश्लेषण जैसे वह समझ नहीं पा रहा था। उसे उत्तर देने की उधेड़बुन में कुछ विलम्ब हो गया।

'क्या मैंने कुछ वैसी बात कह दी?' गंगा ने आश्चर्य से नाना की ओर देखा।

नाना जैसे सोते से अचानक जाग पड़ा हो। उत्तर देने में इतनी देर! उसे अब जान पड़ा। उसने बात बनाई—'नहीं, सोच यह रहा था कि जिसके नमक पर पलूँ उसी पर मेरा उपकार। आप मेरा पालन करने वाली हैं रानी जी! आप के नमक पर मेरी पीढ़ियाँ पलती चली आई हैं। मैं आप या आप के साम्राज्य पर कोई उपकार नहीं कर रहा हूँ। यह मेरा धर्म है। मुझे प्रत्येक दशा में इसकी सेवा और आवश्यकतानुसार जिन्दगी की बाजी लगाने के लिये बाध्य होना ही चाहिये।'

'नमक पर पलने वाले और भी हैं नाना साहब। बहुत से हैं। उन्हें भी अपने कर्तव्यों का ज्ञान है। वे भी समझते हैं, लेकिन उनमें से अपने जीवन को दाँव पर लगाने वाले कितने हैं? और ऐसे कुसमय में जहाँ मरने के अतिरिक्त जीने का कोई प्रश्न न हो, ऐसे समय में आप ने अपने प्राणों का मोह छोड़कर मालिक की सेवा की, उसे महान संकट से उबारा। इसे ही तो उपकार कहा जाता है। मालिक का जितना खाया उससे अधिक चुकाया। सूद उपकार के खाते में चला गया।' गंगा बाई हँसने लगी।

'सूद को उपकार के खाते में न भरिये; वह मालिक की दी हुई रकम का ब्याज है जिसे वह स्वयं उपभोग न करके, जोखिम को समझते हुये, संकट आपदाओं के समय दूसरों को देता है।'

गंगाबाई और नाना हँसने लगे।

बच्चा रोने लगा था। गंगाबाई उसे गोद में उठा कर कमरे में टहलती हुई बोली—'बुरहानपुर में······।'

'कुछ नहीं हुआ। सन्धि की वार्ता होने के पहले ही अचानक एक रात अपने सैनिकों सहित वह भाग खड़ा हुआ।'

'आप लोग वैसे ही लौट आये! परेशानियाँ ज्यों की त्यों रह गईं!' गंगाबाई ने एक लम्बी सांस ली—'मालूम नहीं गणनाथ क्या करने वाले हैं।' वह पालने पर बच्चे को लिटाती हुई बैठ गई।

नाना हँसा—'गणनाथ की ही कृपा से तो ऐसा हुआ है, वरना रघुनाथ राव को भागने की क्या जरूरत थी। मेरे मन की हो गई रानी जी। आप शायद समझती हैं मैं रघुनाथ राव से संधि करने के लिये अपनी तबीयत से गया था। लेकिन ऐसी बात नहीं है। मुझे विवश होकर आना पड़ा था। जब बापू और मेरे दादा भी रघुनाथ राव के पक्ष में बातें करने लगे तो विवश होकर मुझे बुरहानपुर जाना ही पड़ा। किन्तु कैलासपति ने मेरी रख ली। जो चाहता था उसे अब मैं पूरा कर लूँगा। सेनापतियों को आदेश भेज चुका हूँ। देखिये पकड़ में आता है या निकल भागता है।'

'क्यों, निकल कर अब कहाँ जायेगा?'

'अंग्रेजों के पास। कलकत्ते में वारेन हेस्टिंग्स से बात चल रही है। बम्बई की सरकार पहले से इच्छुक है ही। जैसी मुझे सूचना मिली है, बहुत आशा है अंग्रेज उसे सहायता देकर अपनी सैनिक शक्तियों द्वारा बलपूर्वक पुनः उसे पूना की मसनद पर बैठाने का प्रयत्न करें।'

'तब!' गंगाबाई की आँखें जैसे कुछ बड़ी हो गईं।

'तब क्या। लड़ाई होगी। अभी केवल समुद्री हो रही थी, अब स्थलीय भी होगी। एक में विजयी हो रहा हूँ, दूसरे में भी हूँगा। आप देखती जाइये। मैं इन टोपी वालों की धूर्तता को खूब समझता हूँ। और यदि परमात्मा ने चाहा तो इनकी धूर्तता का मजा इन्हीं को चखाऊँगा।'

गंगाबाई ने कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु उसे विश्वास था कि यह पुरुष अपने मस्तिष्क और दूरदर्शिता के बल पर सब कुछ कर सकता है। इसकी पुष्टि वह पहले ही से करता चला आ रहा है।

नाना ने उठते हुए कहा—'आप का सबसे बड़ा उत्तरदायित्व बालक के लिये है। वैसे पुरुषोत्तम दाजी पटवर्धन की नियुक्ति मैंने कर दी है। उनके रहते अब कोई बाल भी बाँका न कर सकेगा। तब भी आप को अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है। किस पर कितना विश्वास किया जाय—यह इस समय कहना असम्भव है। दूसरी बातों की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।

बालक पेशवा के जीते जी दूसरा पेशवा बन जाय, इसे आप असम्भव ही समझिये।'

गंगाबाई ने खड़े होकर हाथ जोड़ते हुये कहा—'आप के आने से बड़ी सांत्वना मिलती है नाना साहब। कष्ट न हुआ करे तो अवसर निकाल कर आ जाया करें। आप के साथ कुछ समय बैठकर आत्मीयता का अनुभव तो करती हूँ।' वह रुकी फिर कुछ मुसकराती हुई बोली—'जब अपने को उलझा कर दूसरों को सुलझाने का ठेका ही ले रखा है तब चिन्ता किस चीज की?'

'मरता क्या नहीं करता रानी जी। ठेका देने वाले ने मुझे यही काम सौंपा ही, मजबूरी थी।' नाना हँसता हुआ हाथ जोड़कर मुड़ गया।

बीस

जैसा नाना ने गंगाबाई से कहा था ठीक वैसा ही हुआ। बुरहानपुर से भागता हुआ रघु-भगोड़ा धार पहुँचा। वहाँ से अँग्रेजों के संरक्षण में गोधरा होते हुए बड़ौदा आया। बड़ौदा पहुँचने पर उसे सूचना मिली कि हरीपन्त, महादजी और तुकोजी अपनी-अपनी सेनाओं सहित उसका पीछा कर रहे हैं। वह चिन्तित हुआ, परन्तु तत्काल उत्तर की ओर मुड़ चला। माही नदी पार की, परन्तु दुर्भाग्यवश वहाँ हरी पन्त की सेना उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। आज कल के वसाद रेलवे स्टेशन के समीप दोनों सेनाओं में विकट युद्ध हुआ और परिणाम स्वरूप रघुनाथराव पूर्ण रूप से भगोड़ा बन गया। सैनिक भाग खड़े हुये। सारा सामान पूर्णतः हरीपन्त के हाथ लगा। अँधेरा होने के कारण भगोड़े ने भगोड़ी का रूप धारण किया और अपनी रखैल 'जनाना' के बीच लुकता-छिपता किसी प्रकार कैम्बे पहुँचा।

मास्टिन ने पहले से सारा प्रबन्ध कर छोड़ा था। सूचनायें भी दे रखी थीं। कैम्बे में अँग्रेजी कारखाने के गुमाश्ता मेलेट ने रघुनाथराव को बड़े आवभगत से लिया और शीघ्र ही अँग्रेजी जहाज द्वारा सूरत भेज दिया। सूरत में रघुनाथ राव ने अँग्रेजों से संधि की जिसमें मुख्य शर्त थी कि पूना की मसनद पर बैठने के उपरान्त ही बम्बई के सारे टापू जिनमें थाना, बेसीन और सालसिट भी होगा—अँग्रेजों के अधिकार में चले जायेंगे। जम्बूसार और औलपद के तालुके भी छोड़ने पड़ेंगे।

संधि हो गई। कर्नल कीटिंग की देख-रेख में अँग्रेजी सेना रघुनाथराव को साथ ले, समुद्री मार्ग द्वारा सूरत से कैम्बे पहुँची। लगभग एक महीनें तक हरीपन्त से माही नदी के उत्तरी भाग में छिटपुट लड़ाइयाँ होती रहीं, परन्तु कोई परिणाम न निकला। हरीपन्त के लिये टोपी वालों के विरुद्ध लड़ने

का यह पहला अवसर था। अतः वह विजयी होकर ही लौटना चाहता था।

रात को सारे टुकड़ी-नायकों से हरीपन्त ने मंत्रणा की और दूसरे दिन मराठे सैनिक बाज की भाँति झपटे और देखते-देखते तीन सौ अँग्रेज काट डाले गये जिनमें ग्यारह तो ऊँचे श्रेणी के पदाधिकारी थे। गोरों के पैर उखड़ गये। हरीपन्त विजयी हुआ। उसकी तमन्ना पूरी हुई। नाना के पास, पुरन्दर सूचना भेज दी गई।

नौसेनीय भिड़ंत और उसके द्वारा उत्पन्न स्थिति से यों ही बम्बई सरकार की दशा शोचनीय होती जा रही थी; इसी बीच हरीपन्त की विजय ने रही सही आशा पर भी पानी फेर दिया। गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स घबड़ाया। कहीं मराठे आगे बढ़कर कुछ और न कर बैठें। उसने शीघ्र पूना सरकार को संधि के लिये लिखा और कर्नल अपटन सारे अधिकारों सहित पूना के लिये रवाना कर दिया गया। पेशवा सरकार ने अपटन का पूना में, बड़े धूमधाम से स्वागत किया और तब उसे पुरन्दर लाया गया।

किले के नीचे केदित गाँव में एक रावटी लगाई गई। शपथ-ग्रहण करने के उपरान्त दोनों पक्षों में वार्ता आरम्भ हुई। पेशवा की ओर से नाना, सखाराम बापू और कृष्णराव काले बातें कर रहे थे। नित्य दोपहर के बाद वार्ता आरम्भ होती थी और अधिकतर संध्या गये तक तर्क-वितर्क हुआ करते थे।

एक महीने तक लगातार वार्तालाप और वाद-विवाद के उपरान्त भी दोनों पक्षों में सन्धि न हो सकी। मतभेद के विशेषतः दो ही कारण थे। अपटन का कथन था—बेसीन, सालसिट और भड़ौच अँग्रेजों के अधिकार में रहे और रघुनाथराव को पेशवा बालक का संरक्षक बनाकर साम्राज्य का सारा प्रबन्ध उसके हाथों में सौंप दिया जाय। ये दोनों ही शर्तें विशेष कर नाना के लिये किसी भी दशा में मान्य नहीं थी। और मान्य हो भी कैसे! संधि का प्रस्ताव उनके द्वारा नहीं रखा गया था। संधि की इच्छुक अँग्रेजी सरकार थी।

वार्ता समाप्त हो गई। अपटन के लौटने की तैयारी होने लगी। नाना ने सखाराम से ऊपर दुर्ग में चढ़ते हुये कहा—'आप समझते नहीं बापू, बातों के द्वारा यह कौम अपनी हार नहीं मानती। इनके लिये एक मात्र उपाय है इनकी शक्ति को क्षीण कर रौंद डालना। पराजित होकर भी अपने को पराजित स्वीकार करना, शायद ऐसी शिक्षा इनके देश में नहीं दी जाती।'

बापू केवल सिर हिलाते हुये 'हाँ, हूँ' करते रहे।

नाना ने फड़के के पास अँग्रेजों पर आक्रमण करने की सूचना भेज दी। परन्तु बुरे दिन को कौन कहे? एक कपटी जो अपने को सदाशिव राव भाऊ कहा करता था और जिसे बहुत दिनों पहले रत्नागिरि के दुर्ग में बन्द कर दिया गया था—अचानक किसी हिकमत से निकल भागा और पूना सरकार के विरुद्ध एक बड़ा भारी हंगामा खड़ा कर दिया। सामने बहता हुआ जल-प्रवाह मुड़ गया। 'बारभाइयों का कारभार' चिन्तित हो उठा। विवशता आ गई। कहाँ-कहाँ सँभाला जायेगा? संधि अब किसी न किसी प्रकार करनी ही थी। कर्नल अपटन रोक लिया गया। संधि की बातचीत फिर चलने लगी। सन्धि हो गई। थाना का दुर्ग और सालसिट का टापू अँग्रेजों के अधिकार में रहा। रघुनाथराव को तीन लाख पन्द्रह हजार वार्षिक व्यय देने का निर्णय हुआ और राज्य प्रबन्ध से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रखा गया।

तीन सवातीन वर्ष के अथक परिश्रम और कठिनाइयों के उपरान्त कुछ शान्ति मिली। यद्यपि नाना फड़नवीस इस शान्ति से सन्तुष्ट नहीं था फिर भी उसे यह तो संतोष था ही कि पूना की मसनद पर उसने उसी व्यक्ति को बैठाया है जो उसका उत्तराधिकारी था। परन्तु अन्तर में छिपी हुई रघु-भरागी से पूर्ण प्रतीकार की टीस और अँग्रेजी शक्ति की भारत पर फैलती हुई सत्ता का भय, रह रहकर कहीं चिभ रहा था। वह तब भी मौन था।

परिस्थितियाँ मजबूर कर रही थीं। ईश्वर जो करता है अच्छा ही करता है—इस विश्वास पर मिले हुये अवसर का सहयोग करना ही उसने श्रेष्ठकर समझा। वह अपने कार्यों में जुट गया। चौदह-चौदह, सोलह-सोलह घंटे बैठकर लगातार काम करते रहना, उसकी दिनचर्या हो गई। हफ्तों बीत जाते, लोग उसे देखते तक नहीं। काम का अधिकांश भाग स्वयं उसके द्वारा ही होता। वह स्वयं सब देखता और लिखता। पेशकारों की सुपुर्दगी में केवल मामूली काम ही दिये जाते थे।

प्रथम उसने राजस्व को लिया। सरकार की आर्थिक स्थिति बड़ी डावाँ-डोल हो गई थी। अतः उसको सँभालना अत्यन्त आवश्यक था। कर वसूली के प्रबन्ध को सँभाला गया। कुछ नये कर भी लगाये गये, पर जनता का नाना ने विशेष ध्यान रखा। काम धीरे-धीरे हाथों में आने लगा। चारों ओर संतोष और शान्ति की भावना फैलने लगी। लोगों में एक नई जागृति और नये उत्साह की प्रवृत्ति बढ़ने लगी।

सेनापति फड़के युद्ध-स्थल से लौटा। पूना में स्वागतार्थ बड़ी तैयारी हुई। नाना स्वयं पुरन्दर से आया हुआ था। युवक सेनापति अपने सैनिकों सहित आया। नगर में प्रवेश करने के पहले ही उसने दूर से, सामने स्वागतार्थ खड़ी भीड़ को देखा। वह घोड़े से उतर पड़ा। समीप आने पर उसे नाना भी दिखलाई पड़ा। वह दौड़ा, और दोनों मित्र गले से लिपट गये। नाना ने पीठ ठोंकते हुए कहा—'मराठा जाति को तुम पर गर्व है हरी।'

'और मेरे मित्र को?' हरी मुसकरा रहा था।

'वह कहने वाली वस्तु नहीं। इससे हलकापन आ जायेगा।'

टीका और मालाओं से हरीपन्त की गर्दन झुक गई। सेनापति की चारों ओर सराहना हो रही थी। सब लोग बढ़े, परन्तु पीछे किसी स्त्री की आवाज आई—'सेनापति।'

सब लोग रुक गये। वह भीड़ से होती हुई सेनापति के सम्मुख आ गई।

युवक की दृष्टि टिकी तो लेकिन फौरन झुक गई। 'मैं वेश्या-पुत्री हूँ सेनापति, मुझे भी टीका लगाने की अनुमति दी जा सकेगी?'

हरीपन्त ने उधर देखा, फिर नाना की ओर, 'हाँ हाँ,' नाना शीघ्रता से बोल उठा—'लगाओ। इसे भी पूछना है।'

उसने टीका लगाते हुये माला पहिना दी और झुककर प्रणाम किया। सब लोग आगे बढ़ गये। पूना में रुकने का प्रबन्ध नहीं था। इसलिये नगर से होती हुई सेना पुरन्दर को चल पड़ी।

इक्कीस

गोधूलि की बेला। शिवाजीपेठ के अन्तिम छोर पर पश्चिम की ओर एक बड़े मकान के सामने दो अश्वारोही आकर रुके। छरहरे बदन का गठीला युवक अश्वारोही घोड़े से कूद पड़ा। दूसरे को उतरने में कुछ देर हुई? वह बुड्ढा भी तो हो चला था।

'मालिक मैं उस पेड़ के नीचे प्रतीक्षा करूँ।

युवक ने पेड़ की ओर देखा और 'हाँ' कहकर अन्दर मुड़ गया।

मकान प्रकाशित हो चुका था। दासी अन्दर सूचना लेकर गई और शीघ्र ही लौटी 'आइये। चलिये।' उसने कहा।

आगन्तुक को अपमान प्रतीत हुआ। वह समझता था, नाम सुनते ही वह दौड़ी हुई आयेगी। वह सिर लटकाये दासी के पीछे हो लिया। मकान पीछे काफी दूर तक लम्बा था। बीच का सहन फूलों की क्यारियों और शहतूत, फालसे, अनार, नीबू के छोटे छोटे वृक्षों से अति मनोरम दीख रहा था। सहन को बीच से पार करती हुई दासी रुक गई। उसने सामने की ओर संकेत किया और लौट पड़ी।

कमरे के द्वार पर वह हाथ जोड़े खड़ी थी। आगन्तुक ने भी हाथ जोड़े। उसने कुछ कहा नहीं। वह आगन्तुक को साथ ले उस कमरे से लगा हुआ पीछे की ओर, दूसरे कमरे में पहुँची। कमरा सजा था, परन्तु तड़क-भड़क नहीं थी। फर्श पर गद्दी के ऊपर कालीन बिछी थी। बीच की कालीन पर एक छोटी-सी और कालीन बिछा दी गई थी और एक बिलकुल सफेद गावतकिया, जो सम्भवतः अभी-अभी निकाली गयी थी— रखी हुई थी। 'तुम उस पर बैठो।' उसने कहा।

आगन्तुक बैठ गया। सामने वह भी बैठ गई। जूड़े में लिपटी हुई रजनी-

गंधा की माला कमरे में भीनी-भीनी खुशबू फैला रही थी। 'तुम्हारी सूचना पाकर भी तुम्हें द्वार से मेरा लिवाने न आना तुम्हें बुरा लगा होगा? लेकिन मैं आती कैसे? तुम्हारे लिये आसन जो ठीक कर रही थी। तुम पण्डित आदमी ठहरे। कम से कम स्वच्छ आसन तो होना ही चाहिये। खैर। तुम आगये। मेरी इन्तजारी पूरी हुई।'

आगन्तुक हँसा 'मेरे आने की इन्तजारी भी की जा रही थी?'

'क्यों? मैं जो तुम्हारे पास गई थी।'

'अच्छा!'

'इसमें आश्चर्य करने वाली कौन सी बात है जो झट से कह दिया 'अच्छा'। अगर न आये होते तो कुछ कहा भी जाता लेकिन इस वक्त तो मुजरिम बने बैठे हो। मेरी इन्तजारी गलत क्यों थी?'

आगन्तुक ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। उसने हँसते हुये कुछ और कहा 'उस दिन तुम्हें अच्छी तरह नहीं देख पाया था। आज देखने आया हूँ।'

'देखने के लिये तो मैंने उस दिन भी मना नहीं किया था,' वह मुसकराई 'और न आज ही कर रही हूँ। देखने वालों की आँखों को कोई बन्द भी करेगा तो कब तक। देखने वाली चीजों को देखना ही चाहिये।'

आगन्तुक के हृदय में एक अजीब गुदगुदी उठ रही थी। उसने पूछा 'यहाँ और लोग भी आते होंगे?'

वह वैसे ही सरल भाव से बोली 'यह हवेली और शान-शौकत आने वालों की ही देन तो है। बाप दादों के पास रियासत नहीं थी।' वह रुकी। 'तुम इससे नफ़रत करते होगे। होना भी चाहिये। यह जगह ही ऐसी है। आते सब हैं लेकिन घृणा सभी को रहती है। यदि तुम को है तो बुरा नहीं समझा जा सकता।'

अनायास बेतुके प्रश्न के पूछ बैठने से आगान्तुक को लज्जित तो अवश्य होना पड़ा परन्तु निकले हुए शब्दों को वापस लेने का कोई साधन

भी नहीं था। उसने बात बनाई, 'यह समझते हुये कि तुम्हारा पेशा निन्दनीय है फिर भी इसे तुम करती हो।'

'जीवन को सुखी बनाने के लिये। उसके लक्ष की पूर्ति के लिये। जीवन का लक्ष है धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति। धर्म मैं मानती हूँ। ईश्वर या अल्लाह का साँझ-सबेरे नाम भी ले लिया करती हूँ। अर्थ और काम की प्राप्ति का जलवा तुम देख रहे हो। रहा प्रश्न मोक्ष का। उस पर विश्वास नहीं। और यदि मान लो उस पर विश्वास भी किया जाय तो वह किस लोक की वस्तु है—उसे ढूँढा नहीं जा सकता। इसलिये काल्पनिक स्वर्ग के सुखों की कल्पना कर के प्रत्यक्ष को गँवा देना बुद्धिमानी का कार्य न होगा।'

'परन्तु इन वस्तुओं की उपलब्धि जीवन साथी के बन्धन में बँधकर भी हो सकती थी। वहाँ इसके लिये और भी सुगम मार्ग है।'

वह अँगड़ाई लेती हुई खिलखिला पड़ी, 'यदि ऐसा कर लिया होता तो तुम्हारी न तृप्त होने वाली तृष्णा आज कैसे तृप्त होती? आज का यह सम्मिलन और आनन्द कहाँ प्राप्त होता?'

आगन्तुक जिस रास्ते पर उसे लाने का प्रयत्न कर रहा था शायद वह बहुत पहले उस गूढ़ाशय का अनुमान लगा चुकी थी।

आगन्तुक बोला 'किन्तु इन तर्कों की सार्थकता का मूल्य भी तो तुम्हारे लिये कुछ हो?' बात कड़वी थी जो अनजाने में निकल गई।

वह भी कुछ गंभीर हो गई लेकिन उसके कथन में सरलता थी 'मूल्य वास्तविकता की सदैव होती है चाहे सबेर में हो या देर में। वैसे बहुमत द्वारा, बल द्वारा अवास्तविक को वास्तविक का रूप दे देना और फिर उसी की लीक पीटते हुये अपने को सही और दूसरे को गलत बताने का ढोंग तुम्हारा समाज, चाहे समाज को भले ही प्रभावित कर ले परन्तु हमारे समीप तो वह बिल्कुल ही खोखला है। नीचता की भी हद हो गई। दोष तुम करो, बर्दाश्त हम करें। मान-मर्यादा, चरित्र, आचरण स्वयं अपना नष्ट करो और मुझे भी नष्ट करने के लिये विवश करो लेकिन पाप सब हमारे माथे। हेय की दृष्टि से

हम ही देखे जाँय। तुम बाकी ढोंग बनाये मूछें टेरते घूमा करो।' वह रुकी। उसने ध्यान से आगन्तुक की ओर देखा। चेहरे पर कुछ फीकापन आ गया था। दासी पान लेकर आई। उसने आगन्तुक के सामने रख दिया।

'यह हिन्दू है। पान भी बाहर से मँगाया है।'

'और तुम ?'

'मुसलमान'

'लेकिन तुम्हारी······।'

'तुम लोगों के सम्पर्क में रहते-रहते।'

'भेद-भाव की कट्टरता को मैं इतना नहीं मानता। तुम जानती हो, हमारे छत्रपति शिवाजी महाराज ने कितने मुसलमानों की शुद्धी करा कर हिन्दू बना लिया था। स्वयं बड़े पेशवा बाजीराव साहब ने मस्तानी से विवाह किया था।'

वह मुसकराई 'लेकिन जब तक 'हमारे' और 'तुम्हारे' की भावना विलीन नहीं हो जाती, इन सुधारों का कोई महत्व नहीं। ये तो केवल 'समरथ के नहिं दोष गोसाईं' की पुष्टि करते हैं। खैर, छोड़ो इन पचड़ों को। सैनिक के जीवन में इनका क्या स्थान। जीवन केवल उलझने के लिये थोड़ा ही बना है। इसमें कभी-कभी सुलझन भी होनी चाहिये। भवरों की भाँति भिन्न-भिन्न कलियों से रस चूसने की प्रवृत्ति भी होनी चाहिये।'

आगन्तुक का मस्तिष्क चकरा उठा था। वह अभी तक यह नहीं समझ पाया था कि इस नवयौवना वेश्या की प्रकृति का रूप कौन सा है। वह जिधर मुड़ता उधर ही उसका रूप निखरा दिखाई पड़ता। छिपाव जैसे उससे कोसों दूर हो। वह कुछ सोचता हुआ बोला 'एक बात पूछने आया था।'

वह झट से हाथ हिलाती हुई कह उठी 'आज नहीं। इतनी जल्दी। शुरू भी नहीं हुआ कि खत्म कर देना चाहते हो। तब उसमें मजा क्या मिलेगा। मजा किसी वस्तु विशेष का गुण तो है नहीं। इसे अपनी ओर से कल्पना कर लेना पड़ता है और वह कल्पना जितनी ही सुन्दर और विस्तृत

होगी आनन्द उतना ही अधिक और सुखदायी होगा। अनाड़ियों के साथ यहाँ तो परीशानियाँ होती हैं।' वह हँसने लगी।

आगन्तुक झुंझला उठा 'तुम्हें क्या ज्ञात है कि मैं पूछना क्या चाहता हूँ ?'

'ज्ञात है। कल आओगे तो बताऊँगी।'

'यह कोई जरूरी नहीं कि कल मैं आऊँ ही।'

उसने फिर अँगड़ाई ली, जरूरी है। कल नहीं तो परसों आओगे। हफ्ते दो हफ्ते बाद आओगे। महीने दो महीने बाद आओगे। साल दो साल बाद आओगे। लेकिन आओगे अवश्य। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा जो करती रहूंगी।' वह उठ खड़ी हुई, 'अब उठो। पुरन्दर पहुँचते पहुँचते अधिक रात हो जायगी।'

आगन्तुक चुपचाप उठ खड़ा हुआ। विवशता थी। वह कमरे से निकल कर सामने न जाकर पीछे की ओर मुड़ी। 'इधर कहाँ ?'

'दिन में आने के लिये मार्ग दिखा दूं। कल इसी मार्ग से आना। इधर कोई आता नहीं' उसने बड़े द्वार की ओर संकेत किया 'तुम सब की दृष्टि में धूल झोंक सकते हो। कल यह खुला रहेगा।' वह लौट पड़ी।

'सुन्दरता में नग्नता का दोष, उसके सौंदर्य को नष्ट कर देता है।'

'अच्छा! तुम व्यंग भी कर लेते हो। लेकिन क्रोधित होने पर। खैर, नग्न सत्य ठहरा।'

आगन्तुक ने कोई उत्तर नहीं दिया। द्वार पर हाथ जोड़ती हुई वह बोली 'कल सेनापति की प्रतीक्षा दासी करेगी।'

सेनापति ने उसकी ओर देखा और नीचे उतर गया। घोड़ों की टाप नीरवता में विलीन हो गई। वह अन्दर लौट आई।

हरीपन्त, रास्ते भर उसके वास्तविक रूप को टटोलता रहा और पुरन्दर आ गया।

बाईस

उस युग की राजनीति में नाना ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसे भारत के कोने-कोने का समाचार सबसे पहले विदित होता था। बम्बई और कलकत्ते की राजनीति और उसकी प्रतिक्रियायें, इंग्लैंड से आये हुये डाईरेक्टरों के आदेश तथा उनको कार्य-रूप में परिणत करने के हेतु यहाँ की अँग्रेजी सरकार के उपाय सब उसे ज्ञात होते रहते थे। अँग्रेजी सरकार गुप्त रखने का प्रयास करती हुई भी असफल रहती। नाना का गुप्तचर विभाग, उसके मस्तिष्क की अनोखी देन थी जिसे आज भी पढ़कर आश्चर्य ही किया जा सकता है। मराठा साम्राज्य को इस थोड़े से काल में इतनी जल्दी संगठित कर भविष्य के लिये तैयार कर देना, यह उसकी ही विशेषता थी। उसकी निस्वार्थ लगन और दिन-रात के परिश्रम ने साम्राज्य पर जादू फूँक दिया था। किसी ने जब भी देखा, उसे काम करते ही पाया।

लक्ष्मी को शिकायत है 'स्वास्थ्य गिरता जा रहा है', गंगा बाई का मीठा उलाहना 'आप कभी आते ही नहीं', नाते रिश्तेदारों के ताने 'अब क्यों कहीं जाने-आने लगे ?' पूरे साम्राज्य के स्वामी हो रहे हैं; और जनता की सद्भावनायें 'चिरंजीवी हों हमारे नाना साहब फड़नवीस।' भिन्न-भिन्न लोगों की भिन्न-भिन्न बातें। नाना सबको सुनता अपने कर्तव्य में रत रहता। यही उसने अपना ध्येय बना लिया था।

इधर महीनों से नाना ने बालक पेशवा को नहीं देखा था। केवल नित्य कुशलता का समाचार मिल जाया करता है। दोपहर को भोजन से उठने पर लक्ष्मी बोली 'गर्मी के दिन आये। अब दोपहर में कुछ आराम तो कर लिया कीजिये। स्वास्थ्य न होगा तो काम कैसे कर पायेंगे।

'अच्छी बात है। इस समय तो रानीजी के पास जा रहा हूँ। उनका उलहना भी दूर हो जायेगा और बच्चे को भी देख लूँगा। महीनों से नहीं देखा है।'

लक्ष्मी ने कुछ कहा नहीं। सिर हिला दिया।

यद्यपि गंगाबाई अधिक से अधिक समय अपने पुत्र के संग हँसकर, खेल-कूद कर, उसके तोतले अस्पष्ट शब्दों को समझने की चेष्टा और उससे आनन्दित होकर ही व्यतीत कर देती है परन्तु दिन और रात्रि के सम्मिलन में कुछ घड़ियाँ ऐसी भी आती हैं जिन्हें काटना उसके लिये दूभर हो जाता है। वह विगत को भूल सकती है और भूल भी चुकी है। पर अपनी अवस्था के लिये उसके पास कौन सा साधन था। गीता, रामायण, पूजा पाठ, व्रत-उपवास, दान-पुण्य सभी कुछ तो करती है। लेकिन शान्ति नहीं मिलती। अभाव की पूर्ति नहीं हो पाती। चित्त की उच्छृङ्खलता को वह दबा नहीं पाती। संयम के टूटने का भय सदैव बना रहता है। कभी-कभी सोचने लगती है तो घंटों सोचती ही रह जाती है। परन्तु छोर उसके पल्ले नहीं पड़ता। तरुणाई की मादकता में ऐसी प्रबलता होगी इसका आभास तो उसे वधू बनकर आने के समय भी इतना नहीं मिल पाया था।

दो वर्ष का पेशवा विभिन्न स्थानों से आये हुये खिलौने से खेल रहा था। माँ पलँग पर लेटी हुई किन्हीं चिन्ताओं में व्यथित थी। दासी ने नाना साहब के आने की सूचना दी। वह उठ खड़ी हुई।

'महीनों बाद दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ।' वह बोली। नाना ने बालक को गोद में उठा लिया था। 'आप इसके लिये कर तो बहुत कुछ रहे हैं। यदि इसका एहसान माने तो।'

नाना बैठ गया। 'अपने कर्तव्य को निभा रहा हूँ। एहसान कैसा?' उसने बच्चे को चूम लिया। 'बच्चे पर माता-पिता, दोनों की छाप पड़ी है।' उसने उसे ऊपर की ओर उठाते हुये देखा। वह हँस रहा था।

'है भी तो दोनों का।' गंगा बाई कुछ सकुचा कर बोली।

लड़का माँ की गोद में जाने के लिये हाथ-पैर हिलाने लगा। नाना ने उठकर उसे गंगा बाई के हाथों में दे दिया। गंगा की गोद से निकल कर वह फिर खिलौनों से जा उलझा।

'कपटी' के बयान हो गये? गंगा ने पूछा।

'हो गये।'

'क्या कहा?'

'कहता क्या। मृत्यु को सामने देखकर दूसरों पर दोष ठहरा रहा है। कहता है दूसरों के वरगलाने में आकर मैंने भाऊ साहब के नाम से स्वाँग रचा था। खैर राम शास्त्री साहब ने प्राण दण्ड का फैसला दे दिया है।'

'फाँसी हो गई।'

'कल। सारे नगर में घुमवाने के बाद। कम से कम सब लोग उसे देख तो लें।'

'चलिये। एक चिन्ता तो आपकी दूर हुई।'

'हाँ···आ···और···क्या···।'

'क्यों। यह मामूली चिन्ता थी।'

'मामूली तो नहीं थी लेकिन दूसरी उससे बड़ी एक और मुँह फाड़े खड़ी है।'

'दया!'

'आसार कुछ ऐसे ही दिखाई पड़ रहे हैं। अँग्रेजों की धूर्तता और उनकी नीचता का अन्दाज लगाये नहीं लगता। संधि और प्रतिज्ञाओं द्वारा वे दूसरों को संतोष देकर अपनी स्वार्थसिद्धि करते हैं और मिले हुये अवसर से भविष्य की तैयारियाँ। उनके लिये प्रतिज्ञायें और संधियाँ रोज की चुहुलबाजियाँ हैं। आज आपके साथ हैं तो कल मेरे साथ फिर परसों तीसरे के साथ। जैसा अवसर देखा, चाहे सही हो या गलत, वैसा ही किया। अपना लाभ होना चाहिये।'

'किन्तु आप लोगों के साथ तो पूर्णरूप से संधि हुई थी। संधि ही के लिये बंगाल से अपटन आया था। महीनों वार्ता के उपरान्त संधि की शर्तें तय हुईं।'

'हाँ हुई तो थीं किन्तु वे सारी शर्तें केवल कागजों की थीं। कर्नल अपटन पूरे अधिकारों के साथ संधि कर गया और बम्बई की सरकार ने उन कागजों के टुकड़ों को कूड़े की टोकरी में फेंक कर, संधि को असंधि घोषित कर दिया रघुनाथराव के सहायतार्थ तैयारियाँ करने लगी। बम्बई में रघुनाथराव उनका अतिथि बनकर रुका हुआ है।'

गंगा बाई ने आश्चर्य भरी दृष्टि से नाना की ओर देखा।

'हाँ, ऐसा ही है रानी जी। पूछने पर कह दिया कि रघुनाथराव की सुपुर्दगी की जिम्मेदारी उनकी नहीं है। पेशवा उसे स्वयं बन्दी बना ले। और जब मैंने यह पूछा कि उसे अपने यहाँ शरण क्यों दे रखा है तो उनका जबाब आया कि आये हुये अतिथि की रक्षा करना, उनके लिये नितान्त अनिवार्य है। यह···।'

'लेकिन रघुनाथराव को बन्दी बनाने का क्या प्रश्न। उसके लिये तो······।'

हाँ, निश्चित यही हुआ था मगर संधि के बाद ही उसने शर्तों को स्वीकार करने से नाहीं कर दी और इधर उधर भागता, लोगों को भड़काता हुआ, अपने रक्षार्थ फिर अँग्रेजों की शरण में जा पहुँचा। मैंने पेशवा की ओर से अपटन को लिखा भी था लेकिन उसका कोई उत्तर नहीं आया। वह चुप्पी साध गया।'

'किन्तु अपटन तो पूरे अधिकारों सहित आया था और कलकत्ते से आया था। कलकत्ता सरकार के आदेशों पर ही तो बम्बई और मद्रास की सरकारें चला करती हैं। तब इस प्रकार·····।' गंगा बाई को कुछ क्रोध आ गया था।

नाना हँसा, 'इनकी सभ्यता में प्रतिज्ञाओं का मूल्य नहीं।' छल प्रपंच

द्वारा स्वयं को और अपने देश-सरकार को सुखी बनाना, यही इनका उद्देश्य और कर्तव्य है। बेहयाई का जामा ये हर समय पहने रहते हैं। बिल्ली के समय बिल्ली और बाघ के अवसर पर बाघ। डर तो अब हम लोगों को है रानी जी जो बाघ बनकर बिल्ली बनना चाहते नहीं और बिल्ली बनने पर बाघ के लिये प्रयत्न नहीं करते। और यदि किसी ने साहस करके प्रयत्न करने की ठानी भी तो आपस की अनेकता और दूसरे को अपने से बढ़ते हुये देखने की ईर्षा और स्पर्द्धा—आपस में जुझा कर समाप्त कर देती है। यही कारण है कि इन बिदेशियों ने थोड़े काल में, अपनी धूर्तता और एकता के बल पर इतने बड़े देश में आतंक फैला रखा है। इस आतंक का परिणाम भविष्य में क्या होगा—गणपति ही समझें।' नाना के हृदय में एक अज्ञात व्यथा की सिहरन उठकर शान्त हो गई।

'उनके इस प्रकार के कार्यों से उन्हें आर्थिक लाभ भले ही हो किन्तु यश पर लगा हुआ काला धब्बा कौन मेट सकेगा। आने वाली उसकी या संसार की पीढ़ियाँ धिक्कारेंगी। उन्हें हेय की दृष्टि से देखेंगी। यश की अमरता बिलीन हो सकती है परन्तु कुयश मिटाये नहीं मिटता।'

'यह कहना आपका ठीक है पर अपनी राष्ट्रीयता का ध्यान तो रखना ही पड़ता है। देश पर आये हुये संकट के समय, आपसी भेद भाव, ईर्षा-द्वेष, ऊँच-नीच और भले-बुरे का परित्याग कर, कन्धे से कन्धा मिलाकर उनका सामना करना तथा देश और उसकी सभ्यता को सुरक्षित रखना—यह भी तो हमारा धर्म है। अँग्रेज बुरे हैं, कपटी हैं, नीयत के कच्चे हैं, धूर्त हैं किन्तु इन अवगुणों के अतिरिक्त उनमें एक महान गुण भी तो है, और वह है अपने देश को, अपने देशवासियों को अधिक से अधिक सुखी और शक्तिशाली बनाना। इस महान गुण ने उनके सारे अवगुणों को ढक लिया है। उनकी आने वाली सन्तानें, उनकी सारी बुराइयों के बावजूद, उनके निन्दनीय कार्यों की टीकाटिप्पणी सुनते हुये भी, उनका नाम गर्व से लेंगी। और उन्हें लेना भी चाहिये। वे जिन कठिनाइयों और कुर्बानियों के द्वारा अपने राष्ट्र को

समृद्ध बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं--सराहनीय है। यदि हमारा हिन्दुस्तान इसपर भी न सचेत हुआ तो अन्तिम परिणाम जो होगा, वह साफ है।'

गंगा बाई का चेहरा कुछ उतर गया। क्षण भर में एक नवीन कल्पना उसके मस्तिष्क में चक्कर लगा गई। उसका पुत्र जिसके भविष्य की उज्ज्वलता को सोच कर उसे आनन्द और संतोष हो रहा था--आज यह जानकर कि वह अधिक अन्धकार पूर्ण भी है, उसके अन्तर में कचोट पैदा होने लगी। उसे इस बत्तीस-चौंतीस वर्ष के पुरुष की विलक्षणता पर विश्वास था। उसकी दूरदर्शिता पर विश्वास था। वह जो कुछ भी कहता है, सही कहता है। वह परिस्थितियों को सही आंकता है।

गंगा ने सिर झुकाये हुये कहा 'नाना साहब, मुझसे भी अधिक दुख उठाने वाली हतभागिनी इस संसार में और कहीं होगी? ईश्वर ने शायद मुझे दुख झेलने के लिये उत्पन्न ही किया था। जीवन में दुख के अतिरिक्त सुखों को देखा ही नहीं। और जीवन भी कितना बड़ा जिसका क्षण पलक तक जोड़ा जा सके। मुझे देखिये और मेरी अवस्था को देखिये। आप तो जानते हैं कि आन्तरिक सुख होने पर बाह्यान्तर क्लेशों और आपदाओं को सहने या सामना करने में पीड़ा नहीं होती। उनको भी झेलने में एक सुख का ही अनुभव होता है। लेकिन......।'

'वह अपने', नाना ने बीच में टोका। वह गंगा बाई के भावों को समझ रहा था, 'वश की वस्तु नहीं है न रानी जी। ईश्वरी इच्छाओं को बदला नहीं जा सकता। वह जो कुछ करता है सही करता है। केवल इसी एक विश्वास पर अपने आत्मा को संतोष देकर, जीवन को मंगलमय बनाने का प्रयत्न करना अधिक हितकर और समझदारी होगी।'

'इसे मैं नाहीं कब करती हूँ। वह जो कुछ करता है सही करता है और सत्य करता है परन्तु यह तो नहीं कहता कि जितना वह करता है केवल उतना ही समझा जाय और हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाया जाय। आगे के लिये प्रयत्नशील होना तथा भूत, वर्तमान और भविष्य को भली-भाँति सोचते हुये,

अधिक से अधिक वातावरण को अपने अनुकूल बनाने का प्रयास करना—यह भी तो हमारा धर्म है।'

'अवश्य। केवल इसी एक मंत्र की परिभाषा पर तो गीता ऐसी महान पुस्तक का जन्म हुआ था। अपने कर्म से विमुख न होना—जीवन का वास्तविक उद्देश्य है। परन्तु साथ ही कुछ और बातों का भी ध्यान रखना अनिवार्य होता है। सामाजिक प्रतिबन्धों का उल्लंघन अवैध है। उनके प्रतिकूल चलने से कर्म अकर्म हो जाते हैं। समाज में इसका बड़ा ध्यान रखना पड़ता है।'

गंगा मुसकराई। उसकी मुसकराहट में उपहास था, 'समाज की दुहाई तो देनी ही चाहिये। गढ़ा जो आपने है। वाहरे आपके सामाजिक बंधन और उसकी नीति। पुरुषों से कहे कि दस-दस शादियाँ करो और स्त्रियों से कहे कि पर पुरुष पर दृष्टि उठाना पाप है। जलती चिता में अपने को जला कर भस्म कर देना, मोक्ष को प्राप्त होना है। क्या यह अन्याय नहीं? क्या स्त्रियों के पास हृदय नहीं होता या इच्छायें और भावनायें नहीं होती? मेरी अवस्था में आइये नाना साहब और फिर मेरी परिस्थितियों और मानसिक उथल-पुथल को सोचिये। आप इसे बर्दाश्त न कर सकेंगे। ये आपके सामाजिक बन्धन क्या उल्लंघन योग्य नहीं है? क्या इसे भी ईश्वरी प्रकोप समझा जाय?' गंगा बाई का व्यथित हृदय आज अपनी उबाल को न रोक सका। जिस आशा के सहारे उसका जीवन खिंच रहा था। जिस की उन्नति और सुखी जीवन की कल्पना करके वह सदैव अपने को भुलाने और प्रफुल्लित रहने का संतोष किया करती थी; आज यह सुनकर कि उसके भविष्य में भी काले मेघों का जमाव प्रारम्भ होने लगा है – वह हताश सी हो गई। उसका हृदय टूट गया और न कहने वाली बातों को भी उसे इधर-उधर घुमा कर कहने के लिये विवश होना पड़ा।

नाना का सिर नीचा था। उसने जो सोचा था, गंगाबाई ने उसे ही कह

डाला। उसके पास कोई उत्तर नहीं था पर गंगाबाई के विचारों का समर्थन भी नहीं किया जा सकता था। लोक-मर्यादा के विरुद्ध चलने का समय नहीं था। उसने चतुरता से काम लिया। वह बोला 'आपका कहना बहुत सही है। सामाजिक नियमों का यह ढाँचा एकतरफा और निन्दनीय है। समाज के लिए इस प्रकार के समाजिक नियम, उसकी उन्नति में बाधक ही नहीं वरन् घातक सिद्ध होते हैं। और मैं तो समझता हूँ आने वाले युगों में, सामाजिक क्रान्ति का एक ऐसा रूप आयेगा जिसमें सम्पूर्ण सामाजिक रूढ़ियाँ स्वयं विलीन हो जायेंगी। क्या आप समझती हैं आप के विचारों की प्रतिक्रियायें यों ही शून्य में अन्तर्ध्यान हो जायेंगी। ये कभी न कभी अपना प्रभाव अवश्य डालेंगी लेकिन समयानुसार।' नाना गंगाबाई के जलते हृदय पर एक बार भी पानी डालना नहीं चाह रहा था। इससे फफोले पड़ जाने का अन्देशा था। उसने गंगाबाई की ओर देखा 'परन्तु विशेषकर हमारे आपके द्वारा इस प्रकार का कोई कार्य आरम्भ कर सामाजिक व्यवस्था में उथल-पुथल मचा देना ही होगा; जिसका परिणाम दुखदायी तो होगा ही, साम्राज्य के हित में भी घातक सिद्ध होगा। इस ....!'

'नहीं, नहीं, मेरे कहने का यह अर्थ नहीं था। मैंने तो केवल आप को बताया कि सुख की कल्पना और उसकी प्राप्ति की चाह, लगभग सभी के हृदय में समान रूप से उठती बैठती रहती है—चाहे वह पुरुष हो या स्त्री। रही समाज के स्वामियों की बात, उसे भी आप ही लोग ठीक कर सकेंगे। सर्वाधिकार सुरक्षित जो ठहरा।' गंगाबाई ने हँसते हुए इस विषय को अब समाप्त कर देना चाहा।

नाना भी हँसने लगा। बोला 'चलिये, सर्वाधिकार स्वीकार तो किया। खैर। मैंने कुछ नवीन पुस्तकें काशी से मंगवाई हैं यदि कहें तो भिजवा दूँ। मैं अवसर निकाल कर बाद में थोड़ा थोड़ा पढ़ता रहूँगा। अष्टावक्र की 'अष्टावक्र संहिता' और कुमारिल भट्ट की 'तंत्रवार्त्तिक', दोनों बड़े सुन्दर-ग्रन्थ

हैं · विदेह जनक के सभामंडप में, उनका अष्टावक्र से तर्क तथा उत्तर-प्रत्युत्तर बड़े ही सुन्दर रूप में हैं। और 'तंत्रवार्त्तिक' शंकर स्वामी के भाष्य की टीका है। आप इन दोनों पुस्तकों को समाप्त कर लें फिर विख्यात गणितज्ञ ज्योतिर्वेत्ता भास्कराचार्य की 'लीलावती' दूँगा। सिद्धान्त शिरोमणी के अन्य भागों को भी मंगवाया है। भारतीय ज्योतिष का चमत्कार आप इन में देख सकेंगी।'

'भेज दीजियेगा। प्रशंसा मैंने भी बहुत सुन रखी है।'

नाना चला गया।

—:o:—

तेइस

घोड़े को द्वार के अन्दर करते हुए हरीपन्त घोड़े से उतर पड़ा। प्रतीक्षा करते हुये खिदमतगार ने बढ़कर घोड़े को पकड़ लिया। सेनापति दासी के साथ चला। अन्दर सहन में, शहतूत के नीचे, मखमली कालीन पर गावतकिये लगे थे। बगल में एक रेशमी सूती कालीन और बिछी थी परन्तु दासी ने इधर वाली मसनद पर ही बैठने को कहा।

सेनापति ने बैठते हुये पूछा 'तुम्हारी मालकिन ?'

पूजा पर हैं महाराज। अब उठ ही रही होंगी।'

'पूजा भी करती हैं ?' हरीपन्त के पूछने में व्यंग था।

'जी।' दासी ने समझते हुये भी साधारण रूप से उत्तर दिया।

'इतनी देर तक ! रात को जगती होंगी ?'

'जी नहीं। उनका रोज का नियम है। बहुत तड़के उठने पर भी उन्हें इतनी देर लग हो जाती है।'

'अच्छा।' कह कर फड़के चुप हो गया। दासी चली गई।

कुछ समय बैठने के उपरान्त भी जब वह नहीं आई तो सेनापति ने सामने से जाती हुई दासी को बुलाया; 'देखो, यदि देर हो तो जाऊँ। कब तक प्रतीक्षा करूँगा।' इस कथन में कहाँ तक यथार्थता थी इसे सेनापति का हृदय ही समझ रहा होगा।

दासी 'जी' कह कर मुड़ गई।

दासी ने अभी सहन भी न पार किया होगा कि सामने दालान की सीढ़ियों से वह रेशमी काषाय वस्त्र धारण किये, जिसके खुले बाल नितम्बों तक लटक रहे थे—उतर रही थी। दासी एक ओर हट गई। सेनापति की आंखें

शर्माने लगीं। इतना रूप और यह आकर्षण ! वह समीप आ गई। हरीपन्त ने उसे सरसरी दृष्टि से ऊपर से नीचे तक देखा।

होठों में हँसती हुई वह दूसरी कालीन पर, बालों को फैलाकर बैठ गई। वह धीरे से बोली 'आज शर्म लग रही है। डर रहे हो कि कहीं तुम्हारी नजर मुझे न लग जाय। क्यों ? कितनी देर हुए आये ? खबर करवा दी होती। मैं तो समझती थी तुम आओगे ही नहीं।'

सेनापति ने गर्दन उठाई। एक लम्बी साँस ली और तकियों के सहारे कुछ लेटते हुए बोला 'क्यों नहीं ? तभी ये आसन पहले से लगा दिये गये थे। कहने को और, करने को और। कल मोक्ष पर विश्वास नहीं था और सुना है नित्य इतने दिन चढ़े पूजा से छुट्टी नहीं मिलती।'

उसने कोई उत्तर नहीं दिया। दासी जलपान रखने लगी थी। 'जलपान कर लो तब तुम्हें बाग दिखाने ले चलूँ।' दस्तरखान फलों और मिठाइयों की तश्तरियों से भर गया।

'और तुम।' सेनापति ने पूछा।

'रमजान का महीना है। रोजा रहना पड़ता है।'

हरीपन्त ने आश्चर्य से देखा, 'पूजा और रोजा !' उसके मुँह से अनायास ही निकल गया।

'क्यों ? इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है ? दोनों ही तो शान्ति देते हैं', उसने ध्यान से हरीपन्त फड़के की ओर देखा 'अच्छा...तुम्हारा मतलब हिन्दू मुसलमान से है।'

'यही समझ लो। दोनों धर्मों के मानने की तुक नहीं समझ में आई।'

'धर्म के स्वरूप का मुझे ज्ञान नहीं है सेनापति और न कभी इसकी जानकारी के हेतु प्रयत्न ही किया। धर्म को कोई रूप देकर, उसके प्रतिपादित नियमों के दायरे में बँधकर चलना, मेरे विचार से ठीक नहीं। उसमें संकुचितता आ जाती है। सभी अच्छाइयाँ ग्राह्य हैं। इससे अधिक और क्या समझना है।'

'तब भिन्न भिन्न जातियों के बँटवारे और उनकी विभिन्नता का अनुमान कैसे लगता ?'

'इसी धार्मिक बटवारे ने तो इन्सानियत को खा डाला। अगर ये बँटवारे धार्मिक न होकर सिर्फ सामाजिक हुए होते तो 'वसुधैव कुटुम्बकम' का मूल-मंत्र आज भी चिरनवीन रहता। तब ईर्षा-द्वेष के क्षेत्र सीमित होते। उनके प्रकार दूसरे होते। काफिर शब्द का जन्म न हुआ होता और न उसके नाम पर होने वाले अत्याचार या व्यभिचार! खैर! छोड़ो इन खुराफात की बातों को। जल्दी से नाश्ता खत्म करलो तो चलूँ।'

'खत्म क्या करूँ। खत्म हो तब तो। खाते खाते मुँह तक थक गया!'

'और फिर भी खाते चले जा रहे हो।' वह मुसकराने लगी। पास में खड़ी दासी ने भी मुँह पर आंचल रख लिया। 'कर्म सैनिकों के और गुण दार्शनिकों के। उठो! चलें।'

पीछे मकान से लगा हुआ बायीं ओर एक बहुत बड़ा बाग है। बाग पत्थर की ऊँची दीवारों से घिरा है। अन्दर चिकनी-चिकनी पत्थरों से पतली-पतली सड़कें बनी हैं। स्थान-स्थान पर, वृक्षों और लताओं की झुरमुट में, सफेद पत्थरों की दो दो चार-चार कुर्सियाँ बना दी गई हैं। बाग के मध्य में, कुछ ऊँचाई पर, लाल पत्थरों का एक बड़ा हौद बना है जिसमें कमल लग रहे हैं पेड़ों की सघनता और उनकी छाया से वह स्थान अधिक रमणीक बन गया है। सीढ़ियों से ऊपर चढ़ने पर चार-चार संगमरमर की लम्बी-लम्बी कुर्सियाँ चारों ओर दिखाई देती हैं।

हौद के समीप पहुँचने पर हरीपन्त ने बैठने का संकेत किया। दोनों ऊपर चढ़कर बैठ गये। दोनों समीप होते हुए भी मौन थे। केवल बीच-बीच में आँखें बचाकर एक दूसरे को देख लेना उनका काम था। फड़के ने मौनता भंग की 'क्या सोच रही हो?'

'कुछ तो नहीं।' उसका उत्तर था।

'यह बाग किसने लगवाया था ? बहुत सुन्दर है। पूना में रहते हुए भी मैंने इसे कभी नहीं देखा।'

'मेरी माँ ने लगवाया था उसे इन सब चीजों का बड़ा शौक रहा।' वह हँसी 'सैनिकों के जीवन में इतनी कहाँ फुरसत। मारना और मरना। इसके अतिरिक्त उन्हें और कुछ आता भी है।'

'नहीं आता है तो सिखा दो। सीखने ही तो आया हूँ।'

'अभी तो आना शुरू किया है। इसी तरह आते रहो। सब सीख जाओगे। धीरे धीरे कोई चीज आती है।'

'लेकिन मेरे साथ कुछ रियायत हो जाती तो अच्छा रहता। फौजी आदमी ठहरा। आज हूँ, कल नहीं। थोड़ी सी शिक्षा की आवश्यकता है। जल्दी ही सीख कर पक्का हो जाऊँगा।' हरीपन्त मुसकरा रहा था।

उसने घूरा 'जितने भोले दिखाई देते हो उतने हो नहीं।'

सेनापति ठहाका मार कर हँस उठा। उसने कुछ आगे झुकते हुये पूछा 'मुझे तुम्हारा नाम नहीं मालूम।'

'नीरा।'

'ऊहूँ। इस रूप के लिये यह नाम उपयुक्त नहीं है।' उसने हौद की ओर संकेत किया 'कमलिनी।'

क्यों ? 'मैं अधिक सुन्दर हूं।'

'बहुत अधिक। जिसे वर्णन नहीं किया जा सकता।' फड़के की आँखों में जैसे खुमारी छा रही हो।

'किन्तु सुन्दरता तो एक छाया है सेनापति। आज है, कल नहीं। कमलिनी को तोड़ा कि वह मुरझाई।'

'फिर भी उसके पाने की इच्छा में आनन्द जो है। वह उससे ओतप्रोत है। ऐसे आनन्द से अपने को आनन्दित करके, उसे उस सीमा तक क्यों न पहुँचा दिया जाय जहाँ सुन्दरता का कोई अस्तित्व ही न रह जाय। सौन्दर्य आनन्दमय हो जाय। क्या यह न हो सकेगा नीरा ?' हरीपन्त के अन्तिम

वाक्य में एक व्यथा थी।

'क्यों न हो सकेगा। लेकिन मेरे साथ नहीं।'

'क्यों!' जैसे फड़के पर किसी ने सैकड़ों घड़े पानी छोड़ दिया हो।

'मैं वेश्या की पुत्री हूँ और स्वयं भी वेश्या हूँ। आनन्द का ज्ञान मुझसे छिन चुका है। केवल रूप को सँजोना और उसी के सहारे जीवित रहना, बस यही मेरे पास साधन है। मेरा आनन्द है अपने को आकर्षक और चिरनवीन बनाये रखना। इसी सम्मोहन ने तो तुम्हें भी पागल बना दिया है। वरना इस अपवित्र स्थान पर आने की क्या आवश्यकता पड़ती।'

हरीपन्त हँसा 'मुझे परख रही हो नीरा। परख लो। खरा चाहे उतना न बैठूँ परन्तु उसमें अपवित्रता नहीं दिखाई देगी। मुझसे अब छिपाने की आवश्यकता नहीं। मुझे कल सब पता लग चुका है।'

'आः हः। तुम तो बड़े आगे बढ़ गये।' उसने कनखियों से देखा, 'क्या पता लगा लिया है? कुछ मैं भी तो सुनूँ।'

'देखो नीरा! इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारे रूप के सम्मोहन ही ने मुझे यहाँ तक आने के लिये बाध्य किया। तुमने उस दिन माला पहिना कर मेरे मस्तिष्क में विचारों का बवंडर उठा दिया था। तुम्हें दुबारा देखने की इच्छा प्रबल हो उठी। रात भर नींद नहीं आई। चलें या न चलें इसी उधेड़बुन में रात बीत गई। दिन भर यही उलझन। अन्त में मैंने तुमसे मिलने का ही निश्चय किया। संध्या को आया। तुम्हें देखा। तुमसे बातें कीं लेकिन जिस जानकारी की खोज थी, उसके ठीक विपरीत मुझे मिला। मैं जब लौटा तो हताश था। मन में पछतावा था। एक कचोट थी। आने की इच्छा रखते हुये भी नहीं आने का संकल्प कर लिया। लौटते समय मुझे मौन देखकर मेरे खिदमतगार ने कारण पूछा। मैंने उसे इधर उधर की बतानी चाही। किन्तु उसे मेरी एक-एक परिस्थितियों की जानकारी थी। उसने तुम्हारी माँ और तुम्हारे विषय में बहुत सी बातें बतलाईं। परिणाम स्वरूप रात समाप्त हुई कि सबेरे......।'

'रहने दो। अधिक बातें गढ़ने से लाभ नहीं।' उसके नेत्रों के कोर गीले हो गये थे। वह उठ खड़ी हुई, चलो तुम्हें उधर का हिस्सा दिखा दूँ। इधर से उधर की छटा अधिक रमणीक है।'

नीरा आगे आगे चल रही थी।

'नीरा।'

'हूँ।' वह कुछ सोच रही थी।

'एक जानकारी थी।'

'पूछो।'

'तुमको मेरे ऊपर विश्वास नहीं।'

'क्यों?'

'वैसे ही मैंने पूछा।'

'केवल देखकर कह देना कि विश्वास हो गया इसे सत्यता की कसौटी पर उतना खरा नहीं उतारा जा सकता। विश्वास में सम्पर्क और घनिष्ठता दोनों ही अनिवार्य हैं।'

हरीपन्त निरुत्तर हो गया। नीरा दाहिनी ओर मुड़कर रास्ते से नीचे उतर गई।

'इधर कहाँ?'

'सामने वाली', उसने संकेत किया 'कुञ्ज में बैठूँगी।'

फड़के एक कुर्सी पर चुपचाप बैठ रहा।

नीरा ने सेनापति की ओर देखा 'मेरी बातों से शायद तुम्हें चोट पहुँची है।

'नहीं तो।' सेनापति के होठों की हिलन में गति की विभिन्नता थी।

इस बार उसने फड़के को ध्यान से देखा। वह सामने दूसरी ओर देख रहा था। उसके मत्थे पर हल्की रेखायें उभर आई थीं जो दुख और चिन्ता दोनों की द्योतक थी। 'अरे!' वह बोली 'मेरे तो ध्यान से उतर गया था। तुम्हें भोजन भी करना है। चलो चलो। दिन ढलने को आया। बातों ने...।'

'भूख मालूम पड़ती नहीं। जलपान ही अधिक हो गया था।'

'डरो नहीं। तुम्हारे लिये सब अलग प्रबन्ध कराया है। जात नहीं बिगड़ेगी। एक दिन मेरे पास भी बैठकर खा लो। देखना कितनी भूख बढ़ जाती है।' नीरा मुसकराती हुई खड़ी हो गई।

हरीपन्त को उठना पड़ा। रास्ते में नीरा भिन्न-भिन्न फूलों और वृक्षों के गुण, उनकी विशेषता तथा उन्हें कहाँ-कहाँ से मँगवाया गया था इत्यादि बातें बताती रही लेकिन सेनापति ने 'हाँ हूं' के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा।

सहन के बायीं ओर, सामने की तरफ, कई कमरे बने हैं। बीच के कमरे को भली प्रकार से धोकर साफ कर दिया गया था। अन्दर दो छोटी-छोटी चाँदी की चौकियाँ रख दी गई थीं। एक चौकी पर फड़के आकर बैठ गया और दूसरी पर नीरा।

हरीपन्त और लेने से 'नाहीं नाहीं' करता जाता और नीरा उसके थाल में परसवाती जाती। वह नीरा की ओर देखता। वह हँसती हुई कहती रहती 'खाते जाओ। अभी खाया ही क्या है।' सेनापति नीचा सिर कर खाने लगता। आदेशों की पूर्ति के अतिरिक्त और उसके पास कोई चारा नहीं था। अन्त में जब उसने पूर्णतया हाथ रोक लिया तो नीरा धीरे से बोली 'एक पूड़ी मेरे नाम की। बस। एक ले लो।' उसे लेना पड़ा।

कल रात जिस कमरे में हरीपन्त बैठा था, ठीक उसी के पहलो ओर वाले कमरे में, नीरा हरीपन्त को लेकर आई। यह मेरे पूजन का घर है। सोती भी इसी में हूं।' उसने कमरे में प्रवेश करते हुये कहा 'गर्मी के दिनों में यहाँ ठंढक अधिक रहती है।'

कक्ष में न किसी देवी देवताओं के चित्र थे, न किसी प्रकार की सजावट। केवल सामने की ओर दीवार से लगी हुई एक लम्बी चौकी थी जिसपर बने खानेदार लकड़ियों के अन्दर पुस्तकें थीं। नीरा को अध्ययन से अधिक रुचि है—हरीपन्त ने सोचा। दोनों फर्श पर बैठ गये। नीरा भी वहीं पास में बैठ गई। उसने दोनों बाहों को उठाकर, बाल समेटते हुये जूड़ा बाँध लिया।

सेनापति ने देखा। शरीर के एक एक उभार में सजीवता आ गई थी। हरीपन्त की आँखों ने शैतानी की। नीरा ने देखी अनदेखी कर दी। हरीपन्त समझ कर नासमझ बनने का प्रयास करने लगा।

'नीरा।' हरीपन्त ने पूछा 'तुम्हें ईश्वर पर बड़ी आस्था है?'

'बहुत अधिक।'

'और विश्वास भी?'

'हाँ।' उसने जिज्ञासा भरी दृष्टि से हरीपन्त की ओर देखा।

'मुझे आश्चर्य है। न 'सम्पर्क' न 'घनिष्ठता'। फिर भी।

नीरा सेनापति का इशारा समझ गई। 'मेरी ओर देखो।' वह बोली।

सेनापति ने देखा।

'ऊहूँ। आँखों को नहीं। उसके अन्दर। हृदय तक। वहाँ भी तुम्हारे लिये उतना ही विश्वास है। समझे?'

'मेरे भुलावे के लिये या मूर्ख बनाने के हेतु?'

वह कुछ गंभीर हो गई, 'सेनापति! तुम हिन्दू हो और हिन्दुओं में श्रेष्ठ ब्राह्मण। मैं मुसलमान और उसमें भी पतिता वेश्या। दोनों सीमाओं पर हैं। तुम राजा हो। मैं प्रजा। तुम्हारी हुकूमत है। तुम्हारे अपने नियम हैं और वैसा ही समाज। समाज से विरुद्ध जाने की तुममें सामर्थ्य नहीं। और यदि है भी तो मैं उसके लिये तैयार नहीं। उसमें मुझे दुख है। मैं अपने सुखों के लिये तुम्हें दुखी देखना नहीं चाहती। काश तुम मेरे स्थान पर होते और मैं तुम्हारे तो शायद मुझसे अधिक सुखी इस संसार में दूसरा न होता। तब मैं जान को हथेली पर लेकर सब कुछ कर सकती थी। उस समय तुम्हारा समाज या तुम्हारी सरकार, मुझे इस कार्य के लिये अधिक से अधिक हाथी के पैरों के नीचे दबवा देती। बस। मुझे वह मंजूर था। मुझे अपने प्रेम पर संतोष होता। लेकिन आज इसका पहलू दूसरा है।'

'किन्तु वह अधिक कल्याणकारी है नीरा। उसमें हमारा तुम्हारा विच्छेद तो न हो सकेगा। हम तुम समीप होंगे। जीवन में नवीनता होगी और स्वर्गिक

सुख। नीरा, मैं उस जीवन के लिये सब कुछ कर सकता हूँ। धन-दौलत, मान-मर्यादा, देश-समाज, पद-प्रतिष्ठा—सारी वस्तुयें एक तरफ और तुम एक तरफ। समाज के विरुद्ध, प्रेम के पथ पर मैं कितनी दूर जा सकता हूँ—इसे तुम देख सकोगी। मुमकिन है तुम्हें मेरी बातों पर विश्वास न हो। तुम समझती होगी मैं भावावेश में बकता चला जा रहा हूँ। मेरे ऊपर तुम्हारे रूप का प्रभाव हो सकता है और वैसा है भी किन्तु वह मेरी सत्यता पर आँच नहीं डाल सकता। रूप के जादू ने तुम्हारे प्रेम को आईना बना दिया है। तुम 'हाँ' करके मेरी परीक्षा कर सकती हो। बोलो... .....।' सेनापति ने उसका हाथ पकड़ लिया।

नीरा के शरीर में बिजली दौड़ गई। उसने शीघ्रता से हाथ छुड़ाते हुये कहा 'सेनापति! सेनापति!!' उसका चेहरा एकबारगी पीला पड़ गया। वह पीछे हट गई। 'मुझे छू कर अपने को कलुषित न करो। मैं वेश्या हूँ। महा पतिता। मेरे स्पर्श से तुम्हारी आत्मा भी अपवित्र हो जायेगी। मेरे पाप को मुझे ही ढोने दो।' वह रुकी। उसका सारा शरीर काँप रहा था। वह भर्राई हुई आवाज में फिर बोली 'मैं उस योग्य नहीं थी जितना तुमने मुझे दिया। उससे आगे लेने की सामर्थ्य नहीं। केवल उसी के सहारे अब जीवन काट लूँगी। मुझे और आगे खींच कर अपने को गड्ढे में न गिराओ सेनापति।' उसकी आँखें डबडबा आई थीं।

हरीपन्त फड़के किंकर्त्तव्य विमूढ़ सा देखता रह गया। समझी हुई समस्या ने नवीन रूप धारण कर लिया। प्राप्त या प्राप्ति की कल्पना—दोनों में कौन, कितना सुखकर है इसे वह इतनी जल्दी न सोच सका। असमंजस में पड़ा हुआ मन किसी मार्ग को ढूँढ़ने लगा। उसने अचानक उठते हुये कहा 'अब मैं जा रहा हूँ। अवसर निकाल कर फिर कभी आऊँगा।' उसने इन्सा-नियत बरती।

नीरा ने ऊपर, उसकी ओर देखा। वह धीरे से बोली 'अभी...।'

हरीपन्त कमरे के बाहर हो चुका था।

चौबीस

कलकत्ते से आये हुये कासिद की नाना को चिट्ठी थी। पत्र में लिखा था '........फ्रांस की सहायता से अमेरिका के उपनिवेशिकों ने अँग्रेजों को बड़ी भारी हार दी है। जनरल बरगेन को अपनी सम्पूर्ण सेना सहित आत्मसमर्पण करना पड़ा है। फ्रांस की शक्ति बढ़ रही है। उसने इंग्लिस्तान के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा कर दी है।.........यहाँ हेस्टिंग्स की नीति कुछ विचित्र जान पड़ रही है। सतर्कता की आवश्यकता है। सम्भव है अँग्रेज वहाँ की कमी को यहाँ पूरा करने की कोशिश करें।...... जैसा आप उचित समझें......।'

पत्र लिखने के बाद, कई दिनों तक नाना का चिंतित मस्तिष्क दूर-दूर की सोचता रहा परन्तु कहीं भी, किसी प्रकार का कोई रास्ता नहीं निकल रहा था—जैसा वह चाहता था। वह जो कुछ सोच रहा था, बहुत जरूरी था। परन्तु हो कैसे—यह भी तो प्रश्न था।

इसी बीच अचानक, एक दिन सेन्ट लूबिन नामक फ्रांसिसी अत्याधिक वाणिज्य सम्बन्धी सामानों के साथ च्यूल बन्दर पर उतरा। उसने अपने को फ्रांस के राजा का विश्वासपात्र इलची बताते हुये, पूना सरकार से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने के हेतु आज्ञा-पत्र की याचना की। अंधे के हाथ बटेर लग गई। नाना के दिमाग का खाका तैयार हो गया। अब उसे योजना बनाते कितनी देर।

फौरन परवाने जारी किये गये। वस्तुओं को ढोकर लाने के लिये गाड़ियाँ भेजी गईं। सारी सामग्रियों को बिना नगर शुल्क, नगर में आने दिया गया। एक सुन्दर सा हौदा कसा हुआ, सजासजाया हाथी तथा कुछ सैनिकों के साथ राज्य के उच्चपदाधिकारी उसे सम्मान पूर्वक लाने के लिये भोर घाट भेजे गये। पूना में नाना ने प्रबन्ध करा दिया था। नागरिकों ने बड़े तड़क-भड़क से

अतिथि का सत्कार किया। एक दिन पूना में रुकने के बाद, दूसरे दिन वह पुरन्दर लाया गया।

पुरन्दर दुर्ग के नीचे, खुले दरबार में तीन वर्षीय पेशवा ने सेन्ट लूबिना का स्वागत किया। पेशवा के सम्मान में लूबिन ने कुछ चीजें नजर कीं। तदुपरान्त नाना ने सखाराम बापू, मोरोबा फड़नवीस तथा राज्य के अन्य प्रमुख कर्मचारी और व्यक्तियों का परिचय कराया।

लूबिन ने धीरे से नाना से पूछा 'कुछ तस्वीरें अपने मुल्क से लाया हूँ। क्या देखने के लिये यहाँ लगवा दूँ?'

'क्यों नहीं। अवश्य लगवाइये।'

बड़े बड़े चित्र हौद से उतार कर दरबार में लगा दिये गये। पेशवा नारायणराव की हत्या का वीभत्स चित्रण देखकर लोगों का हृदय कराह उठा। महल में पीछा करते हुये गार्दियों से बचने के हेतु दौड़ता हुआ पेशवा; रघुनाथ राव से चिपट कर, जीवन रक्षार्थ चाचा की ओर करुणाभरी दृष्टि; पैर पकड़ कर खींचता हुआ तुलया और सुमेर सिंह की उठी हुई तलवार; स्वामी-भक्त नौकर की गिरे हुये मालिक से चिपटकर बचाने की चेष्टा; सुमेर सिंह की चलती हुई तलवार और बिखरे हुये शरीर के अंग तथा उनकी दुर्दशा इत्यादि—सभी कुछ चित्रकार ने सजीव कर दिया था। अधिकतर लोगों की आँखें डबडबा आईं थीं। कितने व्यक्तियों के नेत्रों से गिरते हुये अश्रुकण, रुकना ही नहीं चाहते थे। नाना की सोती हुई स्मृति को जैसे किसी ने खोद कर जगा दिया। वह तिलमिला उठा। पन्त प्रधान पेशवा माधवराव की सुपुर्दगी और उसे न सँभाल सकने की गैर जिम्मेदारी—रह रह कर उसके कलेजे में चुभने लगी। उसका हृदय ऐंठने लगा। वह उधर से हट कर दूसरी ओर चला आया। सरसरी दृष्टि से देखे हुये चित्रों को उसने दुबारा नहीं देखा।

प्रदर्शन का यह कार्यक्रम कई दिनों तक चलता रहा।

दूसरे दिन नाना फड़नवीस और सेन्ट लूबिन की गुप्त बैठक हुई। कहने

के लिये गुप्त किन्तु नाना ने उसे गुप्त-अगुप्त दोनों ही रखा था। जानकारों के लिये अगुप्त और न जानने वालों के लिये गुप्त। नाना का यह रहस्य केवल उसी तक सीमित था। निश्चित स्थान पर दोनों एकत्रित हुये। लूबिन पहले आ चुका था। नाना को आने में कुछ देर हुई। उसने क्षमा माँगी और बैठता हुआ बोला 'लूबिन साहब, इस देश की परिस्थिति बड़ी डाँवाडोल है। अँगेजों की चालाकी तथा सारे हिन्दुस्थान पर हुकूमत करने की लोलुपता ने उन्हें बेईमान बना दिया है। वे सब कुछ भूल चुके हैं। वे पेशवा साम्राज्य को हड़पने की फिक्र में हैं। इसलिये अब हमें अपनी और हिन्दुस्थान की रक्षा करनी ही होगी। शीघ्र से शीघ्र हम इन्हें देश से निकाल सकें—यही हमारे लिये हितकर होगा। मैं इस कार्य में आपसे कुछ मदद चाहूँगा। क्या मैं आपके सहयोग की आशा करूँ? इसे किसी भी भाँति पूरा करना है।'

लूबिन ने उत्तर दिया 'यहाँ के सारे हालात मुझे मालूम हो चुके हैं। इसमें जरा भी शक नहीं कि अँग्रेज हिन्दुस्थान को अपने कब्जे में करना चाहते हैं। उनकी ताकत धीरे धीरे, चाहे जैसे भी हो, बढ़ती जा रही है। आपके मुल्क को अब उनसे बहुत ज्यादा खतरा है। यहाँ आने के पहले ही मैंने अपने बादशाह सलामत से इन मसलों पर बातचीत की थी। वे आपकी सहायता के लिये तैयार हैं। जैसा उन्होंने मुझसे कहा है, वे पच्चीस सौ शिक्षित सैनिकों का एक जत्था देंगे जिनके पास हर तरह के हथियार होंगे। नव-सम्बन्धी तथा अन्य सामरिक सामग्रियाँ भी उनके पास होंगी।' वह रुका।

'और ये पच्चीस सौ सैनिक हमारे कितने सिपाहियों को पश्चिमी लड़ाई के ढाँचे पर तैयार कर सकेंगे?'

'अन्दाजन दस हजार। और इस तरह धीरे-धीरे आपकी सारी फौज वैसी ही बन जायेगी। वैसे खास जरूरत पड़ने पर मैं फ्रांस से और भी मदद मँगा सकूँगा। उम्मीद है इस तरह आप अपने इरादे को बहुत जल्द पूरा कर लेंगे।'

'यदि यह मित्रता और आपकी उदार भावनायें बनी रहीं तब तो काम

अवश्यमेव हो जाना चाहिये। आपके सरकार की कृतज्ञता और आपकी निस्वार्थ सेवाओं को हमारा देश कभी नहीं भूलेगा लूबिन साहब।'

'खैर', लूबिन कुछ गर्व सहित बोला 'मैंने किया ही क्या है। मुसीबत के समय एक दूसरे की मदद करना सबका फर्ज होता है।' वह अब अपने मतलब पर आया 'मैं सोचता था यदि च्यूल का किला मुझे मिल जाता तो मेरे आपके लिये काफी सहूलियतें हो जातीं। व्यापारिक उन्नति के साथ साथ दोस्ती का रिश्ता भी मजबूत हो जाता। इसे आप सोच लें। अभी खास जल्दी नहीं है।

नाना ने आश्वासन के रूप में कहा 'ठीक है। यह प्रस्ताव आपका अनुचित नहीं। ताली दोनों हाथों से बजती है। मैं अपने अन्य मंत्रियों से सलाह करूँगा। आप निश्चिन्त रहें। मुझे आशा है दूसरे भी इसका समर्थन ही करेंगे। दुर्ग आपके हवाले करने का मैं शीघ्र प्रयत्न करूँगा।'

'धन्यवाद।' और दोनों उठ खड़े हुये।

'और', नाना बोला 'आपके रहने का सारा प्रबन्ध पूना में करा दिया है। फिर कोई तकलीफ हो तो मुझे सूचित कीजियेगा। इस बैठक की सूचना अपने बादशाह सलामत को भिजवा दें ताकि उस जत्थे के आने में विलम्ब न हो।'

'इसे मैं कल कर दूँगा।'

'एक बात और', नाना ने लूबिन के कानों के पास अपना मुँह सटाते हुये कहा 'बार बार हमारे आपके मिलते रहने से दूसरों पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ेगा। समझे आप?'

लूबिन ने नाना की ओर देखा। उसकी आँखें बता रही थीं कि यह व्यक्ति उससे कहीं अधिक चतुर और सतर्क है। वह सिर हिलाते हुये मुस-कराने लगा।

दोनों ने हाथ मिलाया और दो ओर हो गये।

नाना जब ऊपर पहुँचा तो बहुत हँस रहा था। लक्ष्मी ने देखा पर कारण

का अनुमान न लगा सकी। बैठ जाने पर पूछा 'लूबिन महाशय से आशा से अधिक की प्राप्ति हो गई क्या?'

नाना फिर हँसने लगा। 'उसके पास देने को कुछ हो भी।'

'क्यों? फ्रांस ....'

नाना ने लक्ष्मी का हाथ पकड़ कर अपने समीप बैठा लिया और बोला 'ये सब राजनीति की चालें हैं। यह आपकी पढ़ाई नहीं कि पढ़कर जिसे चाहा तर्क में उड़ा फेंका। इसमें पढ़कर फिर उतनी ही मेहनत से दूसरों को पढ़ाना पड़ता है। तब तर्क और कुतर्क दोनों के सहारे विरोधी को पछाड़ने का प्रयत्न किया जाता है।'

'बात तो बताओ। पहेली बाद में बुझाते रहना।' लक्ष्मी का उत्सुक मुख-मंडल बड़ा लुभावना हो गया था।

नाना ने लक्ष्मी को दोनों बाहों से दबा कर उसके कपोलों को चूम लिया। देखता हूँ राजनीति से बड़ी दिलचस्पी होती जा रही है। मुझे बचाये रखियेगा वरना कहीं का न हो पाऊँगा।' उसने धीरे से कहा 'लूबिन न राजदूत हैं न फ्रांस के राजा का कोई आदमी।'

'क्या?' लक्ष्मी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

'हाँ। यही है। मुझे इसकी सूचना, उसके च्यूल पर उतरते ही मिल गई थी।'

'तब आपकी यह गुप्त बैठक और उसके सम्मानार्थ ये सारी तैय्यारियाँ...'

नाना ने लक्ष्मी के मुँह पर उँगली रख दी। 'इसमें रहस्य है लक्ष्मी। यह जानकारी मेरे अतिरिक्त दूसरे को नहीं है। रघुनाथराव के बहाने, उसे साथ लेकर, शीघ्र ही अँग्रेज युद्ध की घोषणा करने वाले हैं। मुझे इसकी सूचना मिल चुकी है। वह समय बहुत समीप है। अपने साम्राज्य की दशा कुछ सुधरी अवश्य है किन्तु पूर्णतः नहीं। उसे कुछ समय की आवश्यकता है। लूबिन के प्रति यह सम्मान और स्वागत इस आवश्यकता की पूर्ति कर देगा। अँग्रेजों को किसी भी तरीके से, मुझे कुछ समय के लिये रोकना ही था,

वह गणपति की माया से बड़े अच्छे ढंग से हो गया। अब गोरों को सोचना है और मुझे तैयारी करना। भविष्य पक्ष मेरी ओर होगा। आशा ऐसी ही करता हूँ।'

लक्ष्मी, नाना की ओर देखती रह गई।

'आज खाना खिलाने की तबीयत नहीं है?' नाना हँसा।

लक्ष्मी उठने लगी। नाना ने उसे फिर दबा लिया 'इसके बाद।' उसके हँसते ओठ, पतले ओठों में खो गये।

पच्चीस

गवर्नर जनरल हेस्टिंग्स बड़ा चिन्तित था। अमेरिका की हार फ्रांस की युद्ध घोषणा, यहाँ भारत में मराठों को दबाने में असफलता—ये सारे हालात भविष्य को अंधकारमय बना रहे थे। फिर भी वह हाथ पर हाथ रखकर नहीं बैठना चाहता था। अमेरिका के खोये हुये उपनिवेशों की पूर्ति, अब वह मराठा साम्राज्य को, रघुनाथराव के द्वारा, काट छाँट कर पूरा कर लेना चाहता था। परन्तु अचानक लूबिन का आना, पेशवा और फ्रांस की मित्रता तथा नाना और लूबिन की गुप्त बैठक की सूचना ने उसके सारे मनसूबों पर कुठाराघात कर दिया। वह अत्यधिक चिन्तित हो उठा। बम्बई सरकार को नित्य नये नये आदेश और सुझाव भेजे जाने लगे। प्रथम उसे दोनों की मित्रता का अन्त कर देना था। दूध में पड़ी हुई मक्खी को निकाल फेंकना अत्यन्त आवश्यक था।

कुछ विशेष प्रकार के आदेश बम्बई होते हुये पूना स्थित मास्टिन के पास आये। रात आधी से अधिक जा चुकी थी। पूना नगरी सो रही थी। लेकिन उस धूर्त मास्टिन को कहाँ नींद। उसकी नींद हराम हो चुकी थी। वह आये हुये आदेशों को कार्यान्वित करके सफल बनाना चाहता था। उसे आश्चर्य था कि उसने जिस कार्य में हाथ लगाया उसे पूरा तो किया किन्तु परिणाम सभी के प्रतिकूल निकले। इसलिये इस बार वह अधिक मजबूती से कदम उठायेगा। इस बार वह अपने बीड़ा उठाये काम की अवश्यमेव पूर्ति करेगा। यह उसका दृढ़ निश्चय है कि प्रयत्नशील होकर अब भी वह सफलता की कामना कर सकता है। अवसर को ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं उसे जन्म देने की बलिहारी है। रात की नीरवता चहचहाहट में परिवर्तित होने को आई। मास्टिन को आँखें झपने लगीं। वह सो गया।

तीसरे दिन वह पुरन्दर में मोरोबा फड़नवीस से बातें कर रहा था। 'तस्वीरें तो वाकई बहुत अच्छी बनी हैं। इनमें जान आ गई है। लोगों ने जितनी तारीफ की थी, उससे कहीं अधिक अच्छी है। मेरा आना ठीक ही रहा।'

'तो क्या केवल चित्रों को देखने के हेतु ही आना हुआ था ?'

'नहीं। मिलना आप लोगों से भी था। सोचा, यह भी देखता चलूँगा आप से भेंट भी इधर नहीं हो पाई थी।' वह गर्दन खुजलाता हुआ रुका 'रघुनाथराव को हमारी सरकार आपके हाथों......।'

'अभी मारिटन पूरा कह भी नहीं पाया था कि मोरोबा के मुँह से निकल पड़ा 'क्यों! .....अच्छा......हम लोगों की सुपुर्दगी में', मोरोबा ने 'क्यों' के भावार्थ को छिपाना चाहा, 'ठीक है। यह होना ही चाहिये वरना हमारे आपके बीच का मनमुटाव बढ़ता ही जायेगा।'

मारिटन को मिली हुई जिस खबर की पुष्टि करनी थी, वह हो गई। उसे प्रसन्नता थी। उसे संतोष था। वह अपने इस प्रयास में अब सफल तो होगा ही साथ साथ परिणाम भी अनुकूल और चिरस्थाई रहेगा। 'जी हाँ', वह बोला 'अगर रघुनाथराव साहब को हमारी सरकार ने पहले ही आपके हवाले कर दिया होता तो फ्रांस की यह मित्रता और हम लोगों के प्रति वैमनस्यता की भावना क्यों उठती ! मैंने अपने पदाधिकारियों को इस प्रकार की सलाह बहुत पहले दी थी लेकिन उन लोगों का कहना था कि शरण में आये हुये मेहमान को किस प्रकार दूसरों के हवाले किया जाय। मैं चुप हो रहा।' उसने मोरोबा को निहारा। 'बात माकूल थी। शरण में आये हुये की रक्षा करना प्रत्येक का कर्तव्य होता है। यह एक बड़ी चीज है। और आप लोगों की सभ्यता ने तो इसे अपनी मंजिल से भी आगे पहुँचा दिया है। हम लोगों में तब भी कायरता है।'

'हाँ। इस शान की रक्षार्थ तो हम सब कुछ कर सकते हैं। यह हमारी सभ्यता ही नहीं वरन् हम इसे धर्म समझते है। हमारे पूर्वजोंने इसके

हेतु क्या नहीं किया ? समझदारों के लिये बड़ी चीज है बशर्ते वह समझ सके।'

'इतना ऊँचा आदर्श हमारे समाज में आप हर कहीं तो न पा सकेंगे लेकिन फिर भी, कहीं कहीं लोगों में ठीक आप जैसा ही दिखाई देगा। मैं भी इसमें काफी सहमत हूँ लेकिन मजबूरी जो न करा दे। समझते हुये ना समझी का काम करना पड़ता है। इसी ख्याल से परसों मैंने आपकी सरकार, खासकर नाना साहब की बदलती हुई भावनाओं को देखकर—एक सूचना भेजकर फौरन ही रघुनाथराव की सुपुर्दगी के लिये अपना विचार प्रकट किया है।'

मोरोबा चुप रहा।

मास्टिन भूमिका बाँधता हुआ दूसरे पहलू पर आया, 'पेशवा की हत्या के बाद आप लोगों ने अपनी सरकार को खूब सँभाला। इसकी तारीफ तो हर कहीं होती है। आप लोगों ने जितनी मेहनत की है, उसे कहा नहीं जा सकता। कठिनाइयों पर कठिनाइयाँ आती गईं फिर भी आपके साहस ने आपका साथ न छोड़ा। संधि होने के पहले, जब कभी बम्बई में, आप लोगों के ऊपर बातें होती थीं तो सच मानिये, मैं आपके मुँह पर आपकी तारीफ नहीं कर रहा हूँ जितनी इज्जत सखाराम बापू साहब और आपके लिये उनके दिलों में है, उतनी दूसरे के लिये नहीं। वैसे नाना साहब ने मामूली काम नहीं किये हैं। काम के सिवा उन्होंने और कुछ जाना ही नहीं। रात दिन एक कर रखा था लेकिन दलील में सबसे बड़ी चीज जो वे रखते थे - वह था आपका निस्वार्थ। आपने सब कुछ किया लेकिन उसके लाभ को नहीं चाहा।'

मोरोबा मुसकराया, 'मास्टिन साहब दुनिया में हर तरह के लोग हैं। सब एक समान हो जायँ तो दुनियाँ काहे की। भले-बुरे दोनों होते हैं। जो कर्तव्य है, उसे पूरा करना हमारा धर्म था—हमने पूरा किया।

मास्टिन हँसने लगा। 'यह भी कहना आपका सही है। फिर भी दूसरों को इसका ध्यान तो रखना ही चाहिये। आपके न चाहने का अर्थ यह तो न हुआ कि दूसरा खुद सब हड़प जाय। माफ कीजियेगा। आपके घरेलू मामलों से

मुझे क्या मतलब लेकिन बात आने पर, सत्य कहते रुका भी नहीं जाता। आप इसे बुरा न मानियेगा।'

'नहीं, नहीं। बुरा मानने की क्या बात। सच को सच कहना ही चाहिये। यह उचित है।'

'नहीं, यह सोचने की चीज है कि', मास्टिन कुछ क्रोध मिश्रित बनावटी गंभीरता में कह रहा था 'मेहनत तो की सब लोगों ने। मुसीबतों को भी झेला सभी लोगों ने किन्तु जब सुख का समय आया तो एक सब को पीछे दबा कर, स्वयं आगे बढ़ गया। क्या आप नहीं बढ़ सकते थे या बापू साहब? शायद आप दोनों की जितनी इज्जत समाज में है उतनी दूसरों की नहीं। मगर आप लोग स्वार्थी नहीं हैं। मतलब, आपसे कोसों दूर है। यह है आपका बड़प्पन। खैर। राज-काज में ये सब चला ही करते हैं। वह रुका 'अच्छा, अब आज्ञा दीजिये फिर अवसर मिला तो आऊँगा। या जब कभी आप पूना पधारें तो भूले भटके मेरे यहाँ भी आने की तकलीफ करें।'

मोरोबा उठ खड़ा हुआ, 'क्यों नहीं। जरूर।'

मास्टिन का घोड़ा भी जैसे आज अपने मालिक की प्रसन्नता को भाँप रहा था। वह पूना के पथ पर उड़ने लगा।

मास्टिन का जाल फिर बिछने लगा। इस बार वह उस थूनी को ही गिरा देना चाहता था जिसके सहारे साम्राज्य की छानी टिकी थी। न रहे बाँस न बजे बाँसुरी। हमेशा के लिये झंझट ही पार हो जाय। उसने एक दो बार और मोरोबा से भैंट की किन्तु जानबूझ कर राजनीति या राज्य सम्बन्धी विषयों पर किसी प्रकार की कोई चर्चा नहीं चलाई। वह अधिकतर मोरोबा की प्रकृति तथा उसके मनोभावों को समीप से समझने का प्रयत्न करता रहा। उसकी तीक्ष्ण बुद्धि तर्क के खराद पर चढ़ाये बिना किसी कार्य को शीघ्रता में नहीं कर देना चाहती थी। चारा चुगा-चुगा कर चिड़िया फँसाने में संशय की गुंजाइश नहीं रहती—वैसे अपनी हानि तो प्रथम होती ही है। खैर। मास्टिन के साथ ऐसी भी बात नहीं थी। चारा भी, चुगने वाले का था।

आज मोरोबा के पूना आने की चर्चा है। कारण क्या है—इसे नहीं कहा जा सकता। कुछ न कुछ होगा ही। परन्तु उनके अन्य कार्य-क्रमों में एक कार्य-क्रम मास्टिन से भेंट भी है। उसे पहले से सूचना दे दी गई है। उसने स्वागतार्थ अच्छा प्रबन्ध किया था—विशेषत्वद्योतक छाप अंकित के हेतु। मोरोबा आया। अन्य उपक्रमणों के उपरान्त मास्टिन उसे अपने कमरे में ले गया। मोरोबा ने बैठते ही पूछा 'बम्बई से रघुनाथराव साहब की सुपुर्दगी का कोई समाचार आया?'

'आया तो नहीं। लेकिन आपसे क्या छिपाना है, कल अचानक मेरे दिमाग में एक बात और आई। मान लीजिये, अगर रघुनाथराव की सुपुर्दगी के बाद भी आपकी सरकार फ्रांस से दोस्ती का रिश्ता रखती है तो? फिर हम कहीं के न हुये। कर्तव्य भी गया, कायर भी बने और जिसके लिये किया वह भी न हुआ। यदि आपकी या बापू साहब की बात होती तब तो चिन्ता न थी लेकिन नाना साहब के बारे में कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता। इसलिये कल ही एक और कासिद को बम्बई भेज दिया है और खत में अपनी राय लिखते हुये यह जाहिर कर दिया कि नाना साहब से हर तरह का आश्वासन लेने के उपरान्त ही, रघुनाथराव साहब को उनके हाथों में सौंपा जाय।' वह कुछ सोचता हुआ फिर बोला 'लेकिन इतना तो जरूर है कि आपके विचारों के विरुद्ध या बिना आप लोगों की सलाह के नाना साहब कुछ न कर सकेंगे पर आप साहबान शायद उनकी 'ना' या 'हाँ' की खिलाफत करने की हिम्मत न कर सकें।

'नहीं तो। 'यह किसने कह दिया आपसे', मोरोबा हलकी हँसी के साथ बोला परन्तु उस हँसी का आन्तरिक रूप क्या था यह मास्टिन से छिपा न रहा। 'आप देखते नहीं', मोरोबा ने आगे कहा 'सारे आदेशों और आज्ञाओं पर हम तीनों ही के दस्तखत होते हैं। बिना हम लोगों की सलाह के नाना कुछ भी नहीं कर सकते।'

'हाँ हाँ, इसमें क्या शक। आप दोनों महाशयों के अड़ जाने पर क्या

मजाल कि नाना साहब कुछ ऊँचा नीचा कर बैठें लेकिन आप लोगों से यह जो होता नहीं। आप ठहरे शान्ति प्रिय मनुष्य और यही हालत बापू साहब की है। आप दोनों साहबों को न धन की लालच है न यश की। दूसरे सुखी रहें—बस यही आप चाहते हैं। और यही वजह है कि दुनियादारी आप लोगों से बड़ी दूर है। नाना साहब की शक्ति कितनी तेजी और बेढंगे तरीके से बढ़ रही है इसे आप समझते हुये भी ध्यान नहीं देते। थोड़े ही दिनों में आप और उनमें क्या अन्तर आ जायगा, आप इसे सोचें तो मालूम हो। जनता किसे पुकार रही है। किसे साम्राज्य का सर्वेसर्वा समझ रही है। इसे जरा जाँचिये।' वह मोरोबा की प्रशंसा भी करता जा रहा था और दूसरी ओर नाना को उनसे बड़ा भी बनाता जाता था।

मोरोबा ने देखा। उसे प्रतीत हुआ—मास्टिन के चेहरे पर, उसके प्रति सहृदयता और सच्ची मित्रता की छाप झलक रही थी। फिर भी उसने अपने को सँभाला। कहीं धोखा न हो जाय—अभी भय था। अब वह मास्टिन को समझने का प्रयत्न करने लगा। उसने रुक-रुक कर कहना आरम्भ किया 'मास्टिन साहब, आपके कथन में अधिक सच्चाई है। लेकिन बापू और नाना का कोई मुकाबिला नहीं। थोड़ी देर के लिये, मैं पछाड़ा भी जा सकता हूँ किन्तु बापू के सामने, नाना कल के लड़के हैं। उनके जीते जी नाना की तूती बोल उठे, ऐसी बात नहीं। इसे आप सत्य मानें।'

मास्टिन हँसा, 'मैंने कहा न कि आप दुनियादारी में कच्चे हैं। वजह है आपकी सचाई। अजी साहब आप बापू को लिये फिरते हैं, अभी तो आपकी ही प्रतिष्ठा इतनी अधिक है कि आप जो भी करना चाहें आसानी से कर सकते हैं। अड़चनें आयेंगी लेकिन आपकी ताकत से पिस सकती हैं। मगर यह कब तक? आपने सुना नहीं है; पुराने लोगों की कहावत है कि दुश्मनों को·· मेरा कहने का मतलब जो चीज अपने रास्ते में रुकावट डालती हो, चाहे वह छोटी और शक्तिहीन ही क्यों न हो—उसे आगे पनपने का अवसर न देकर फौरन ही कुचल डालना चाहिये यह बड़ी पुरानी और मोटी मसल है।' मास्टिन को

अब अधिक चाहने की आवश्यकता नहीं थी। वह धीरे धीरे अपने मतलब पर आ रहा था। वह माथा सिकोड़ता हुआ फिर बोला 'आपको शायद मेरी बातें बुरी लगे लेकिन क्या बतावें समझते हुये भी अपने को नहीं रोक पाता हूँ। आपकी सच्चाई और ईमानदारी का अनुचित लाभ दूसरे उठावें यह मुझसे सहा नहीं जा रहा है। भाई के साथ भाई का छल। घोर निन्दनीय है। लेकिन क्या कहा जाय। करने वाले करने से चूकते नहीं। मोरोबा साहब, ज्यादा कहना तो बेकार है लेकिन आपसे कुछ अधिक अनुभवी होने के कारण इतना तो जरूर कहूँगा कि आपको अधिक होशियारी बरतने की जरूरत है।' मार्स्टिन अपने उतरे हुये चेहरे को अधिक उतारता हुआ, सिर के ऊपर अपने दोनों हाथों को नीचे ऊपर रख कर कुर्सी के सहारे पीछे उठँग गया।

मोरोबा ने मार्स्टिन को ध्यान से देखा। वह भी सिर नीचा करके कुछ सोचने लगा। मार्स्टिन ने कनखियों से चिन्तित मोरोबा की ओर ताका। उसकी बाहें खिल गई। उसने थोड़ी देर और गंभीरता बनाये रखी। तदुपरान्त सीधा बैठता हुआ बोला 'मेरी बातें आपको बुरी तो नहीं लगीं?'

'अगर बुरी भी लगे तो क्या हुआ। है तो सच्ची।' मोरोबा भी धीरे धीरे अपने रास्ते पर आने लगा था।

'आप सच मानिये। आपके और बापू साहब के चरित्र से मैं क्या मेरी सरकार भी इतनी प्रभावित है कि मैं कह नहीं सकता। और यही वजह है कि हम सब आप दोनों साहबों की भलाई के अधिक ख्वादार हैं। वैसे पूना की सरकार चाहे आपके हाथों में हो या नाना साहब के, हमारे लिये दोनों ही समान हैं लेकिन जो खटकती है वह है वाजिब और गैरवाजिब। न आपसे कोई मेरा मतलब निकलता है न नाना साहब से। हाँ, इतना जरूर है कि अगर आज आप नाना साहब की जगह होते तो शायद ये लड़ाई-झगड़े या हम टोपी वालों से किसी तरह का आपसी मतभेद न होता। खैर। अब वह चीज दूर की है। समय निकल जाने पर पछतावा किस काम का।'

'परन्तु समय को लौटाया भी जा सकता है। ऐसी कोई बात नहीं।'

'हाँ। लौट सकता है। कुछ दिक्कतें पड़ेंगी लेकिन ज्यादा नहीं। पहले आप बापू साहब से सलाह तो कर लें। हम आपके साथ हमेशा हैं। चाहे दुनियाँ रहे या न रहे।'

'सलाह क्या करनी है। आपने जो कुछ कहा ठीक कहा है। नाना ने मेरी नेकनीयती का गलत फायदा उठाया है और अब दिन प्रति दिन वह बढ़ता ही जा रहा है।'

'बिल्कुल। अब आपको सचेत होने की आवश्यकता है। वरना आप कहीं के भी न रहेंगे।' दोनों अब खुल चुके थे।

'यह बात किसी को जाहिर करने की जरूरत नहीं। मैं बापू से इसपर विचार-विमर्श करूँगा। उन्हें......।'

बीच में मास्टिन ने टोका 'उनपर आपको विश्वास है न? इसे पहले सोच समझ लीजिये। ऐसा न हो लेने के देने पड़ जाँय।'

'नहीं उन्हें भी आप अपना ही आदमी समझें। वे मेरे बिरुद्ध कभी नहीं जा सकेंगे। कोई भी कार्य बिना उनके सहयोग के मैं नहीं करता। वे रघुनाथ-राव के पक्के आदमी हैं। किन्तु क्या करें, समय के साथ-साथ उन्हें भी पलटना पड़ा था। तब वे विवश थे। अब सचेत हैं।'

'लेकिन उनके कामों को देखते हुये तो इस तरह का सन्देह नहीं किया जा सकता। मुझे खुद इसका इल्म नहीं था।'

'बात कुछ ऐसी ही है। मनुष्य को कब क्या करना पड़ता है, इसे क्या बताया जाय। इस समय के बापू का रूप वही है जो नारायणराव के समय था। आप इतना ही समझ लें।'

'ठीक है, ठीक है। आप मेरी ओर से बेफिक्र रहें। आप जब भी जैसी खबर भेजेंगे, मुझे उसे पूरा करने में कतई हिचक न होगी। लेकिन है जरूरत अब जल्दी की।'

'मैं आपको शीघ्र सूचित करूँगा। उसके बाद जैसा निश्चित होगा — किया जायगा।'

मोरोबा उठ पड़ा।

कर्नल अपटन की संधि के उपरान्त बम्बई सरकार ने संधि की शर्तों की पूर्ति के प्रमाण में, मास्टिन को पूना भेजा था। तभी से मास्टिन यहीं है। लेकिन जानबूझ कर अँग्रेजी सरकार द्वारा मास्टिन ही भेजा गया था। कारण— वह अपना करिश्मा दिखा चुका था इसीलिये।

छब्बीस

उस दिन के बाद गंगाबाई के शरीर में घुन लग गया। स्वास्थ्य दिन प्रति दिन गिरने लगा। गंगाबाई ने जानते हुये भी किसी से चर्चा नहीं की। धीरे-धीरे बुखार भी बढने लगा। नाना को बाद में मालूम हुआ। उसने गंगाबाई से पूछा। कारणों की छानबीन की परन्तु गगाबाई ने 'कुछ नहीं' कह कर टाल दिया। सम्भवतः वह समझती थी कि उसका रोग असाध्य है।

इधर महीनों से नाना ने उसके मना करने के बावजूद भी दवादारू का समुचित प्रबन्ध किया है। राजवैद्य के अतिरिक्त, अन्य वैद्य भी दूर-दूर से बुलाये गये हैं लेकिन रोगी की दशा नित्य बिगड़ती ही जा रही थी। पैथान के वृद्ध वैद्य ने रोगिणी को 'चिन्ता' की बीमारी बतला कर, नाना साहब से साफ शब्दों में कह दिया था कि उसका बचना किसी भी दशा में सम्भव नहीं।

तीन चार दिनों से गंगाबाई की तबीयत कुछ अधिक खराब हो गई थी। चारों ओर हवन-यज्ञ, पूजा-पाठ, दान-पुण्य, जन्त्र-मन्त्र—सब कुछ चल रहा था। परन्तु कर्ता की इच्छा में हस्तक्षेप। यह सामर्थ्य किसमें ? आज गंगाबाई की दशा चिन्ता जनक थी। बोलना-चालना उसने कम कर दिया था। जो कुछ दवा खिलाई जाती थी, वह खा लेती थी। इन्कार नहीं करती। कभी-कभी बालक पेशवा भी उसके पलंग पर पहुँच जाता। उसके शरीर पर इधर-उधर लोटता किन्तु कुछ बोलता नहीं। शायद उसे भी अपनी माँ की अस्वस्थता का आभास हो गया था। वह पलँग पर बहुत समय तक न रुकता। थोड़ी ही देर में नीचे उतरने के लिये लपकने लगता। वह नीचे उतार दिया जाता और तब उसका विश्व उसके खिलौनों में आ जाता। माँ की आँखें छलछला आतीं। गंगाबाई आँखें पोंछती हुई बन्द कर लेती।

संध्या होने को आई। और तब रात हो गई। गंगा ने इधर-उधर देखा।

कक्ष लोगों से भरा हुआ था। उसने पास खड़ी दासी से धीरे से पूछा 'नाना साहब......।'

'अभी यहीं बैठे थे महारानी जी। किसी काम से बाहर गये हैं।' दासी बुलाने दौड़ी।

'नाना आया।' उसने पास बैठते हुये पूछा कैसी तबीयत है ?'

'ठीक है। इन लोगों से', उसने दूसरों की ओर संकेत किया 'कहिये कि कुछ समय के लिये बाहर चले जाँय। आपसे कुछ कहना है।'

सब बाहर हो गये। गंगा ने नाना की ओर करवट ली। उसने नाना को कुछ और समीप आने के लिये कहा। नाना त्रिपद खींचता हुआ पलग से सट कर बैठ गया। गंगाबाई ने नाना के हाथों को पकड़ लिया। बोली 'नाना साहब, अब मेरा अन्तिम समय निकट है। घंटे दो घंटे और। अधिक नहीं।' उसकी आँखें भर आई' 'आपने जो उपकार मेरे साथ किया है उसे मैं जन्म-जन्मान्तर नहीं भूल सकती। मैं कभी इस ऋण से उत्तीर्ण हो सकूँगी—इसकी क्या आशा।' उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। उसका कंठ भर आया था, 'अन्तिम समय एक और भीख चाहती हूँ', उसने हाथ जोड़े 'इस सवाई को धरोहर के रूप में रख लीजिये। मैं समझ लूंगी मेरा लाल मेरे ही पास है। फिर मुझे मरने में कष्ट न होगा। मेरी आत्मा शान्तिपूर्वक चली जायेगी। बोलिये नाना साहब। मैं अब अधिक देर तक नहीं रुक सकती बोलिये।

नाना की आँखों से आँसू बहने लगे, 'ऐसा ही होगा महारानी जी उस धरोहर को मैं अपना ही समझता हूँ और सदैव समझता रहूँगा। आप......।'

गंगाबाई में और आगे सुनने का सामर्थ्य नहीं था। वह चित्त हो गई। हिचकियाँ आने लगी। नाना ने बाहर निकल कर लोगों को बुलाया लेकिन उन लोगों के आने के पहले ही त्यागी ने त्यागने वाले को त्याग दिया था।

दूर, दुर्ग के नीचे कुत्ते रोने लगे थे।

सत्ताइस

(क)

मोरोबा द्वारा निश्चित किये हुये स्थान पर मास्टिन उपस्थित था। संध्या की बेला, जब सृष्टि भी थोड़ी देर के लिये सब कुछ भूल कर स्वयं कार्यों में उलझ जाती है—ठीक ऐसे ही समय मोरोबा और मास्टिन एक विचित्र षड्यन्त्र रच रहे थे।

मोरोबा बोला 'बापू से मैंने सलाह की थी। वे मुझसे सहमत हैं। अब केवल योजना बनाने की देर है।'

'आपने क्या सोचा?' मास्टिन ने पूछा।

बापू ने राय दी है कि नाना को हटाकर, साम्राज्य के सम्पूर्ण कार-भार को मैं स्वयं अपने हाथों में ले लूँ।'

'ऊहूँ। सिर्फ इतना ही नहीं। नाना को हटाने से काम न चल सकेगा। अवसर मिलने पर वह फिर आप पर चढ़ सकता है। नाना को कहीं दूर किसी दुर्ग में बन्दी बनाकर, जीवन भर के लिये रख देना होगा और साथ ही बाग-डोर सँभालने के उपरान्त, शीघ्र रघुनाथराव साहब को बुलाकर बालक पेशवा का सरक्षक नियुक्त करना दुरस्त होगा।'

'लेकिन रघुनाथराव साहब के लिये अभी इतनी जल्दी क्या है? कुछ समय बाद भी बुलाये जा सकते हैं।'

'आप नहीं समझते। इस तरह से हमारी भी सरकार आपके पक्ष में पूर्ण रूप से हो जायगी। आवश्यकता पड़ने पर हम आपकी मदद में भी रहेंगे। दूसरी बात, लोगों की भावनाओं में तबदीलियाँ आ जायेंगी—कुछ डर से और कुछ दलबन्दी और शिथिलता से। बैठी हुई चीज को उखाड़ने में कुछ देर

लगती है लेकिन जो बैठी ही न हो उसके लिये आप क्या करेंगे ?'

मोरोबा को मास्टिन की सूझ जँच गई। 'है तो ठीक', वह बोला 'आपका सहयोग तो मेरे लिये आवश्यक है। तो आप बम्बई सूचना भेज दीजिये। मुझे इसे पूरा करते देर न लगेगी।'

'सूचना भेजने से काम न चल सकेगा। मैं खुद परसों चला जाता हूँ। वहाँ सारी तैय्यारियाँ रहेंगी। नाना को कैद कर, शासन अपने हाथों में लेते ही फौरन खबर दें। मैं पूरी लश्कर के साथ, रघुनाथराव साहब को लेकर पूना आ पहुँचूँगा। लेकिन अब देर न हो।'

'नहीं। अब आप देर न समझें। यही राय पक्की रही।'

'जी हाँ। बिल्कुल पक्की।'

दोनों ने घोड़ों को मोड़ा।

शिवरात्रि का पर्व समीप था। नाना अपनी जन्मभूमि मीनावली जाने को सोच रहा था। लोगों के उलहने भी दूर हो जायेंगे और जन्मभूमि का दर्शन भी। वह गद्‌गद् हो रहा था। जन्मभूमि के प्रेम में किस प्रकार का कौन-सा आकर्षण है, केवल अनुभव के अतिरिक्त बतलाया नहीं जा सकता। लक्ष्मी भी उनके राय से सहमत थी। अतः नाना ने लक्ष्मी के साथ एक दिन गाँव के लिये प्रस्थान कर दिया।

मोरोबा जितनी अधिक शीघ्रता चाहता था, उससे पहले वह अवसर आ गया। उसने पुरन्दर दुर्ग पर धावा बोल दिया। परन्तु नाना द्वारा नियुक्त सैनिकों ने बड़ी वीरता से दुर्ग की रक्षा की। उधर नान के गाँव कासिद दौड़ाया गया। नाना आया। दुर्ग अभी उसी प्रकार रक्षित था। नाना ने सैनिकों की सराहना की और दूसरे दिन सबेरे दुर्ग समर्पण की घोषणा करते हुये स्वयं मोरोबा से मिलने नीचे आया।

नीचे मोरोबा अपने शिविर में सखाराम बापू तथा रघुनाथराव के कुछ अन्य सहायकों सहित बैठा था। नाना के आगमन की सूचना दी गई। उसने अन्दर बुलाया। नाना आकर एक ओर बैठ गया। उसने बापू की ओर देखा।

'मैं असमर्थ था नाना। मोरोबा के सामने मैं कर ही क्या सकता था।' बापू ने बात बनाई।

'आपका न कहना ही उचित था बापू। दादा ने मुझसे पहले बता दिया होता। काम होने से मतलब है। चाहे जो करे। पद के लिये आपस में लड़ना उचित नहीं।'

परन्तु अब मैं स्वयं सारे अधिकारों को अपने हाथों में लेना चाहता हूँ। इसमें दूसरा हस्तक्षेप नहीं कर सकता।'

'ठीक है। आप सँभालिये। मुझे छुट्टी मिल जायेगी। मैं राजनीति क्षेत्र से हटना भी चाहता हूँ। मुझे इससे प्रेम नहीं। किन्तु आश्चर्य तो यह है कि आपको ये कुराफातें सूझी कैसे?'

'इसलिये कि तुम्हारा सम्मान बढ़ता जा रहा था और भय था कि निकट भविष्य में कहीं तुम साम्राज्य के सर्वेसर्वा न बन बैठो।' मोरोबा के पास और कोई उत्तर नहीं था।

नाना मुसकराया, 'आप मुझसे बड़े हैं। समझदार हैं। आपके मुँह ऐसी बातें शोभा नहीं देती। यदि आपको मेरे सम्मान बढ़ने की चिन्ता थी तो उसे घटाने का कोई साधन बताया होता और तब वैसा न करने पर दोषी भी होता। रही सर्वेसर्वा वाली बात इसे तो मैंने कभी स्वप्न में भी न सोचा होगा दादा। साम्राज्य के प्रति सेवा की भावनायें जो आप में आज जाग्रत हो रही हैं यदि ये आरम्भ से हुई होतीं तो शायद मेरे स्थान पर आप ही होते। खैर, अब आप इसके हेतु तत्पर हैं, मुझे प्रसन्नता है। यदि आपने पहले कभी इसकी ओर संकेत किया होता तो आपको आज षड्यन्त्र रचने की आवश्यकता न पड़ती। आप साम्राज्य और देश की परिस्थितियों को भली प्रकार समझते हैं। ऐसे कार्यों से बाहरी जगत में अपनी ही वकत घटती है।'

मोरोबा ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह अन्दर ही अन्दर प्रसन्न हो रहा था। प्रतिद्वन्दी बिना परिश्रम के अपने शरण में आ जाय—यह उसके लिये बड़ी बात थी।

'तो मैं जाऊँ', नाना ने पूछा 'जिस दिन जिस प्रकार आप चाहें मैं कोष तथा अन्य कागजातों को आपके सुपुर्द कर दूँ।' नाना उठ खड़ा हुआ। द्वार पर पहुँच कर वह फिर ठिठक गया। उसने मुड़कर कहा 'लेकिन एक बात है दादा।'

'क्या ?' मोराबा ने पूछा।

'आप किसी भी दशा में अँग्रेजों से संधि या रघुनाथराव को पूना में लाने का प्रयत्न न करेंगे। इसे आप भली भाँति सोच लें। केवल इसी एक शर्त पर मैं अपने सारे अधिकारों का त्याग कर सकता हूँ। मैं इन दोनों को, पेशवा साम्राज्य का सबसे बड़ा दुश्मन और इन्सानियत से परे समझता हूँ। मुझे आशा है आप मेरे विचारों से सहमत होंगे।'

'मैं तुम्हारे विचार से पूर्णतः सहमत हूँ। तुम इसकी चिन्ता न करो। ऐसा कभी न हो सकेगा।' मोरोबा दाव खेल रहा था।

'तो ठीक है। मैं जा रहा हूँ। आप जब चाहें, मैं तैयार हूँ।' नाना निकल आया।

दूसरे दिन दुर्ग के नीचे दरबार लगा। पेशवा को नजरें भेंट की गईं और उपस्थित सरदारों के सन्मुख नाना ने अपना पद त्याग दिया। मोरोबा, फड़नवीस तथा सरकार संचालन का सर्वेसर्वा घोषित हुआ। परन्तु पद मदान्ध मोरोबा को मास्टिन की सीख भूल गई। उसने जो कुछ नाना के लिये कहा था, उसे वह नहीं कर सका। वह बिल्कूल भूल गया था।

नाना एक नजरबन्द की हैसियत से बालक पेशवा सहित दुर्ग में रखा गया। सेन्ट लूबिन को फौरन पूना छोड़ने का आदेश हो गया।

कोल्हापुर और कर्नाटक के मार्गों पर दो अश्वारोही हवा से होड़ लगा रहे थे। उन्हें शीघ्र अपनी अपनी मंजिलों पर पहुँचना था। उनका काय अत्यन्त आवश्यकीय था। दोनों अपनी मंजिलों पर पहुँच गये। महादजी शिंदे ने कोल्हापुर के विरुद्ध लड़ाई बन्द कर दी। हरीपन्त फड़के कर्नाटक से लौट पड़ा। पूना से कुछ दूर आगे हरीपन्त अपनी सेना सहित महादजी से आ

मिला। दोनों सेनापतियों में मंत्रणा हुई। सेनायें पूना को न आकर दूसरी ओर मुड़ गईं। महादजी किधर जा रहा है? क्या करने जा रहा है? किसी को विदित नहीं। मोरोबा और बापू बड़े चिन्तित थे। उनकी सारी योजनायें एक प्रकार से विफल हो चुकी थीं। बम्बई से न मास्टिन आया न रघुनाथराव। मोरोबा सन्देश पर सन्देश भेज रहा था लेकिन सब बेकार। अँग्रेजों के पास यथेष्ट सेना नहीं थी जिसके बल पर वे रघुनाथराव सहित पूना आते। बंगाल से कर्नल बेजली की अधीनता में भेजी हुई सेना जो बुन्देलखंड से होती हुई आ रही थी अभी तक न आ सकी थी। बम्बई की सरकार बड़ी व्याकुल थी। उसकी दशा अकथनीय थी। मास्टिन के किये-कराये पर इस बार भी पानी फिरने जा रहा था।

उधर महादजी बड़ी सतर्कता बरत रहा था। किसी को उसके विचारों का अनुमान नहीं। वह किस पक्ष से किधर को जा रहा है—किसी को इल्म नहीं। हरीपन्त भी बिलकुल मौन था। सेनायें रुकती हुईं धीरे-धीरे बढ़ रही थीं।

मोरोबा और बापू बड़े चिन्तित थे। अँग्रेजों से आशा टूट चुकी थी। अब महादजी से मिलने के अतिरिक्त दूसरा चारा नहीं था। इसलिये बापू को साथ ले मोरोबा जेजुरी में महादजी से मिलने आया—उसके मनोभावों को समझना था और विपरीत होने पर उसे अपनी ओर लाने का प्रयत्न करना था। पर महादजी जेजुरी न जाकर मोरगाम की ओर मुड़ गया। वह मोरोबा से मिलना नहीं चाहता था।

बापू को स्थिति समझते देर न लगी। उन्होंने अकेले मोरगाम में महादजी से भेंट की और षड्यंत्र में भाग लेने के लिये क्षमा माँगी। महादजी के पूछने पर कि उन्होंने रघुनाथराव को दुबारा पूना में बुलाने का प्रयास किया था—बापू ने किये को भी नाहीं कर दिया। वृद्ध की बातों पर शिंदे को विश्वास हो गया। उसने उनको नाना के पास भेज दिया।

मोरोबा के पास अब भागने के अतिरिक्त दूसरा रास्ता नहीं था। वह भागा!

नाना को बापू के आने की सूचना दी गई। नाना ने उन्हें बड़े आदर से लिया और सम्मान पूर्वक बैठाया। बापू का मस्तक नीचे था। उन्होंने सिर झुकाये हुये कहा 'मैं क्षमा याचना के लिये आया हूँ नाना। मुझसे बड़ी भूल हुई है। मैं मोरोबा के फंदे में...... '

'मैं आपसे सफाई सुनना नहीं चाहता बापू। आप मेरे पिता तुल्य हैं। आप ही की देख रेख में मैंने कर्तव्य-पालन की परिभाषा सीखी है। आप न होते तो शायद् पेशवा साम्राज्य की नींव ढह गई होती। अब भी मेरे हृदय में आपके प्रति वही स्थान है जो पहले था। मैं समझता हूँ, दादा के चक्कर ने आपको अपने पथ से विचलित कर दिया था। अब आपको चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। जाइये। आराम कीजिये।'

बापू ने अपने चेहरे की गंभीरता को और गंभीर बना लिया। वे उठते हुये बोले, 'वृद्ध होने पर सोचने की शक्तियों में शिथिलता आ जाती है नाना। मोरोबा की चतुरता ने मुझे ऊपर नीचे सोचने का कोई अवसर नहीं दिया। लोभ ने मुझे अँधा बना दिया था।' बापू दूध के धोये बन रहे थे।

नाना को बापू की गहराइयों का अन्दाज नहीं था। उसका निष्कपट हृदय कपटता की परखन में कमजोर था। वह उसी प्रकार बोला जो बीत गया उसे क्या सोचना। त्रुटियाँ मनुष्य से हुआ करती हैं। इसपर क्या पछतावा। अब भविष्य को देखिये।

बापू धीरे-धीरे कदम रखते हुये कमरे के बाहर हो गये।

नाना और महादजी की बड़ी रात गये तक बातें होती रहीं। बहुत दिनों बाद दोनों मिले थे। परस्पर बैठकर बातें करने का अवसर तो कई सालों बाद मिला था। बातों का तारतम्य टूटता ही नहीं था। नाना ने षड़यन्त्र के किस्से

को भी आदि से अन्त तक सुनाया। महादजी हँसता हुआ बार बार नाना की होशियारी का बखान करता रहा। अन्त में दोनों सोने चले गये।

एक हफ्ते के भीतर मोरोबा पकड़ा गया और पुरन्दर लाया गया। नाना के सामने आने पर नाना ने कहा 'दादा, आपके विरुद्ध इन कार्यों को करने में मुझे कितनी तकलीफ है—इसे मैं ही जानता हूँ। बड़े भाई के प्रति इस प्रकार के छल-कपट का व्यवहार पाप-पूर्ण है। पर पेशवा और देश के हेतु यह भी करना पड़ रहा है। कर्तव्य जो न करदे। मालिक और देश के प्रति विश्वासघात क्षम्य नहीं होता दादा। फिर भी मेरे मातृत्व में अन्तर नहीं। मेरा प्रेम आपके प्रति वैसा ही रहेगा। आप मेरे पूज्यनीय हैं और सदैव रहेंगे। यह व्यथा सम्भवतः मेरे मरने के बाद ही मिटेगी।' वह रुका 'आप कुछ कहना चाहते हों तो कहें।'

'नहीं।' मोरोबा नतमस्तक खड़ा था।

नाना ने उठकर मोरोबा के पैर छुये और बन्दवान को लिखित आदेश दे दिया। मोरोबा चला गया। नाना आँखों की कोरों को पोंछता हुआ बहुत देर तक टहलता रहा।

अट्ठाइस

नाना फड़नवीस के आदेशानुसार पूना नगर खाली हो रहा था। नगर के बाहर, चारों ओर जिधर दृष्टि जाती, केवल सामानों से लदी हुई गाड़ियों के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं पड़ता। नगर निवासी समीप और दूर गाँवों में रहने का प्रबन्ध कर रहे थे। सब कहीं का व्यापारिक सम्बन्ध बन्द हो चुका था। रेशम और कलाबत्तू के कारखाने बहुत पहले ही बन्द किये जा चुके थे। पूना नगरी धीरे-धीरे वीरान हो चली थी।

दूसरी ओर नगर की परिचालक सभा के सैकड़ों परिचारक दूर-दूर गाँवों से गाड़ियों में घास फूस पुआल-भूसा तथा अन्य शीघ्र जलने वाली वस्तुयें—लाद-लाद कर ला रहे थे। और उन्हें खाली किये हुये मकानों में भरा जा रहा था। विकट लड़ाई की तैयारियाँ हो रही थीं। नाना की घोषणा थी कि किसी भी हालत में मराठी जनता तो दूर, साम्राज्य का एक एक कण फिरंगियों की शरणागत में आकर अपने को समर्पित नहीं करेगा।

यद्यपि अँग्रेजी सरकार को मास्टिन द्वारा सगठित षड़यन्त्र के असफल होने का दुख था पर वह करती क्या। मजबूरी थी। खैर उसे लड़ाई तो लड़नी ही थी। उसने बेहयाई और जबरदस्ती का रास्ता अख्तियार किया। रघुनाथराव से फिर एक नई संधि हुई। इसमें बालक सवाई माधवराव नारायण को पेशवा और मराठा सरकार का प्रधान घोषित किया गया और रघुनाथराव उसका संरक्षक। नाबालिगी अवस्था तक पेशवा पूर्णतः अँग्रेज सैनिकों की देख-रेख में पुरन्दर के दुर्ग में रखा जायेगा। संधि हो गई। बम्बई से कर्नल ईगरटन के नेतृत्व में अँग्रेजी सेना रघुभरारी को साथ ले समुद्री मार्ग से चल पड़ी। ईगरटन के राजनीतिक सलाहकार मास्टिन और जान कारनेक थे। एक महीने की यात्रा के उपरान्त अँग्रेजी सेना पानवेल होती हुई खंडला घाट आ पहुँची।

खंडला पहुँचते ही मास्टिन को तबीयत खराब हो गई और वह तत्काल बम्बई को लौट पड़ा। लेकिन जान बचाने से थोड़े बचती है। बम्बई पहुँचते-पहुँचते उसकी मृत्यु हो गई।

नाना तैयार था कुछ सेनायें पहले ही घाट को भेजी जा चुकी थीं। अब स्वयं वह महादजी के साथ बड़ेगाँव आया और समीप वाली पहाड़ी पर केन्द्रस्थल बनाया। वहाँ से वह प्रत्येक ओर अपनी सेना को अनुसाशित कर सकता था। स्वयं सैनिक न होते हुए भी सैनान्य के कार्य को उतनी ही योग्यता और सतर्कता से परिचालित करते हुये युद्ध में वैरियों को पराजित करना इतिहास के पन्नों में यह असाधारण व्यक्तित्व अपना सानी नहीं रखता।

खंडला से अंग्रेजी सेना ने प्रस्थान किया। मार्ग वही था जो आज-कल की रेलवे लाइन है। घाट से अंग्रेजी सेना कुछ ही आगे आई होगी कि मराठों की गनीमीकावा आरम्भ हो गई। हवा आती और निकल जाती। सैनिक कहीं दिखाई न देते और यदि दिखाई भी पड़ते तो वे अंग्रेजों की बन्दूकों की पहुँच से दूर होते। गोलियाँ चलतीं परन्तु बेकार जातीं। फिर कुछ समय के लिये सन्नाटा छा जाता। गोरों में कुछ उत्साह और सन्तोष की लहर दौड़ती। लेकिन यह मनःस्थिति बहुत देर न टिकने पाती कि अचानक पीछे की तरफ से आक्रमण होने लगते। टोपी वाले मारे जाते और मराठे पहाड़ियों में अन्तर्ध्यान हो जाते। फैली हुई धूल बैठने लगती और बैठ जाती। अंग्रेज सतर्क होकर बढ़ने लगते। टुकड़ियों के नायक सैनिकों का निरीक्षण करते। उन्हें उत्साहित करते और अधिक सतर्कता बरतने का आदेश देते। सैनिक चौंकते हुये आगे बढ़ते रहते। तब तक दाहिनी ओर, आगे-पीछे और बीच में गोलियाँ दगने लगतीं और आया हुआ बाढ़ लौट कर शान्त भी न होने पाता कि बाँयीं ओर तूफ़ान उठता और अंग्रेजों को काटता हुआ क्षितिज में विलीन हो जाता।

अंग्रेज ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जाते, आक्रमणों का दबाव वैसे-वैसे प्रबल होता जाता। गनीमीकावा में पारंगत मराठे सैनिकों ने अंग्रेजी सेना को हतोत्साहित कर दिया था फिर भी अधिकारी, सैनिकों को ललकारते हुये बढ़

रहे थे। परन्तु धीरे-धीरे उनकी भी ललकार धीमी पड़ने लगी थी। मार्ग में पड़ने वाले गाँव वीरान दिखाई दे रहे थे। तलईयाँ और पोखरियाँ सुखा दी गई थीं। खेतों में सम्भवतः इस वर्ष फसल ही नहीं बोई गई थी। पेड़ों में पत्तियाँ तक नहीं थीं। मैदानों और जंगलों की घासें जला कर राख कर दी गई थीं और कहीं-कहीं अब भी आग की लपटें उठ रही थीं। भोजन तो दूर मुँह में ठूँस कर भरने वाली कोई चीज भी दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी। टोपी वालों की चिन्ता बढ़ने लगी। क्षुधा और जलपीड़ित सैनिक कब तक टिक सकते थे ?

करला से आगे बढ़ने पर मराठों ने आक्रमणों का ताँता लगा दिया। एक-एक पग आगे बढ़ने में गोरों को लोहे के चने चबाने पड़ रहे थे। कैप्टन इस्टीवर्ट मारा गया। कर्नल घायल होकर बम्बई भागा। मराठों का उत्साह बढ़ा। चतुर और दक्ष पुर्तगाली बन्दूकची नोरोनहा ने कमाल कर दिखाया। थोड़े समय के लिये अँग्रेज तितर बितर हो गये। नाना के पास सन्देश पहुँचा। उसने नौरोन्हा की प्रशंसा करते हुये अंग्रेजों को और अन्दर आने के लिये आदेश दिया। अपनी ओर से अधिकाधिक दबाव डालने की अभी आवश्यतका नहीं थी।

फिरंगियों की सेना खडकला (आज का कामशेड स्टेशन) पहुँची और उसके दूसरे दिन बड़ेगाँव। आक्रमणों का तारतम्य उसी प्रकार जारी रहा। अँग्रेजों को बढ़ने में बड़ी कठिनाई हो रही थी। फिर भी वे बढ़ रहे थे। अब वे लौट भी तो नहीं सकते थे। यह उससे अधिक दुस्तर था। किसी प्रकार भूख प्यास से मरते हुये सैनिकों को घसीटते हुये, पदाधिकारी तीसरे दिन तले गाँव पहुँचे। पर तले गाँव पहुँचते ही सब के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। गाँव जल रहा था। गल्ले की मंडी राख हो चुकी थी। तले गाँव का बड़ा ताल जो झील के सदृश्य था—सुखाया जा चुका था। सब हताश हो गये। इसी समय उन्हें यह भी सूचना मिली कि आगे का गाँव चिनचवाड जहाँ उन्हें रुकने को था—जलाने का प्रबन्ध हो चुका है।

दशा संकटपूर्ण और शोचनीय हो गई। दो दिन तक तले गाँव में सेनाओं की मंत्रणा होती रही। अन्त में सारी परिस्थितियों और कठिनाइयों को समझते हुये उन लोगों ने धीरे से पीछे भाग चलना ही उचित समझा। दूसरी कोई सूरत नहीं थी। प्राणों की अधिक चिन्ता थी। अंग्रेज लौटे। क्षुधा पीड़ित सैनिकों में नई चेतना आई। मरते हुये ने भी एक बार हिम्मत की और भागने लगा। किन्तु उन बिचारों को क्या ज्ञात कि वह लम्बा दुबला पतला सा व्यक्ति जिसकी देश-सेवाओं पर आने वाली भारत की सन्तानें गर्व करेंगी और आदर्श मान कर पूजेंगी—वहीं पास बड़े गाँव की पहाड़ी पर बैठा सब देख रहा है। रघुनाथराव के आश्वासन और पूना का मोह अब फिरंगियों को नहीं सुहा रहा था। जान बचे, यही वे ख़ैर मना रहे थे।

सेनापति भाग रहा था, सेनागोप भाग रहे थे; भगोड़ा भाग रहा था, सैनिक भाग रहे थे। भागना ही केवल काम था इसलिये सब भाग रहे थे। परन्तु मंजिल दूर थी। मार्ग सन्देह-जनक और कष्टपूर्ण था। सब शंकित थे। एक कोस की यात्रा तय हुई। लेकिन दूसरी समाप्त होते-होते गोरे घिर गये। मराठे सैनिक चारों ओर थे। भूख और प्यास से मरते हुये अंग्रेज अब अपने को न संभाल सके। सन्धि का झंडा उठा दिया गया। सैनिकों ने हथियार डाल दिये। गामुल फारमर वार्ता के लिये आया। उसकी आँखों पर पट्टी बांधी गई। वह पालकी में बैठाया गया और कहार चक्कर लगाते हुये गुप्त स्थान पर आ पहुँचे।

फारमर की जब पट्टी खोली गई तो वह एक शिविर में था और सामने नाना और शिंदे बैठे थे। फारमर ने अभिवादन के हेतु अपने शरीर को झुकाते हुये मस्तक को नवाया। दोनों ने उत्तर दिया और सामने बैठने के लिये महादजी ने संकेत किया। उसने सरसरी निगाह से दोनों व्यक्तियों को देखा और मधुर स्वर में बोला 'मेरी सरकार ने पेशवा साहब की सरकार से संधि के लिये प्रार्थना की है और मुझे आप लोगों से मिलकर इस वार्ता को सफल बनाने की जिम्मेदारी दी है। आप अपनी शर्तें बताने की मेहरबानी करें।' फारमर का मस्तक झुका था।

'संधि की बातचीत या किसी प्रकार की शर्तें उस समय तक नहीं रखी जायेंगी जब तक रघुनाथराव हमलोगों की सुपुर्दगी में न आजायेगा। इसके पहले नहीं। समझे आप।' नाना के शब्दों में कुछ कड़वाहट और दृढ़ता थी।

फारमर ने उसकी ओर देखा। उसकी त्यौरियों पर बल पड़े थे। फारमर को परिस्थिति समझते देर न लगी। वह अधिक नम्र होता हुआ बोला 'आप का कहना सही है नाना साहब। ऐसा किया जा सकता है लेकिन शरण में आये एक मेहमान को अपने घर से निकाल देना—जैसा आप लोग भी मानते हैं—धार्मिक विचार से दोष का भागी होना पड़ता है। आप……?

'फारमर साहब, वक्त की कीमत को आप समझते हैं न। समय थोड़ा है। फिजूल की बातों से कोई लाभ नहीं। आपका बड़प्पन और आप के धर्म को मैं भली-भांति समझता हूँ। आप की सरकार या आप जबान के कितने पक्के हैं—यह भी मुझसे छिपा नहीं है। आप जा सकते हैं।' वह कठोर होकर कह रहा था।

फारमर ने महादजी की ओर देखा।

'रघुनाथ की सुपुर्दगी के बाद आप लोगों को किसी प्रकार की परेशानी नहीं होगी फारमर साहब। पहले आप उनकी सुपुर्दगी का प्रबन्ध कीजिये।' महादजी ने संतोष दिया।

फारमर ने उठते हुये अभिवादन किया। पट्टियाँ बाँधी गईं और उसे पहुँचा दिया गया।

बड़ी रात तक अंग्रेजों में मंत्रणा होती रही। तदुपरान्त रघुनाथराव बुलाया गया। कुछ उससे भी सलाह मशविरे हुये जो अधिक गोपनीय और रहस्य-पूर्ण थे। दूसरे दिन रघुनाथराव की सेनायें पेशवा की अधीनता में आने लगीं। यह कार्यक्रम हफ्तों चलता रहा।

उधर जन्मजात धूर्तता में प्रवीण अंग्रेजों का अंग्रेज फारमर किसी नवीन गुत्थी को सुलझाने में व्यस्त था। वह समझता था कि यदि इस प्रकार का कोई कार्य न किया जायेगा तो शायद उनकी बम्बई पहुँचने की कल्पना केवल

कल्पना ही रह जायेगी। नाना के प्रथम भेंट से ही उसे विदित हो गया था कि इस व्यक्ति की गहराई टटोली नहीं जा सकती। अंग्रेजों की असलियत उससे छिपी नहीं है। उसके ऊपर किसी प्रकार का सम्मोहन भी नहीं फेंका जा सकता। वह अधिक दूरदर्शी है। फारमर दूसरी ओर मुड़ा। उधर गुञ्जाइश की उम्मीद थी। महादजी के खास खिदमतगारों से कानाफूसी होने लगी। बहुमुल्य उपहार आने लगे और फिर मोहरें, अशर्फियाँ।

भरारी की सुपुर्दगी हो गई। देख-रेख की सारी जिम्मेदारी शिंदे को रही। नाना ने रघुनाथराव से भेंट तक नहीं की। उसका विश्वास था कि मालिक के हत्यारे को देखकर एक महान पाप का भागी बन जाना पड़ेगा। खैर, खड्गसिंह जो रघुनाथराव के साथ ही साथ, बन्दी बनाया गया। और नाना के आज्ञानुसार उसकी जिन्दगी मौत से भी बत्तर बना कर मौत दी गई।

नारायणराव की हत्या में दूसरा हत्यारा गार्दी सुमेर सिंह हत्या के उपरान्त इन्दौर पहुँच कर मर चुका था। मुहम्मद युसुफ के पीछे भेजे हुये नाना के सैनिकों ने बहुत पहले ही उसे मध्यभारत के जंगलों में पकड़ कर नाना के सामने हाजिर किया था। गदहे पर बिठाकर उसे सारे नगर में घुमवाया गया था और बाद में हाथी के पैरों में बांधकर वह उस समय तक गलियों और सड़कों पर घसीटा गया जबतक उसके बदन के सारे चमड़े कट-कट कर अलग न हो गये और तब एकत्रित जनता के मध्य में हाथी ने उसे इस बुरी तरह से रौंदा कि उसकी हड्डियां पृथ्वी में धँस-धँस कर रह गईं। इस प्रकार नाना के हृदय में जलती हुई प्रतिशोध की ज्वाला अब बहुत कुछ धीमी पड़ गई थी परन्तु पूर्णतः नहीं। तुलया, षड्यंत्र का करता धरता, अब भी हैदरअली की शरण में छिपा हुआ मौजें ले रहा था। नाना की निगाह वहां भी थी।

गामुल फारमर संधि की वार्ता के लिये हाजिर हुआ उसके बैठते ही नाना बोला, पहली शर्त तो फारमर साहब यह है कि संधि की शर्तों की पूर्ति के लिये दो व्यक्तियों को हमारे आधीन आपको सौंपना होगा। उन्हें तबतक जाने की

आज्ञा नहीं दी जा सकेगी जब तक पन्त प्रधान पेशवा की सरकार पूर्णरूप से सन्तुष्ट न हो जाय।'

'जी हाँ। ठीक है। हम में से दो व्यक्ति जिस दिन से आज्ञा दें आपकी शरण में आ जायँ।'

'थाना, सालसिट तथा गुजरात के वे भाग जो आप के अधिकार में जा चुके हैं—सब छोड़ देने होंगे।'

'लेकिन इस शर्त की पूर्ति हम कैसे कर सकेंगे नाना साहब? यह तो बंगाल द्वारा किया जा सकता है। बिना गवर्नर जनरल की आज्ञा के हमारे पास कोई ऐसा अधिकार नहीं जिस बिना पर इन्हें छोड़ देने की मैं संधि कर लूं।'

'तो फारमर साहब' महादजी बोला 'मुझे अपना वह अधिकार दिखाइये जिसके बल पर कर्नल अपटन की हुई संधि को तोड़कर आप ने पूना पर आक्रमण किया है।'

नाना मुसकराया 'शिंदे साहब, इन लोगों की नीयत अभी साफ नहीं है। इतना होने पर भी, ये दूसरों की हड़पी हुई वस्तुओं को छोड़ना गुनाह समझते हैं। खैर!' उसने फारमर की ओर देखा 'तीसरी चीज जो आपको करनी होगी वह यह है कि बंगाल से आती हुई सेना को फौरन लौट जाने का आदेश जारी किया जाय। बस। आप शायद इन शर्तों पर अपने अन्य व्यक्तियों से सलाह करना चाहें। कर लीजिये।' महादजी और नाना उठ खड़े हुये। फारमर चला गया।

'लोहा गर्म होने पर हर तरह का बनाया जा सकता है महादजी साहब। तारीफ है केवल कारीगर की। चाहे जैसा बना ले।'

महादजी हँसने लगे, 'मानी हुई बात है। ऐसा होना ही चाहिये।'

लगभग इक्तालीस हजार की रकम चुकता हो जाने पर महादजी के खिदमतगारों ने फारमर को महादजी से मिलवाया। फारमर और महादजी की कितनी ही गुप्त बैठकें हुई। भड़ौच का अंग्रेजी भाग महादजी को उत्कोच के रूप में दिया गया। महादजी ने अधिक सुरक्षा सहित अंग्रेजों को बम्बई तक

पहुँचाने का जिम्मा लिया। सन्धि की शर्तों में हेर-फेर की उसने असमर्थता प्रकट की। यह काम पहले किया जा सकता था। फिर भी फारमर, शिन्दे को अभी और घेरने के प्रयत्नों में लगा हुआ था। इसी बीच एक दिन अंग्रेजों और मराठे सैनिकों में झड़प हो गई। फलस्वरूप मराठों ने एक ही बार पाँच सौ सैनिकों को काट डाला। मिजाज ठंढे पड़ गये।

मराठों में बड़ी सनसनी फैली हुई थी। वे क्रोध से बौखला उठे थे। कई प्रकार की अफवाहें सुनने में आने लगीं। कोई कहता नाना ने अंग्रेजों को अब बन्दी बना कर पूना ले चलने का निश्चय कर लिया है—तो कोई इसके आगे जोड़ता हुआ यह कह देता—पूना पहुँचते ही सारे टोपी वाले काट डाले जायेंगे। तब तक तीसरी खबर आती टुकड़ी नायकों और सेनागोपों ने नाना साहब से मंत्रणा की है और निश्चय हुआ है कि सारे फिरंगी यहीं मार डाले जायँ।

तरह-तरह की बातें तरह तरह के लोगों से सुनने में आ रही थीं। अँग्रेजों की दशा अकथनीय हो रही थी। फारमर दौड़ा हुआ नाना के पास पहुँचा और हस्ताक्षर किये हुये एक दस्तावेज को उसके सामने रखता हुआ गिड़गिड़ा कर बोला 'संधि के लिये यह कागज है। जो भी आप शर्तें चाहें इसपर लिख लें। हमारी सरकार को सब मंजूर हैं।'

नाना ने कागज लौटाते हुये कहा 'घबड़ाने की बात नहीं है फारमर साहब। आप अब भी सुरक्षित हैं। गल्ती आपके ही सैनिकों की थी '

'जी हाँ। उसका उन्हें नतीजा भी मिल गया। फिर भी मैं उसके लिये माफी चाहूँगा।'

'माफी की कोई बात नहीं। लेकिन विना कारण इतने लोगों की मृत्यु से हृदय को दुःख पहुँचता है। आप घबड़ायें नहीं। संधि की शर्तें वे ही रहेंगी जिनका उल्लेख मैं कर चुका हूँ। मैं सिर्फ अपना लेना चाहता हूँ, दूसरों का नहीं।' वह रुका 'संधि की पूर्ति के हितार्थ जिन दो महाशयों को भेजना हो

फौरन भेजिये। मैं आप लोगों के भिजवाने के प्रबन्ध हेतु आदेश दिये देता हूँ।'

फारमर वहाँ से महादजी के पास आया। वह बैठते ही बोला 'संधि की सारी शर्तें मान्य हैं शिंदे साहब। नाना साहब से मिलकर आ रहा हूं। अब आप हमारी सेना को हिफाजत से पहुँचाने का स्वयं जिम्मा ले लें। नाना साहब की बातों का विश्वास नहीं। वे कब क्या कर बैठें—कुछ कहा नहीं जा सकता। आपका ही भरोसा है। हमारी सेना सकुशल पहुँच जाय, इससे अधिक हम कुछ नहीं चाहते।' कपटी को प्रत्येक अपना जैसा ही दिखाई पड़ता है।

'अच्छी बात है। और कुछ?'

'जो दो व्यक्ति संधि की भरौती के लिये सौंपे जायेंगे—जिनमें एक तो खुद मैं हूँगा—आपके साथ रहें। नाना साहब के नहीं।'

'यह भी हो जायेगा।'

'बस इतना ही चाहिये।' वह सिर झुकाता हुआ बाहर हो गया।

संधि हो गई। गामुल फारमर और लेफटिनेंट चार्ल्स इस्टीवर्ट महादजी के डेरे में आ गये। सारी तैयारियाँ होने लगीं। और दूसरे दिन बीस हजार मराठे सैनिकों की देख-रेख में अँग्रेजी सेना बम्बई के लिये चल पड़ी। इतिहास के पन्ने आज भी उद्धृत किये जा सकते हैं कि जब से टोपी वाले भारत में, अपनी शक्ति को शक्ति के रूप में समझने लगे थे, इतनी अवहेलना और इस प्रकार की पराजय उन्हें कभी नहीं मिली थी। परिणाम-स्वरूप भारत में एक नई जागृति आई। मराठों में उत्साह और अकर्मण्यता की भावना फैली। नाना अधिक दृढ़ और कर्तव्यशील हुआ।

रघुनाथराव ने, सवाई माधवराव नारायण को पेशवा स्वीकार किया। साम्राज्य से किसी प्रकार का कोई सम्पर्क न रखने की शपथ ली और झाँसी में रहने का निश्चय किया। बातें सारी तय हो गईं। लेकिन चलते-चलते उस नीच ने अपनी नीचता का एक और परिचय दिया। सखाराम बापू का वह पत्र जिसे स्वयं बापू ने लिख कर, मोरोबा के समय में, बम्बई से रघुनाथराव

को पेशवा बनने के लिये बुलाया था—महादजी के हाथों में दे दिया। शिंदे पत्र पढ़कर अवाक रह गया। उसे स्वप्न में भी बापू से इस प्रकार की आशा नहीं थी। वह स्वयं पत्र लेकर नाना के शिविर में आया।

नाना ने पत्र पढ़कर महादजी की ओर देखा फिर कुछ सोचने लगा। उसे विश्वास तो था किन्तु इतना नहीं। सवाई माधव को नारायणराव का पुत्र समझते हुये भी रघुनाथराव को पेशवा बनने के लिये बुलाना—यह उसे बड़ा विचित्र लग रहा था। बापू सरीखा व्यक्ति भी अपने को इतना तुच्छ बना सकता है—नाना सोच नहीं पा रहा था। वह भर्राये शब्दों में बोला 'अब बापू की·······।'

'यह महान विश्वासघात क्षम्य नहीं है नाना साहब। बापू की सेवायें उनके जीवन की रक्षा कर सकती हैं। इससे अधिक नहीं।' शिंदे क्रोधित था।

नाना क्या कहता!

दूसरे दिन दो बन्दी दो मार्गों पर थे। एक झाँसी की ओर जा रहा था तो दूसरा सिंहगढ़ दुर्ग को। एक के साथ सेना थी, नौकर-चाकर थे और ऐशो-आराम के सब सामान थे तो दूसरा अकेला था, व्यथित था और आश्रय-हीन। प्रथम जीवन को जीवन समझ सकता था और दूसरा जीवन को मृत्यु। नाना ने दोनों को जाते देखा परन्तु असमर्थता थी दोनों से मिलने में।

डेरे उठने लगे। नाना सेना सहित पुरन्दर के लिये चल पड़ा।

उन्नतीस

शनिवार वाड़ा की सफाई और अन्य तैयारियों से तो यही विदित हो रहा था कि राजमहल का स्वामी सम्भवतः अब अपने महल में आने वाला है। नगर में बड़ी सजावटें थीं। ध्वज और पताकाओं से पूना नगरी चित्रमय हो रही थी। बड़े-बड़े विशाल द्वारवर्त्म सुन्दर बन्दनवारों से सुशोभित किये जा रहे थे। चारों ओर बड़ी चहल पहल थी। लोग प्रसन्न थे। आज पाँच वर्षों बाद पेशवा का शुभागमन हो रहा था। पूना फिर से आबाद हो रहा था।

दिन के द्वितीय प्रहर में, हाथी के ऊपर रत्न-जटित हौदे में नाना साहब बैठे थे और उनकी गोद में बैठा हुआ बालक पेशवा इधर-उधर आश्चर्य से देख रहा था। स्त्रियाँ छज्जे अटारियों से फूल बरसा रही थीं और नीचे सड़कों के दोनों ओर खड़ी जनता जयजयकार कर रही थी। सभी देख रहे थे। ध्यान-पूर्वक देख रहे थे। एक उनके लिये पूर्णतः नवीन था और दूसरे ने अपने को नवीन बना लिया था। जनता के दोनों आराध्य थे। एक गणपति का स्वयं अंश था तो दूसरा उस अंश का सेवक—भक्त। दोनों ही पूज्यनीय थे।

हाथी के पीछे घोड़ों पर महादजी शिंदे, तुकोजी होलकर, हरीपन्त फड़के तथा अन्य प्रमुख पदाधिकारी और कुछ सुसज्जित सैनिक चल रहे थे। नगर जय ध्वनि से प्रतिध्वनित हो रहा था। हाथी शहर में घूमता हुआ उस मार्ग पर भी आया और तब उस विशेष गृह के सामने। हरीपन्त की दृष्टि उधर उठी परन्तु कुछ दिखाई देने के पहले ही उसका घोड़ा आगे बढ़ गया। हाथी नगर का चक्कर लगाकर शनिवार बाड़ा पहुँचा।

दूसरे दिन यज्ञोपवीत संस्कार होने को था। काशी से बुलाये हुये पंडित आ चुके थे। साम्राज्य के सारे बड़े-बड़े सरदार और प्रतिष्ठित व्यक्तियों को आमंत्रित किया गया था और वे सब उपस्थित थे। प्रातःकाल से कार्य प्रारम्भ

हो गया। वेद मंत्रों का पाठ होने लगा। नाना साहब जैसे स्वयं अपने लड़के का उपनयन संस्कार कर रहे हों। दीन-दुखियों को, साधु संन्यासियों को, दरिद्र अपाहिजों को अर्थात् जो भी देने योग्य थे—उन्हें स्वयं नाना साहब अपने हाथों लुटा रहे थे।

संध्या को गणेश महल में दरबार लगा। भिन्न-भिन्न प्रकार के लगे हुये झाड़-फानूसों से निकली हुई रोशनी, उस बड़े भवन में एक अद्वितीय सौंदर्य भर रही थी। बालक पेशवा को नजरें पेश की गईं। इसके बाद लोगों ने नाना साहब को बधाइयाँ दीं। फिर शीघ्र इन शिष्टाचारों के समाप्त होते ही घुंघरुओं की छुनछुनाहट से दरबार झूमने लगा। और सब नृत्य में खो गये। संगीत मिश्रित नृत्य की मादकता जब लोगों में फैलती जा रही थी तो उसी समय, नाना साहब के समीप, पीछे बैठा हुआ एक मनुष्य उठा और लोगों की आखों से बचता हुआ बाहर निकल गया।

द्वार पर खट-खट शब्द होने के कारण द्वार खुला। 'आप!' द्वारप ने आश्चर्य से आगन्तुक की ओर देखा। द्वारप ने दासी को पुकारा।

दासी ने उत्तर में आवाज दी और दौड़ती हुई आई। आगन्तुक उसके साथ हो लिया। जाते हुये कक्ष की ओर न जाकर दूसरी ओर दासी को मुड़ते हुये देख आगन्तुक ने टोका 'इधर!'

'जी महाराज! इस समय वे बाग में हैं।'

'अकेले! इतनी रात को!!'

'जी।'

'तो तुम जाओ। मैं चला जाऊँगा।'

दासी रुक गई।

सोमाभा क्या फैल रही थी, प्रकृति में टीस और तृप्त में अतृप्त की उत्पत्ति कराकर, चाह की व्यथा को किसी ओर घसीटती लिये जा रही थी। लेकिन किधर लिये जा रही थी कुछ कहा नहीं जा सकता। शुभ्रज्योत्सना की यह मादकता

सोमकामक के लिये सम्मोहक और सम्मोदक तो थी परन्तु उभरे हुए मद में फैली हुई कसक रह-रह कर वेध भी दिया करती थी। नीरा बेलों की क्यारियों के बीच, घास पर पड़ी हुई, इसी कसक से छिद रही थी। वस्त्रों के अस्त-व्यस्त होने के कारण शरीर का सुडौल और उसकी सुघड़ता निखर आई थी। कलाकार की कला वास्तव में सराहनीय थी। पता नहीं वह इस कला से अपनी प्रशंसा चाह रहा था या अपने कला की। निर्णय करना कठिन था। नीरा करवट लेती हुई उठकर बैठ गई। इधर-उधर देखा। कुछ सोचा। और फिर अंगड़ाई लेकर लेट गई। चाँद उसको देख रहा था और वह चाँद को। वक्षस्थल की साड़ी सिकुड़ कर बीच में आ गई थी। अंगिया से कमर तक का मार्ग दिखने लगा था और घुटनों के नीचे उभरी हुई पिंडुलियाँ। हाथों की तकिया बनाकर वह अपने जीवन की गुत्थियों को खोलकर अपने सही रूप में लाने का प्रयास कर रही थी।

आगन्तुक अभी उद्यान में थोड़ी ही दूर आ पाया होगा कि सामने खेत फूलों की क्यारियों के बीच हरी घासों पर उस अर्द्ध नग्न सौन्दर्य को देखकर रुक गया। आँखें जम गईं। मानसिक भावनायें टकराने लगीं। पैरों में जड़ता आ गई। परन्तु उसी समय उस काया में कुछ हिलन हुई। आगन्तुक चिंहुका। नीरा ने एक हाथ नीचे से निकाल कर उरोजों पर रख लिया था। आगन्तुक ने अपने को धिक्कारा। छिः, कितनी कामुकता और असभ्यता। वह हलके पैरों आगे बढ़ा। समीप आया। नीरा अब भी अपने विचारों में तन्मय थी। क्यारियों में कुछ खरखराहट हुई। उसने करवट लेते हुये पीछे को देखा। आगन्तुक खड़ा था। वह देखती रही। फिर कुछ हँसती सी बोली 'आओ। अभी-अभी चले आ रहे हो? बुलवा लिया होता' वह उठकर बैठ गई।

हरीपन्त आकर बैठ गया। उसने नीरा की आँखों में अपनी आँखें डालीं परन्तु वहाँ वे अधिक देर तक न टिक सकीं और अनायास ही उसकी दृष्टि उन्नत कुचों पर आ चिपकी परन्तु तत्क्षण लज्जित होकर वह नीचे की ओर देखने लगा।

'उस दिन' नीरा कह रही थी 'रूठ कर चले गये थे। तभी, न तो किसी प्रकार की खबर दी और न आना ही चाहा। लेकिन यह नहीं समझते कि बहेलिये के कपे में फँसी हुई चिड़िया जितना अधिक अपने परों को मुक्ति पाने के हेतु फड़फड़ाती है उतनी ही ज्यादा वह और फँसती चली जाती है। और तिस पर मेरे कंपे में फँसी हुई चिड़िया—इस जिन्दगी में तो उसे आशा करना ही व्यर्थ है। समझे न!' नीरा के ओठों से मोती झड़ रहे थे।

'क्यों नहीं। इसे तो अब स्वीकार ही करना पड़ेगा। किन्तु मुझे सन्देह है नीरा कि कंपे में लासा इतनी अधिक है कि उसमें फँसी हुई चिड़िया का अधिक दिनों तक घसीट कर जीवित रहना सम्भव नहीं। वैसे कुछ आशा की जा सकती थी बशर्ते उपचार का प्रबन्ध होता। लेकिन······खैर। सम्भवतः बहेलिया निष्ठुर है। रक्षा करना नहीं जानता।'

'सैनिकों के मुँह से इस प्रकार की बातें! तब तो सारा ग्राम चौपट हो जायेगा।' नीरा ने सेनापति को दूसरी ओर मोड़ना चाहा, 'यहीं बैठोगे या चलूँ?'

'नहीं। यहीं बैठूँगा।......नीरा......मनुष्य केवल एक वस्तु के हेतु जीवन धारण करता है और वह है—प्रसन्नता। यह धरोहर जिस दिन उससे छिन जाती है वह फिर निर्जीव प्राय हो जाता है। उसका जीना न जीना समान है। वह दो हाथ-पैरों वाला इन्सान जानवर बन जाता है।'

'लेकिन प्रसन्नता है क्या सेनापति?' नीरा ने जानते हुये भी पूछा।

'अच्छे कामों का जमाव। उन्हें निरन्तर करते रहने का अभ्यास और अभिलाषा।'

'और यदि उस अभिलाषा का त्याग कर दिया जाय तो? तब अभ्यास की आवश्यकता ही न रह जायेगी। वहाँ केवल कर्म ही कर्म रह जायेगा। जो निस्वार्थ और चाह रहित होगा। और शायद इस कर्म द्वारा प्राप्त प्रसन्नता तुम्हारी उस प्रसन्नता से ज्यादा खूबसूरत और आरामदेह होगी। इसमें साधुता होगी। इह-लोक और पर-लोक दोनों साथ होंगे। प्रसन्नता हर कहीं होगी।'

'सही। पर जिस चाह की पूर्ति के हेतु मैं तुम्हारे यहाँ आ रहा हूँ, वह क्या पवित्र नहीं? क्या वह स्वार्थ-रहित नहीं है। क्या उसमें साधुता नहीं है? क्या उस चाह में कहीं कलंक है?' सेनापति का हृदय दुखित था 'मेरी व्यथा समझो नीरा। मुझे तुम्हारे प्रेम पर विश्वास और भक्ति है। मैं भी उसी योग्य बनना चाहता हूं। बना लो नीरा।'

'मुझे तुम्हारा सब कुछ विश्वास है सेनापति लेकिन व्यथा का मूल कारण मेरी प्राप्ति नहीं है? मैं तो तुम्हारी कब की हो चुकी हूँ। तुम्हारी व्यथा का कारण, तुम्हारे अन्तर में कहीं छिपी हुई कामना की जागरुकता है। कामना का शमन, मनुष्य को उसके महान शत्रु 'निराशाओं' से मुक्ति कराती है। निराशाओं के कारण क्लेश और सारी व्यथायें मिलती हैं। इसे जरा निकाल कर देखो। मैं तुम्हारे में कब की विलीन हुई मिलूंगी।'

सेनापति कुछ समझ न सका। वह चुप हो गया। उँगली से घास कुरेदते हुये सोचता रहा। नीरा उसके चेहरे की ओर देख रही थी। कुछ समय उपरान्त सेनापति ने सिर उठाया 'कहने के लिये तो तुम सब कुछ कह सकती हो। तुम्हारा मुँह नहीं रोका जा सकता और न तुम्हारे तर्क को। परन्तु बहेलियों के साथ साथ विश्वास भी प्रकट करना, हम दोनों की आत्माओं में अन्तर भी न मानना और साथ ही स्पर्श और समीपता के भय से सदैव भय-भीत होते रहना कुछ समझ नहीं पाता हूँ। पता नहीं तुम मुझे धोखा दे रही हो या स्वयं अपने को। क्या कहा जाय?'

यद्यपि सेनापति के शब्दों में कड़वाहट थी किन्तु नीरा ने उसी स्वाभाविक ढंग से उत्तर दिया 'उठो। कमरे में चलें।' जैसे उसने सेनापति की बातों को सुना ही न था।

'क्यों?'

'वैसे ही। अब यहाँ अच्छा नहीं लगता। रात भी अधिक हो गई है। नीरा उठ गई।'

अपने पूजा वाले कक्ष में हरीपन्त को बैठाकर वह लगे हुये दूसरे कमरे में चली गई। 'अभी आई।' वह अन्दर से बोली।

थोड़ी देर के लिये स्तब्धता छा गई। परन्तु यह स्तब्धता अधिक देर तक नहीं रह पाई। अन्दर से नीरा ने पुकारा 'अन्दर आ जाओ। इधर ही बैठेंगे।'

हरीपन्त अन्दर घुसा ही था कि उसे काठ मार गया। उसकी आँखें खुली की खुली रह गईं। बिस्तर बिछे पलंग के समीप नीरा नग्न खड़ी थी। शरीर पर एक भी ढकाव नहीं था। वह धीरे से बोली 'आओ। यही तो चाहते थे। धोखा का भ्रम क्यों रखा जाय। आओ। समीप आओ।'

'नीरा...' सेनापति चिल्लाया। उसने अपनी हथेलियों से मुँह ढँक लिया और उलटे पाँव शीघ्रता से बाहर भागा।

तीस

मण्डलेश्वर से रघुनाथराव की स्त्री आनन्दीबाई बुरहानपुर जा रही थी। वहाँ से वह अपने पति के साथ झाँसी चली जायेगी। सूचना पहले ही दे रखी थी अतः रघुनाथराव बुरहानपुर पहुँचकर प्रतीक्षा करने लगा आनन्दीबाई आई। उस दिन विश्राम कर के दूसरे दिन चलने का निश्चय हुआ।

रात्रि में निस्तब्धता आ चुकी थी। फैले हुये डेरे में सभी नौकर-चाकर सो रहे थे। केवल रघुनाथराव के खेमे में कुछ फुस फुसाहट की आवाज आ रही थी 'ले'''...किन करता क्या', रघुनाथराव कह रहा था 'उसके अतिरिक्त और कोई चारा न था। विवश होकर वैसा करना पड़ा।'

'सो तो ठीक किया। अब आगे के लिये क्या सोचा है?' आनन्दीबाई ने पूछा।

'तुम्हारे चलने के पहले उसका कोई पत्र आया था।'

'हाँ। तभी तो आने में देर हुई। मैं समझती हूँ भाग चलना ही उचित होगा। इस बार तुम्हारा पूना पर अधिकार अवश्य हो जायेगा। वह बंगाल से एक बहुत जड़ी सेना लेकर आया है। बड़ेगाँव में तुम्हारे पराजित होने के बाद ही उसका पत्र आया था। उसके बाद कई पत्र आये। वह चाहता है कि हमलोग किसी प्रकार मराठों के चंगुल से निकल कर सूरत पहुँच जायँ।'

'मुझे भी इसी प्रकार के समाचार दिये गये हैं। बड़ेगाँव की पराजय से अंग्रेजों की प्रतिष्ठा को एक बड़ा धक्का पहुँचा है। वे इसका बदला अवश्य लेंगे। किसी-न-किसी प्रकार अब उन्हें नाना को नीचा दिखाना है। समर्पण के पहले बड़ेगाँव में इस प्रकार की मेरी बातें अंग्रेजों से भी हुई थीं। यह सब कुछ तो है। मुझे हर तरह से फायदा है लेकिन प्रश्न है निकल भागने का। यह किस प्रकार होगा?'

'क्यों ? तुम्हारे पास सैनिक नहीं हैं ?

'हैं तो, लेकिन परिणाम उलटा बैठा तब। फिर कहीं के न होंगे। उस समय नाना से जीवन दान मिलना भी कठिन हो जायेगा। इसे सोच लो।'

'तब ?'

रघुनाथराव ने कोई उत्तर नहीं दिया। आनन्दीबाई भी चुप हो गईं। दोनों सोचते-सोचते कब सो गये नहीं मालूम।

बुरहानपुर से रघुनाथराव का डेरा नर्मदा के किनारे पहुँचा। पार करने के लिये नावों इत्यादि का प्रबन्ध होने लगा। डेरे पड़ गये। रघुनाथराव की विशेष देख-रेख के लिये हरी बाबा जी जो साथ-साथ चल रहे थे बुखार आ जाने के कारण आज अपनी रावटी से न निकल पाये। भगोड़े को इतना अवसर बहुत था। पास खड़ी बैलगाड़ी से उसने बन्दूक उठा ली पहरेदारों को मारा। बन्दूक की आवाज सुनकर हरी बाबा जी बाहर निकले परन्तु कुछ कहने के पहले उनका भी काम तमाम हो गया। भड़-भड़ में भगोड़ा निकल भागा। नदी पार किया और सूरत की ओर चल पड़ा। बंगाल से आया हुआ सेनापति गोडार्ड अपनी सेना सहित उसकी वहाँ प्रतीक्षा कर रहा था।

रघुनाथराव के भागने की सूचना मिली। नई आपत्ति की आशंका से फिर सब चिन्तित हो उठे। रंग में भग हो गया। हर कहीं यही चर्चा थी। विशेषतः राजनैतिक क्षेत्रों में बड़ी उलझन। सभी नाना साहब से मिलते। उनके मनो-भावों को समझना चाहते परन्तु उनकी गंभीरता कुछ प्रकट न होने देती। वे मौन थे। राज-व्यवस्था में तल्लीन थे। नानावाड़ा से शनिवार वाड़ा और शनिवार वाड़ा से नाना वाड़ा—यही उनकी दौड़ थी। लोगों से धीरे-धीरे मिलना-जुलना भी उनका बिल्कुल बन्द होता जा रहा था। जो लोग उनसे मिलने जाते, उनसे वे कम बोलते और गंभीर रहते। हँसी मानो उनसे विदा ले चुकी थी। कामों की अधिकता और उसकी पूर्ति की संलग्नता ने उनके स्वभाव को पूर्णतः बदल दिया था। वे अत्यधिक गम्भीर और नियमित हो गये थे। उनके व्यापक जीवन का क्षेत्र सिमट कर अब अधिक संकुचित हो

गया था। उसके सम्मुख अब केवल एक लक्ष्य था और वह था, अपने देश को फिरंगियों से मुक्त करना।

उन्हें पूर्णरूप से विदित था कि अकेला पेशवा साम्राज्य अंग्रेजों की धसती हुई शक्ति कील को उखाड़ नहीं सकता, केवल कुछ समय के लिये धंसने की गति को रोक ही सकता है। और शायद एक समय ऐसा भी आये जब मराठों की यह भी शक्ति जाती रहे और परिणाम-स्वरूप स्वयं पेशवा साम्राज्य गोरों के आधीन हो जाय इसलिये सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बांधना आवश्यक था। टोपी वालों की चालें, उनकी न समझ में आने-वाली नीति और मनोभावों को समझाना था। उन्हें उसके लिये कटिबद्ध करना था।

चेतना की चिनगारी वे फैला ही चुके थे अब केवल फूंक कर उसे प्रज्वलित करना था। भयंकर लपटें निकालती थीं। पवनसुत महावीर द्वारा फूकी हुई लंका की लपटें। उन्होंने मैसूर के राजा हैदरअली को लिखा—

राजा साहब,

'अग्रेजों की उत्तेजना बर्दाश्त के बाहर हो गई है। इन पाँच सालों के दरमयान में वे सब कुछ भूल चुके हैं। उन्हें न तो अपनी की हुई संधियों का ख्याल है न वायदों का। वे जोश भरे हमलों पर हमले करते जा रहे हैं। पहले ये इतनी खूबसूरती और लुभावने तरीकों से वायदे करते हैं कि यकीन होते देर नहीं लगती और उस वक्त ऐसा मालूम होता है कि इनसे अधिक इमान्दार और विश्वासपात्र दुनियाँ में दूसरा नहीं। लेकिन यह धोखे की टट्टी बहुत दिनों तक नहीं टिक पाती। इनकी दुष्टपूर्ण प्रतिभा की कलई फौरन खुल जाती है। किसी राज्य में खिलाफत करने वाले व्यक्ति को अपनी ओर मिलाकर उस रियासत को तहस-नहस करना, इनका ध्येय बन गया है। इनका खास सिद्धान्त है—फूट डालो हड़प लो। ये स्वार्थ में इतने अंधे हैं कि इनके लिये लिखित संधियों और प्रतिज्ञाबद्ध वायदों की कोई वकत नहीं। सिर्फ ईश्वर ही इनके घृणित कामों की गहराई का अन्दाज लगा सकता है। ये पुना, नागपुर, मैसूर, और हैदराबाद के राज्यों को, एक दूसरे के खिलाफ लड़ाकर या हमदर्दी

दिखाकर, एक के बाद एक को अपने अधिकार में कर लेना चाहते हैं। हिन्दुस्तानियों की दृढ़ता को किस प्रकार छिन्न-भिन्न किया जा सकता है शायद यह तरीका, इनसे बढ़िया दूसरा नहीं जानता। फरेब से तफर का डालना तथा हुकूमत की अमन-चैन को बरबाद करने की हुनर में ये माहिर हैं।

'इसलिये इन सारी परिस्थितियों और फिरंगियों की बढ़ती हुई शक्ति और उनकी फरेबी को मद्दे नजर रखते हुये जिस काम की जरूरत है, उसे आप अच्छी तरह समझते हैं। अब खास जरूरत है हम सबको एक में बंध जाने की। उम्मीद है आप की मदद से मैं अन्य व्यक्तियों को इस पवित्र कार्य के लिये अधिक सरलता से अपने गुट में ला सकूँगा। आशा है आप ऐसे दूरदर्शी महानुभाव का सहयोग प्राप्त हो सकेगा। उत्तर आने पर मैं एक योग्य सलाह-कार को पूरी जानकारी तथा अन्य सुझावों और गुप्त मामलों के साथ आप के पास भेजूँगा।'

— नाना फड़नवीस

इस महान राजनीतिज्ञ की राजनीतिज्ञता मानो अपने सीमा का उल्लंघन करने जा रही हो। शनिवार बाड़ा के एक कक्ष में बैठे हुये भारत की सारी शक्तियों को एकता की सूत्र में बाँधना तथा भगवा ध्वज की छत्र-छाया में एकत्रित करके, अँग्रेजों के विरुद्ध लड़ना और उसमें सफलीभूत होना—अपना मिसाल एक अलग रखता है। उसकी लेखनी चल रही थी और भारत का कोना-कोना सिमिटता हुआ, बँधता हुआ, उसके समीप चला आ रहा था। उसने जंजीरा की सिद्दी नवाब जो मराठों का कट्टर दुश्मन था—लिखा—

नवाब साहब बहादुर

मैं आपका दुश्मन हूँ और हमेशा रहूँगा। आप मेरे दुश्मन हैं और आप को भी मुझसे दुश्मनी रखनी चाहिये। चाँद सूरज बदल सकते हैं। उनकी रफ्तार बदल सकती है लेकिन जब तक आप और हम जिन्दा रहेंगे, हमारी दुश्मनी मिट नहीं सकती। बदल नहीं सकती। मगर हाँ, अगर हम दो भाइयों के बीच तीसरा कूद कर नाजायज या जायज फायदा उठाना चाहे तो मैं उसे

गवारा भी नहीं कर सकता। वह पहले दुश्मन मेरा होगा उसके बाद आपका। और यही चीज आप भी करेंगे। हम अपनी दुश्मनी के हद में बाहर निकल सकते हैं लेकिन तीसरे को दखल देने की जरूरत नहीं। तीसरे से मेरा मतलब अँग्रेजों का है। आप इनकी नीयत को अच्छी तरह समझते हैं। उसे मुझे समझाने की जरूरत नहीं। आपने दुनिया ज्यादा देखी है। मैं अब भी आपके सामने नादान हूं। दो भाइयों के बीच तफरका डालकर अपना काम बनाना—ये बहुत अच्छा जानते हैं। हम आप एक हैं। हमेशा एक रहेंगे। हिन्दुस्तान हम दोनों का है। यह मिलकियत चाहे हमारे पास हो या आपके। है तो हम दोनों में किसी एक ही के पास। लेकिन किसी तरह, जैसे आसार नजर आ रहे हैं, इन फरेबों के पास चली गई तो हम कहीं के न होंगे।

ज्यादा लिखने की जरूरत नहीं। यह मेरी गुस्ताखी होगी। कुछ दिनों के लिये आपसी दुश्मनी भूल कर मेरा साथ दीजिये ताकि मैं इन टोपी वालों को हिन्दुस्तान से बाहर निकाल सकूँ। मौका अच्छा है। काम बन सकता है। फिर चाहे हम आप हमेशा लड़ते ही क्यों न रहें। उम्मीद है, मेरी राय आप को पसन्द आयेगी। मेरा खास वकील जा रहा है। और बातों को भी वह साफ तरीके से आप के सामने रखेगा।

—नाना फड़नवीस

हैदराबाद का निजाम अली पहले से मराठों के साथ था। इन्दौर के तुकोजी होलकर और ग्वालियर के महादजी शिंदे साथ-साथ थे ही। उधर बड़ौदा के गोविन्दराव गायकवाड़ और फतेह सिंह गायकवाड़, दोनों भाई, राज्य के लिये आपस में लड़ रहे थे। परन्तु कौन-सा पक्ष विजयी होगा इसका अनुमान ठीक-ठीक नहीं लग रहा था। इसलिये नाना साहब के वकील दोनों स्थानों पर काम कर रहे थे।

इधर नाना साहब का वकील नागपुर के भोंसले के पास भी पहुँचा। पत्र में नाना साहब ने लिखा—'× × × × स्वामी के हितार्थ हम सब का अर्पित हो जाना अपना धर्म है। इन मंडराती हुई आपत्तियों और आपदाओं

को सदैव के लिये नष्ट कर देना अत्यन्त आवश्यक है। नाबालिग पेशवा की देख रेख और साम्राज्य को दूसरों के चंगुल से बचाने का सारा उत्तर-दायित्व आप लोगों पर है। यदि साम्राज्य नष्ट हुआ तो एक एक सभी नष्ट हो जायेंगे। कोई भी इन फिरंगियों का साथ देकर अपने को पनपा नहीं सकता। अवसर अच्छा है। सम्पूर्ण भारत हम लोगों की ओर आशा भरी दृष्टि से देख रहा है, अपनी शक्ति बढ़ रही है। अंग्रेज भयभीत हो चुके हैं। अपना कर्त्तव्य सरलता से निभाकर साम्राज्य और देश दोनों की रक्षा और मर्यादा को बढ़ा लीजिये। आज देश को मराठों की आवश्यकता है। इनसे भरोसा है। आप के तत्पर होने से स्वामी, साम्राज्य और देश तीनों की मर्यादा में चार चाँद लग जायेंगे। महादजी शिंदे, तुकोजी होलकर, निजाम अली और हैदरअली सब आपकी ही प्रतीक्षा में हैं। आप अब जैसा उचित समझें। श्रीमन्त पन्त प्रधान पेशवा माधवराव की आत्मा अत्याधिक प्रसन्न होगी।'

—नाना फड़नवीस

नाना साहब को इतना ही नहीं करना था। उन्हें तो सारे भारत को एक धागे में बाँधना था। हिन्दुस्तान के कोने-कोने में करील के काँटे की भाँति चुभती हुई अँग्रेजी शक्ति को निकाल फेंकना था। डच कारखाने का कारकुन वैन्डरग्राफ्ट को प्रत्येक प्रकार की सहायता देकर सूरत को अधिकार में कर लेने की संधि हुई। पुर्तगालियों से नाना साहब की अलग संधि हुई। गोआ की सरकार चाहती थी, नाना साहब का प्रस्ताव आने पर उसे काहे की हिचक। संधि हो गई। वहाँ तैयारियाँ होने लगीं।

इधर दिल्ली के तख्त में अँग्रेजी घुन लग चुके थे। धीरे-धीरे एक-एक चीज बादशाह सलामत से छिनती जा रही थी। समझते हुये भी संतोष किया जा रहा था। बादशाह मजबूर था। नाना साहब का वकील वहाँ भी खत लेकर पहुँचा। जहाँपनाह के सामने खत पेश किया गया। उन्होंने पढ़ा। गौर किया। और तैयार हो गये। वकील ने वजीर मिर्जा नजफ खाँ से भी मुलाकात की लेकिन अलहदा। नाना साहब ने खत में लिखा था—

वजीरे आजम मिर्जा नजफ खाँ साहब बहादुर,

वक्त की बात है। कभी दिल्ली के कदमों पर सारी दुनियाँ लोटती थी। उसकी तिरछी भवों पर समुद्र की लहरें लोट जाती थीं। पहाड़ रौंद डाले जाते थे। जमीन हिलने लगती थी। लेकिन आज वे सारी चीजें ख्वाब सी होती जा रही हैं। क्या उस आलम को लौटाया नहीं जा सकता? लौटाया जा सकता है। यह बड़ी चीज नहीं है। हिन्दुस्तान अब भी बादशाह सलामत और वजीरे आजम को वही समझता है। सब के दिलों में इज्जत वही है। लेकिन वह कब तक? अगर रवैया ऐसी ही रही तो बहुत जल्द पासा उलटा दिखाई देगा। अँग्रेजों की ताकत जिस तेजी से बढ़ रही है, उसे आप खुद देख रहे हैं। आज आपने पूरब छोड़ा है। कल उत्तर छोड़ना पड़ेगा। परसों पश्चिम और नरसों दिल्ली। सारा हिन्दुस्तान उनके कब्जे में होगा और हम आप गुलाम। और शायद वह पराधीनता दुनियाँ में अपना सानी भी नहीं रखेगी। खाना होगा लेकिन लोग भूखे मरेंगे। कपड़ा होगा मगर किसी को पहिनने का हक न होगा। जुर्रत न होगी। रियाया सताई जायेगी। तड़पाई जायेगी। लोगों पर मनमाने जुल्म होंगे लेकिन इन्साफ न होगा। सभी कुछ होंगे और सभी बर्दाश्त होगा।

इन सब सारी मुसीबतों से बचने का सिर्फ एक ही रास्ता है — और वह है हमारी आपकी एकता। अगर आज हम कंधे से कंधा मिलाकर इसकी खिलाफत में खड़े हो जाँय तो कोई वजह नहीं कि इन गोरों की जमात हिन्दुस्तान छोड़-कर भाग न खड़ी हो। भगाना इन्हें आप भी चाहते हैं मगर मजबूर हैं। कंधा सटाने वाला कोई नहीं मिलता। मैं तैयार हूँ। मुझे मदद दीजिये। और आप देखेंगे कितनी जल्दी ये मुल्क छोड़ कर भागने की तैयारी करने लगते हैं। मैं इनकी रग रग में घुस चुका हूँ। इनकी बदनीयती और फरेबों को समझ चुका हूँ। इनको उखाड़ते मुझे देर न लगेगी बशर्ते आप मेरे साथ हों। मेरे इस सुझाव पर गौर से आप सोचें और फिर अमल करने की कोशिश करें। उम्मीद है बादशाहत की लौ फिर से धधकने लगेगी।

जल्दी अपनी राय कायम करके मुझे खबर देने की तकलीफ गवारा करें।

नाना फड़नवीस

नाना साहब का यह कार्य इतनी सतर्कता और गुप्त रीति से चल रहा था कि अँग्रेजों को भनक नहीं थी। भारत के कोने-कोने से मित्रता और सहयोग के सन्देश आने लगे। हैदर अली का वकील पूर्ण आश्वासन के साथ आया। मैसूर में तैयारी होने लगी। जंजीरा के नवाब ने पूरा सहयोग देने का वायदा किया। बादशाह सलामत और वजीरे आजम खुश थे। वहाँ से नाना साहब को शाबाशी की बधाइयाँ आईं और सूचना मिलते ही प्रत्येक प्रकार के साधनों के प्रबन्ध करने का जबान दिया गया। मराठा साम्राज्य सम्पूर्ण भारत—देशी और विदेशी सभी का नेतृत्व कर रहा था। लगभग सभी तैयार हो चुके थे। अब प्रतीक्षा थी नेता के आदेश की।

ख

मित्रता स्थापित होते ही हैदर अली ने तुलयाको नाना साहब के हाथों में सौंप दिया। तुलया पूना लाया गया। उसके सारे बाल मूड़े गये। मुँह और सिर में कालिख पोत कर गदहे पर बिठाया गया नगर के गलियों-गलियों में घुमवाया गया। तब शनिवार बाड़ा के सामने वाले बड़े बरगद में उलटे सिर टाँग दिया गया। घंटों टँगा रहा। वह प्रायः अधमरा हो चुका था जब उसे खोल कर गिरा दिया गया। और तब उसे छूरे से छेद-छेद कर, तड़पा-तड़पा कर मार डाला गया। नाना साहब को एक तरफ से कुछ शान्ति मिली।

इक्तीस

(क)

गवर्नर जनरल हेस्टिंग्स के लिए 'हीनोज दिल्ली दूर अस्ते' वाली मसल नहीं थी। गोडार्ड उस समय का सबसे योग्य सेनापति सूरत पहुँच चुका था। भगोड़ा ने फिर भाग कर अंग्रेजों की शरण ले ली थी। अब गवर्नर जनरल को किसकी चिन्ता उसने तत्काल पूना दर्बार को लिखा '× × × बड़े गाँव की संधि अमान्य है। बम्बई सरकार को किसी प्रकार की संधि करने का अधिकार नहीं। उसने जो कुछ भी किया गलत किया। इसलिये मैंने जनरल गोडार्ड को सूचना दे दी है और आप को भी सूचित किये देता हूँ कि यदि कर्नल अपटन द्वारा की हुई संधियों की बुनियाद पर फिर से वार्ता प्रारम्भ करना चाहें तो जनरल गोडार्ड से बात करें। × × × देश में शान्ति स्थापन से सुख की वृद्धि होती है। × × ×।'

नाना साहब ने हेस्टिंग्स और गोडार्ड दोनों को लिखा '× × × संधि स्थापना से देश में सुख और सम्पत्ति की वृद्धि होती है, इसमें सन्देह नहीं। मैं आपसी युद्ध बढ़ाकर जनता को दुखी करना नहीं चाहता। जैसा आपने लिखा है बड़े गाँव की संधि अनधिकृत और अमान्य है। उपयुक्त है। मैं इसमें आपत्ति नहीं करता। मैं वार्ता आरम्भ क ने के लिये तैयार हूं। लेकिन प्रश्न उठता है रघुनाथराव की सुपुर्दगी का। जब तक वे मेरे सुपुर्द नहीं किये जाते, किसी प्रकार की वार्ता कैसे शुरू की जा सकती है। × × ×।'

हेस्टिंग्स को नाना साहब का उत्तर मिला और साथ ही उनके द्वारा की हुई तैयारियों की। ज्ञापक जैसे-जैसे बताता जा रहा था हेस्टिंग्स त्यों-त्यों सूख रहा था। उसके चेहरे पर हवाईयाँ उड़ने लगीं। ज्ञापक को जैसे भी हो एक एक बातें मालूम थीं। उसने भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक के ब्योरेवार

राजाओं और सामन्त सरदारों के नाम गिनाये जो सब नाना साहब के नेतृत्व में संगठित, अंग्रेजी सत्ता को जड़ से उखाड़ फेकने के हेतु तत्पर हो चुके थे। हेस्टिंग्स के पैरों से जमीन खिसक गई। उसके मस्तक पर पसीने के कण फैल गये। वह उठकर टहलने लगा। वह कुछ भी नहीं समझ पा रहा था। बुद्धि काम नहीं दे रही थी। सोचने की शक्ति शिथिल पड़ती जा रही थी।

हेस्टिंग्स आकर बैठ गया। थोड़ी देर तक सोचते रहने के उपरान्त सिर उठा कर बोला 'लेकिन सूबेदार साहब ताज्जुब है। इतने दिनों से नाना तैयारी कर रहा है और मुझे इसकी भनक तक नहीं।'

'जी हुजूर। खैर, आप तो सरकार काफी दूर पर हैं। बम्बई सरकार जो बाजू में है उसे तक खबर नहीं। कितनी बड़ी बात है।'

'हूं।' हेस्टिंग्स कुछ सोचने लगा। कुछ क्षण सोचता रहा और अचानक उठकर अन्दर चला गया।

रात को नवाब वजीर अवध बुलाया गया। हेस्टिंग्स नवाब को घूरते हुये बोला 'नवाब साहब, रात में आप को तकलीफ देने की खास वजह थी। आप को शायद अभी नहीं मालूम, मराठों ने हमारे खिलाफ लड़ाई शुरू कर दी है। इस बार मैं मराठों को हमेशा के लिए मिटा देना चाहता हूं। तबीयत परेशान हो चुकी है। रुपयों की जरूरत पड़ेगी। इसलिये कम से कम डेढ़ करोड़ रुपये का इन्तजाम आप को करना है और जल्द करना है। इसमें देर न होने पावे। समझे आप?'

नवाब के मुँह से कोई आवाज नहीं निकली। 'डेढ़ करोड़ रुपया और जल्द'—वह गवर्नर जनरल को विस्फारित नेत्रों से देखता रह गया। उसके बदन में कंपकपी दौड़ गई। उसने काँपते हुए हाथों से अपनी पगड़ी उतार कर हेस्टिंग्स के पैरों पर रख दी और गिड़गिड़ाकर बोला 'गरीब परवर अब यही बाकी है। इसे भी ले लें। मुझे इसकी जरूरत नहीं।'

'इस रोने-धोने से काम नहीं चलेगा नवाब साहब। रुपयों का इन्तजाम तो करना ही होगा।' हेस्टिंग्स ने अधिक रूखे स्वर में कहा।

'लेकिन गरीब परवर इन्तजाम कहाँ से करूँ ? कहीं कुछ हो भी। मुझे मार डालिये हुजूर। मार डालिये। दूसरा कोई चारा नहीं। मैं.........।'

'कहीं से हो,' हेस्टिंग्स उठ खड़ा हुआ 'तुम्हें इन्तजाम करना है। समझे। जाओ। जल्द इन्तजाम करो।'

नवाब ने खाना-पीना छोड़ दिया। तीन दिनों तक अन्नजल न ग्रहण करने के कारण जब उसकी हालत खराब होने लगी तब गवर्नर जनरल को विश्वास हुआ कि अब न उसके पास कुछ है और न कुछ मिल ही सकता है। सब कुछ पहले ही चूसा जा चुका था। उसने उसकी जान बख्श दी।

चौथे दिन गवर्नर जनरल ने अपनी समिति की बैठक बुलाई। परिस्थिति बड़ी शोचनीय हो रही थी। हेस्टिंग्स ने मराठा युद्ध में व्यय हुये धन का आँकड़ा देते हुये बताया कि अबतक पाँच करोड़ रुपया खर्च हो चुका है और अभी और रुपयों की आवश्यकता है। किन्तु रुपयों के प्रबन्ध का कोई जरिया नहीं दिखाई पड़ रहा है। समिति मे बड़े समय तक विचार-विमर्श होते रहे। अन्त में सर्व-सम्मति से निर्णय हुआ कि कलकत्ते के सारे व्यापारियों से जैसे भी हो अधिक से अधिक रुपया वसूल किया जाय। उनके पास और कोई साधन नहीं था।

हेस्टिंग्स को भी पहलू अख्तियार करने पड़े, उसने सब किया और व्यापारियों से युद्ध के हेतु धन इकट्ठा हुआ।

ख

रघुनाथराव की सुपुर्दगी नहीं होने को थी, इसे नाना साहब पहले से जानते थे। उनके लिये उसका उपयुक्त अवसर आ गया। अतः उन्होंने युद्ध के संचालन का बटवारा किया और सम्बन्धित व्यक्तियों को शीघ्र ही युद्ध आरम्भ करने का आदेश दिया। भोसले को बंगाल पर धावा बोलना था। हैदरअली को मद्रास पर। नाना को स्वयं गुजरात और पूना की रक्षा करनी थी और निजाम अली का कार्य था पूर्वी समुद्री तट पर केवल अंग्रेजों को धमकाते रहना।

महादजी शिंदे ने अपनी सेना के साथ गुजरात को प्रस्थान किया। हरिपन्त

फड़के, तुकोजी होलकर और परशुराम भाऊ के सेनापतित्व में अलग-अलग सेनायें खंडला की ओर चल पड़ीं—आने वाले गोडार्ड के मुकाबिले में मूधजी भोंसले के लड़के चिमना जी के संरक्षण में बंगाल पर चढ़ाई करने के हेतु तैयारियाँ होने लगीं। परन्तु दुर्भाग्य को क्या कहा जाय। स्वार्थपरता और लोलुपता ने केवल भारत को ही नहीं वरन् समय समय पर उत्पन्न हुये उन महान विभूतियों को भी खा डाला है जिनके जीवन-चरित्र को पढ़ कर आज भी हृदय फटा जाता है।

युद्ध की तुरही बज उठी। लड़ाइयाँ होने लगीं।

कूटनिति में प्रवीण हेस्टिंग्स इतनी जल्दी भारत नहीं छोड़ने वाला था। वह युद्ध में पराजित हो सकता था किन्तु मस्तिष्क की लड़ाई में उसे पछाड़ना सबके मान की बात नहीं थी। अपनी गहराई तक पहुँचने वाले व्यक्ति के विषय में उसे विदित था इसलिये वह उसे बचाकर अपना काम सिद्ध कर लेना चाहता था। उसने बड़ी शीघ्रता से जाल बिछाया। जनरल गोडार्ड को कुछ गुप्त आदेश दिये। फतेह सिंह गायकवाड़ अंग्रेजों से मिल गया। गोविन्दराव को बड़ौदा छोड़कर भागना पड़ा। फतेह सिंह को अंग्रेजों ने बड़ौदा का उत्तराधिकारी घोषित किया। उधर भोंसले के कारभारी दीवाकरपंडित से भी हेस्टिंग्स गुप्त वार्ता कर रहा था। चिमना जी की तीस हजार सेना फाटक आकर रूक गई। लेकिन बात तय न हुई। जमीन आसमान का अन्तर था। अंग्रेज सोलह लाख दे रहे थे और माँग थी पचास लाख की। शिविर उखड़ने लगे। चिमना जी वहाँ से धिकनाल दुर्ग पर आक्रमण के हेतु बढ़ा। हेस्टिंग्स द्वारा भेजा हुआ एन्डरसन घबड़ाया। उसने गवर्नर जनरल के पास कासिद दौड़ाया। पचास लाख की मंजूरी आ गई। बात पक्की हो गई। मराठे सैनिकों को रुक जाना पड़ा। भोसले ने बंगाल पर धावा करने से इन्कार कर दिया। अंग्रेज हिन्दुस्तान में टिक गये।

भोंसले की गद्दारी का समाचार सुनकर नाना साहब को जो ग्लानि हुई वह अवर्णनीय है। जैसे किसी ने उनके शरीर का सारा खून चूस लिया हो। उनकी

रूआसी सूरत हृदय की ऐंठन को बर्दाश्त करने में असमर्थ होने लगी। ऐन मौके पर इतनी बड़ी गद्दारी! वे सोच नहीं पा रहे थे। वे गाव-तकिये के सहारे लेट गये। घण्टों चिन्ता करते रहे। जिस मंज़िल की उन्होंने कल्पना की थी, जिसतक पहुँचने की चेष्टायें और परिश्रम किये थे—सब पर पानी फिर गया। उनके बढ़ते हुये उत्साह में शिथिलता आ गई। निर्बलता छा गई। परन्तु अन्त में, यह सोचकर कि ढहती हुई इमारत को जहाँ तक तूफ़ानी और वर्षा के थपेड़ों से रोका जा सके, रोकना उनका कर्तव्य और धर्म होगा। वे फिर अपने कर्म में जुट पड़े। भोंसले के पास वकील भेजा। पत्र लिखा। अंग्रेजों की कूटनीतिज्ञता, उनकी धूर्तता और नीचता को समझाया। राष्ट्र का आदर्श और उसकी महानता को बखाना। पेशवा और उसके प्रति किये हुये शपथों की याद दिलाई। लेकिन भोंसले टस से मस नहीं हुआ नाना साहब मौन हो गये। ऐसे अवसर पर अन्य किसी प्रकार का कार्य करना भी उचित नहीं था।

इधर मालवा में महादजी और अंग्रेजों की मुठभेड़ हो रही थी परन्तु महादजी की हालत बड़ी डाँवाडोल थी। कर्नल कैमेक बड़ी तेजी से मालवा रौंदता हुआ आगे बढ़ रहा था। मराठों को पीछे हटना पड़ा। कैमेक ने सिपरी को भी रौंदा और फिर सिरोंजे की ओर बढ़ा। नाना साहब को सूचना मिली। शीघ्र ही उन्होंने बलवन्तराव की अधीनता में सेना भेजी और महादजी को ढाढ़स दिया। शिंदे की जान में जान आई। वह सँभला। खाना-पीना छोड़कर पूरी शक्ति लगा दी। दिन रात एक कर दिया। सबेरे से संध्या हो जाती वह घोड़े से उतरने का नाम तक नहीं लेता। सैनिकों में नई चेतना आई। वे मौत से होड़ लगाने लगे। कैमेक का सामना किया और लगातार सात दिनों तक उसके डेरों पर गोला वर्षण होता रहा। भोजन सामग्री का मिलना पूर्णरूप से बन्द कर दिया गया। धीरे धीरे कैमेक मराठों से घिरने लगा। गोट उलटी पड़ने लगी। उसने अवध को अपनी सहायतार्थ सूचना भेजी परन्तु वहाँ से कोई सहायता न आई। अब उसके सामने केवल एक मार्ग था।

कर्नल भागा और शिंदे उसके पीछे हो लिया। वह ज्यों-ज्यों पीछे हटता

गया महादजी की सेना उसे अधिक घेरती गई। क्षुधा पिड़ित फिरंगी महाउलपुर में आकर रुके। इसी बीच कर्नल मियोर अवध से सहायतार्थ आ पहुँचा। परन्तु नागफनी के काटों में बिंधी हुई बेचारी तितली क्या अपनी सहचरी द्वारा जीवन की रक्षा की लालसा कर सकती है। असम्भव ? स्वयं तो मरती ही है साथ साथ उसे भी ले गुजरती है। कर्नल मियोर की वही दशा हुई। आया था कैमेक के रक्षार्थ और शिंदे को पराजित करने किन्तु उलटे लेने के देने पड़ गये। पराजित होते हुये अँग्रेजों की दशा और उमंग में उल्लासित मराठे सैनिकों की उत्तेजना ने उन्हें अधिक कर्मशील और उत्साहित कर दिया था। कुछ छिटपुट लड़ाईयों के उपरान्त मियोर को भी हथियार डालने पड़े। महादजी ने उसे भी घेर लिया था। असहाय टोपी वालों को संधि का सहारा पकड़ना पड़ा। झंडा उठा दिया गया। वार्ता शुरू हुई।

ग

मद्रास में, द्राविड़ देश का महाप्रतापी हैदर अली अपनी की हुई प्रतिज्ञा की पूर्ति कर रहा था। सत्तर हजार सैनिकों के साथ उसने सारे मद्रास और कर्नाटक को रौंद डाला। मद्रास और कर्नाटक पर उसकी तुरही बजने लगी। जिस स्थान पर, जहाँ भी, जितनी संख्या में अंग्रेज उसका सामना करने आते वह वीर, देश का सच्चा सेवक जिसके अन्तर में केवल एक ही चिन्ता व्याप्त हो रही थी 'देश को फिरंगियों से मुक्त करना है', टोपी वालों को परास्त करता और अधिक से अधिक बन्दी बनाता हुआ आगे बढ़ता जा रहा था। जनता हैदर-अली को अपना सर्वस्व समझने लगी। उसकी जयजयकार होने लगी। उसके गीत गाये गये। कवियों और लेखकों द्वारा वह विभिन्न उपनामों और उपाधियों से विभूषित हुआ। स्वयं हैदर अपने को स्वतंत्रता की लड़ाई में सफल देखकर भाव विभोर हो उठा। श्रीरंगपट्टन स्थित राजभवन की दीवारें अनेक युद्धों से चिन्तना किये गये। जनता संतोष की साँसें लेने लगी। उन्हें विश्वास हो गया था कि टोपी वालों की सत्ता मिट चुकी है।

मद्रास सरकार बिलकुल हताश और निराश हो गई। उसे न अब किसी से सहायता की आशा थी और न उस आई हुई सहायता से हैदर को परास्त करने की सम्भावना। उसे हर कहीं की स्थितियों का भी ज्ञान हो चुका था। अब न गवर्नरजनरल से पूछने की जरूरत थी और न आये हुये आदेशों पर अमल करने की सामर्थ्य। अतः समिति के सदस्य लार्ड मैकार्ट ने, सर आयर कूट, सर एडवर्ड ह्यूज और जॉन मैकफरसन ने सम्मिलित नामों से नाना साहब को, पेशवा को सम्बोधित करके एक पत्र लिखा '......केवल हमारी ही सरकार नहीं वरन् कम्पनी तथा हमारा सम्पूर्ण राष्ट्र शान्ति स्थापन के हेतु आपसे प्रार्थना करता है। और आपको विश्वास दिलाता है कि हमारे आपके बीच इस हुई संधि को तोड़ने का अधिकार भविष्य में किसी भी कम्पनी के नौकर को न हो सकेगा।। हम अपनी प्रतिज्ञा में सदैव दृढ़ और सच्चे रहेंगे। हम इसकी पुष्टि में अपने राजा को, अपनी कम्पनी को और अपने राष्ट्र को साक्षी देकर शपथ ग्रहण करते हैं कि इस संधि के प्रति हम सदैव वफादार रहेंगे......। संधि की शर्तें चाहे आप जो भी रखें......।'

नाना साहब को पत्र मिला। उनका हृदय उस सच्चे देश भक्त हैदर अली का हथेली पर जान रखकर, भारत माँ को स्वतंत्र करने की निस्वार्थ भावना से की हुई सेवाओं के कारण गद्गद् हो उठा। उनका मुँह, लोगों से हैदर की प्रशंसा करते-करते थका जा रहा था पर हृदय को संतुष्टि नहीं थी। रात्रि में घंटों लक्ष्मी से हैदर अली का बखान करते रहे और बार-बार यही कहते थे कि यदि आज पूरब में भी मुझे ऐसा कोई हैदर मिला होता तो सम्भवतः अब तक फिरंगी समुद्र पार दिखाई पड़ते।

बम्बई की भी हालत कहने योग्य नहीं थी। रसद तथा अन्य सामानों का बम्बई पहुँचना मराठों ने बिल्कुल बन्द कर दिया था। नगर में भूखमरी फैल गई थी। ताँबे का एक टुकड़ा बराबर था कई सोने के सिक्कों के। बम्बई के चारों ओर हंगामा बढ़ता ही जा रहा था। नित्य सन्देश पर सन्देश कलकत्ता को जा रहे थे। परन्तु अभी तक वहाँ से कोई प्रबन्ध न हो सका।

ख

इस ओर बंगाल, मद्रास और बम्बई की सम्मिलित सेनाओं के साथ जनरल गोडार्ड पूना पर अधिकार करने के हेतु पहाड़ी मार्गों से बढ़ता हुआ खंडला की ओर आ रहा था। पूना में नाना साहब के पास सूचना आई। लेकिन उन्हें पहले से ज्ञात था। वे तब भी मौन रहे। वे बड़े गाँव की संधि को दुहाराना चाहते थे। उनकी तैयारियां बहुत पहले हो चुकी थीं। पूना किसी भी क्षण खाली करके शान्ति देव को समर्पित किया जा सकता था। सूचना आई – गोडार्ड खंडला पहुँच गया। नाना साहब ने सप्तवर्षीय पेशवा को पुरन्दर भेजा और स्वयं खंडला की ओर चल पड़े।

तले गांव से खंडला तक का सारा प्रदेश एक बार फिर अग्निमय हो गया। धधकती हुई लपटें और उड़ती हुई काली राख के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई पड़ता। अन्न जल की कल्पना करना तो व्यर्थ था। नाना साहब ने परशुराम भाऊ को उनकी सेना सहित कोंकान भेज कर गोडार्ज और बम्बई के बीच स्थापित सम्पर्क को पूर्णतः बन्द कर दिया। गोडार्ड के बड़े-बड़े मनसूबे अपने नाम की ख्याति और नाना को पराजित करने का अहंकार सब धूलधूसरित होने लगे। इतनी बड़ी सेना, घोड़े और गाड़ियों में जुते पशुओं के भोजन का क्या प्रबन्ध हो? पेड़ की पत्तियां और घास तक तो जला दिये गये थे। जनरल एक अजीब चक्कर में फँस गया। सोचा और कुछ था और होने लगा कुछ और। उसने कर्नल ब्राउनी की देख रेख में रसद लाने के लिये एक सेना पानवेल भेजी। परन्तु उधर परशुराम भाऊ किस लिये था? रसद से लदे हुये बैल पानवेल से चले। मराठे छापा मारने लगे। बैलों की छीना झपटी होने लगी। कहीं-कहीं तो डटकर ब्राउनी ने परशुराम भाऊ का सामना भी किया। वह ऐसा करने के लिये विवश था। परिणामस्वरूप जब ब्राउनी किसी प्रकार खंडला पहुँचा तो डेढ़ सौ अँग्रेज और अट्ठारह

अफसर खेत हो चुके थे। और जो कुछ रसद आ पाया, वह नहीं के बराबर था।

सेनापति गोडार्ड ने सोचा—लक्षण वही हैं। उसने इस विषय पर अधिक सोचना पागलपन समझा। वह अपनी बची-बचाई प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिलाकर बन्दी बनाना नहीं चाहता था। उसने शीघ्र निर्णय किया और पीछे भागने की तैयारी हो गई। प्रथम वह लड़ाई के अन्य हथियार तथा बन्दूकों को गुप्त रूप से भिजवा देना चाहता था ताकि मराठों के हाथ ये वस्तुयें न पड़ने पावें। परन्तु नाना साहब से यह भेद कैसे छिप सकता था? उन्हें ज्ञात हो गया। शीघ्र ही उनके आदेशानुसार तुको जी होलकर कुसोर घाट के निचले भागों पर आ डटा। परशुराम भाऊ भी शंकर के समीप और हरीपन्त करला और खंडला के बीच।

गोडार्ड के चारों ओर मराठों की सेनायें घिरने लगी। वह पीछे लौटा। उसका लौटना था कि हरीपन्त अपने सैनिकों सहित टूट पड़ा भयंकर आक्रमण होने लगे। भागते हुये अँग्रेज कट-कट कर गिरने लगे। हथियारों और सामानों की लूट मच गई। गोडार्ड अपनी सेना को इतना भयभीत तथा सारी मानमर्यादा को बलाये ताक फेंक, असहायों की भांति भागते हुये देखकर चिन्तित हो उठा। जनरल इतना कायर नहीं था। उसे कुछ तैश आया। वह कालेपुर में आकर रुक गया। पर क्षणिक आवेश के शान्त होते ही उसकी भी फिर वही दशा हो गई। वह वहाँ से भागा। चौक ग्राम आते आते उसके जान के लाले पड़ गये। उधर सामने तुकोजी होलकर और परशुराम भाऊ की भी सेनायें आ डटीं।

जनरल को चौक ग्राम में रुकना पड़ा। सलाहकारों तथा अन्य पदाधिकारियों से मंत्रणा हुई। सब की राय संधि की थी। लेकिन गोडार्ड इतनी बड़ी बुजदिली के साथ इतनी भारी तौहीनी को किसी भी हालत में गवारा नहीं कर सकता था। वह किसी तरह मराठों के चंगुल से बच निकलना चाहता था।

वहाँ से वह फिर बढ़ा और किसी प्रकार बची खुची सेना सहित पानवेल और पानवेल से कल्यान पहुँचा। जान बच गई। बस।

नाना साहब ने वह कर दिखाया जिसे आज तक किसी ने नहीं किया था।

नाना ने अब भोंसले की ओर दृष्टि दौड़ाई। उसकी गद्दारी उन्हें भूली नहीं थी। उन्होंने मूधोजी को सूचना दी कि 'पेशवा की सम्पूर्ण सेना नागपुर पर चढ़ाई के हेतु आ रही है। वे अपनी रक्षार्थ, जैसी भी चाहें तैयारी कर कर सकते हैं। और यदि आवश्यकता समझें तो अपने मित्र फिरंगियों को भी बुला लें। पेशवा की सेना नागपुर को पराजित करती हुई आगे बंगाल पर आक्रमण करेगी।'

मूधोजी सूचना पाते ही घबड़ा उठा। गोडार्ड के हार की खबर फैल ही चुकी थी। वह बड़ा भयभीत हुआ। उसने फौरन नाना के आये हुये पत्र को हेस्टिंग्स के पास भेजा।

नाना साहब की धमकी कारगर साबित हुई। हेस्टिंग्स के उत्तर आने के पहले ही मूधोजी ने अपनी गल्तियों के लिये नाना साहब से क्षमा तथा भविष्य में सदैव पेशवा के प्रति वफादार रहने की बार-बार शपथें खाईं। नाना को मूधोजी से इतना ही चाहिये था। बात का बतंगड़ बनाकर आपसी युद्ध से कोई लाभ नहीं। यह समय दूसरा था। इससे अपनी ही कमजोरी आती थी। फूट, द्वेष, कलह तथा आपसी स्वार्थ की भावनाओं की अधिक वृद्धि होती थी। उन्होंने मूधोजी को डांट फटकार कर मित्रता स्थापित कर ली। अपने की रक्षा और स्वार्थ-मिश्रित इच्छायें ही तो किये कराये पर पानी फेर देती हैं और समय आने पर दूसरे उससे लाभ उठाते हैं। महादजी की देश-भक्ति में संशय नहीं और न उनकी दूरदर्शिता में। उस युग में उसके समान योद्धा और योग्य सेनापति दूसरा मिलना कठिन था। पेशवा साम्राज्य को शक्ति और मस्तिक दोनों ही प्राप्त थे। किन्तु महादजी के अन्दर बढ़ती हुई अपनत्व की लोलुपता ने सब नष्ट कर दिया। यदि उसके अन्दर भी नानावाली निःस्वार्थ और पेशवा को अपना सर्वेसर्वा समझ कर कार्य करने और बढ़ती हुई विदेशी सत्ता से मुक्ति

पाने की उत्कट भावना होती तो सम्भवतः भारत के इतिहास का कुछ दूसरा रूप हुआ होता।

शिंदे ने नाना साहब को दुबारा धोखा दिया। उसने कर्नल मियोर से एक अलग संधि की। संधि में निर्णय हुआ—जमुना पार के सभी इलाके जिन्हे अंग्रेजों ने अधिकार में कर लिया था ; महादजी को लौटा दिया जायेगा साथ ही बंगाल से आई हुई सारी सेना वापस लौट जायेगी। शिदे को अपने राज्य की अधिक चिन्ता थी। वह प्रथम था और द्वितीय था पूना। वह हेस्टिंग्स और पेशवा, दोनों को सहायक और अपना मानकर, बनाये रखना चाहता था। अन्तर केवल एक गुप्त और दूसरा अगुप्त का था।

बम्बई में पड़ता हुआ अकाल और वहाँ के सरकार की डाँवाडोल परिस्थिति मद्रास सरकार की मनमानी तथा सुलह के लिये अलग से प्रस्ताव और इससे भी अधिक दुखदायी और भय उत्पन्न करने वाली जनरल गोडार्ड के हार की सूचना। हेस्टिंग्स शंकित हो उठा। गोडार्ड जिसके पराजित होने की किसी ने कल्पना तक नहीं की थी, उसे नाना की सेनाओं ने खदेड़-खदेड़ कर मारा। गवर्नर जनरल को भविष्य सोचते देर न लगी। अज्ञात में ज्ञात के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। तब तक मूधो जी द्वारा प्रेषित नाना वाला पत्र उसे मिला। रही सही काफूर हो गई। उसके मस्तिष्क में मानों बिजली कौंध कर छिप गई। कलकत्ते पर नाना का आक्रमण अंग्रेजी सत्ता को ले डूबेगा। इंग्लिस्तान के हाथों से सोने की चिड़िया निकल जायेगी। बना बनाया खेल बिगड़ जायेगा। हेस्टिंग्स ने शीघ्रता की। फौरन संधि के लिये नाना साहब के पास पत्र लिखा।

गवर्नर जनरल का पत्र आया नाना साहब के पास परन्तु संधि वार्ता के हेतु डेविड एन्डरसन महाद जी के पास भेजा गया। वहाँ गुंजाइश थी इस हेतु। नाना साहब समझते हुये भी मौन रहे। आपत्ति नहीं की जा सकती थी। शिंदे ने शर्तों के लिये पूछा। नाना साहब ने सारी शर्तें लिखते हुये हैदर अली की ओर विशेष ध्यान दिखाया। हैदर अली को गुट से निकाल कर किसी प्रकार

को भी संधि न की जाय इसका उल्लेख उन्होंने अपने पत्र में बार बार किया था। वे इन गोरों की रग रग को समझते थे।

शिंदे ने पूना से आई हुई शर्तें एन्डरसन के सामने रख दीं। एन्डरसन बड़े मधुर स्वर में बोला, 'आप जैसा भी कहें मुझे सब मंजूर है महाराज साहब मैं आप के किसी शर्त को काट नहीं सकता। मैं क्या करीब करीब मेरे सभी लोग, खुद गवर्नर जनरल साहब को आप सरीखे व्यक्तियों से युद्ध करके बड़ा पछतावा है। हर आदमी, यहाँ से लेकर इंग्लिस्तान तक आप से दोस्ती कायम करने के लिये फिक्रमन्द है। आप को अपना दुश्मन बनाकर हम किसी भी हालत में चैन से नहीं रह सकते। हमारे गवर्नर जनरल साहब ने यह बिल्कुल ही फैसला कर लिया है कि अब से हमारा आप का एक गुट रहेगा। और जो भी ताकतें हमारे खिलाफ खड़ी होंगी हम साथ साथ उनका सामना करेंगे। उन्हें कुचलेंगे। इसलिये हैदर अली साहब को अपने गुट में लाना ठीक न होगा।'

महादजी अपने दोनों हाथों को सीने पर मोड़ता हुआ जरा सीधा बैठ कर बोला 'एन्डरसन साहब बात तो सही है। हमारी आप की मित्रता प्रत्येक रूप से अधिक उपयुक्त और सुखकर सिद्ध होगी इसमें सन्देह नहीं। किन्तु हैदर साहब को अपने गुट से निकाला भी नहीं जा सकता। उन्होंने हमारी प्रतिज्ञा में बंधकर जिस बहादुरी और लगन से अपने कर्तव्यों की पूर्ति की वह सराहनीय है। उन्होंने जैसा कहा था वैसा ही किया। फिर उन्हें अलग निकाल कर किसी प्रकार की संधि कर लेना अनुचित होगा। आप इसे दूर तक सोचें।'

'इसकी तो मैं भी ताईद करता हूँ महाराजा साहब आप के साथ किये हुये वायदों को हैदर साहब ने पूरी तरह निभाया। उन्हें वैसा करना ही चाहिये था। लेकिन एक बात कहूँ अगर आप बुरा न मानें तो ?'

'नहीं ! कहिये'

हैदर साहब और आप के बीच हुई इस नई दोस्ती के रिश्ते की तारीफ मैं क्या सभी करेंगे लेकिन इसमें कहाँ तक टिकाउपन है शायद इसे आपने

नहीं सोचा। यह माना कि रियासत में दाँव पेंच चलाही करते हैं। दोस्ती बनती बिगड़ती है। फिर भी इन बनने बिगड़ने के बावजूद इतनी दूरंदेशी तो रखनी ही पड़ती है कि चाहे दोस्ती में किसी तरह का फायदा हो या न हो लेकिन दुश्मनी होने पर अपने को उस से नुक्सान न उठाना पड़ेगा एन्डरसन ने महादजी की ओर ताका। दोनों ही चतुर और लोलुप थे।

'मानने वाली बात है।' शिंदे ने सिर हिलाया।

तब हमारी दोस्ती आप और पेशवा हुकूमत दोनों के लिये ज्यादा ठीक और टिकाऊ होगी। हम आप के खिलाफ होकर आप का कुछ बिगाड़ नहीं सकते लेकिन हैदर अली की अगर ताकत इसी तरह बढ़ता रही और किसी वजह से आप का उनका दोस्ताना टूटा, जो स्वाभाविक है तो फिर उन्हें सँभालना आपके लिये टेढ़ी खीर होगी।' एन्डरसन रुका 'मेरी दरख्वास्त है आप इस मसले पर आज एक बार और गौर करने की तकलीफ करें। मुझे उम्मीद है, मेरी बातें आपको सही जचेंगी। वैसे आपकी मर्जी। कल जैसा भी आप कहेंगे मुझे हर हालत में उसे मंजूर करना है।'

'अच्छी बात है। मैं इसपर आज सोचूँगा।'

डेविड एन्डरसन सिर नवाता हुआ खेमे के बाहर हो गया।

रात में पूना से एक कासिद आया। नाना साहब का पत्र था। किसी विशेष समाचार की सूचना नहीं थी केवल हैदर अली के सम्बन्ध में ताकीद की गई थी। पत्र इसी विचार से भेजा गया था। हैदर को अलग करके किसी भी प्रकार की संधि करने की बिल्कुल मनाही थी।

दूसरे दिन बैठक होने पर महादजी ने एन्डरसन को नाना वाला पत्र दिखलाया और हिचकिचाते हुये बोला 'अब तो बड़ी मजबूरी है एन्डरसन साहब! हैदर अली से अलग अब किसी प्रकार की संधि नहीं की जा सकती।'

एन्डरसन ने कोई उत्तर नहीं दिया। अपनी जेब से दो पत्र निकाल कर शिंदे के सामने रख दिये।

'क्या है?' महादजी ने पूछा।

'गवर्नरजनरल साहब का पत्र और दूसरा बड़े गाँव में किये हुये वायदे के अनुसार भड़ौंच इलाके की सुपुर्दगी का दस्तावेज।'

शिंदे कुछ सोचने लगा। कुछ क्षणों उपरान्त उसने अपने वकील की ओर संकेत किया। उसने पत्र और दस्तावेज पढ़कर सुनाया। महादजी फिर सोचने लगा।

एन्डरसन के लिये महादजी को क्या समझना था। ये लोग उसे बड़े गाँव से समझते चले आ रहे थे। 'इसके इलावा', वह बोला 'महाराज साहब मेरे पत्र में गवर्नर जनरल ने लिखा है और मुझे सख्त हुक्म दिया है कि आप के साथ किसी भी कीमत पर दोस्ती कायम की जाय। आपसे वे अलग रहना नहीं चाहते।'

शिंदे के पास अब ज्यादा कहने की गुंजाइश नहीं थी। संधि-पत्रों पर हस्ताक्षर हो गये। पेशवा, निजामअली और अंग्रेजों का एक गुट बना। हैदर अली अलग कर दिया गया। महादजी ने अपनी कर डाली। संधि पत्र नाना साहब के पास पूना भेज दिया गया।

बत्तीस—

(क)

पूना में बड़ी खुशी और बड़ा जशन। लोग फूले नहीं समा रहे थे। टोपी वालों को पराजित करके एक बार नहीं, दो-दो बार पैरों पर झुका देना, उस समय में अकल्पनीय और एक महान बात थी। सारे साम्राज्य में महीनों तक विभिन्न तिथियों पर नाच-रंग, खेल-तमाशे और उत्सव होते रहे। साम्राज्य का कोना कोना नाना साहब की जयजयकार से प्रतिध्वनित हो उठा। जनता-जनार्दन के हृदय में उनके प्रति असीम श्रद्धा और भक्ति का भाव उत्पन्न हुआ। महीनों तक भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों से उनके पास बधाइयाँ आती रहीं। प्रसन्नता हर तरफ थी परन्तु स्वयं उस प्रसन्नता का वितरक व्यथित और उदासीन था। बड़े गाँव की विजय में जितना हर्ष और कर्तव्य-पालन की एक-निष्ठा थी, आज ठीक उसके विपरीत, उनके चेहरे पर गहरी हल्की उभरी हुई ग्लानि की रेखाओं से विदित हो रहा था। कारण का अनुमान किसको था?

लक्ष्मी जब भोजन करके आई तो नाना साहब तकिये के सहारे कोहनियों के बल पर हथेलियों में अपने मुख मंडल को दबाये किसी गहरे चिन्तन में तल्लीन थे। लक्ष्मी कब कमरे में आई और चली गई और फिर लौटी—उन्हें मालूम नहीं। लक्ष्मी खाँसती हुई अपने पलंग पर बैठ गई। नाना ने लक्ष्मी की ओर देखा और कुछ मुसकराने का प्रयास करते हुये वे लेट गये। उनके मुसकराहट का प्रयास सम्भवतः अपनी पीड़ा को अप्रकट रखकर लक्ष्मी को संतोष देने के मिस था।

लक्ष्मी ने नाना की ओर झुकते हुए पूछा 'बात क्या है? इधर कुछ दिनों

से जब देखती हूँ तुम कुछ न कुछ सोचा ही करते हो। खाना-पीना, बोलना-बतलाना, जैसे सारी वस्तुओं से अरुचि हो गई हो। केवल सोचने के अतिरिक्त और तुम्हारे पास कोई काम नहीं। सारा देश जब तुम्हारी जय जयकार और इस महान कार्य से आनन्दित होकर तुम्हारी दीर्घायु की कामना करता हुआ, नवीन सुखों की कल्पना से ओतप्रोत हो रहा है, तब तुम, पता नहीं, किन चिन्ताओं में दिन प्रतिदिन घुलते जा रहे हो?' लक्ष्मी व्यंग के साथ-साथ उलहना भी दे रही थी।"

'पर यह आनन्द कितने दिनों का लक्ष्मी' नाना साहब मानों अपने में बोल रहे हों 'आज जिन आशाओं और प्रत्याशाओं से उनका हृदय लहरा उठा है, जिन नवीन सुखों की कल्पना कर वे अपने भविष्य का निर्माण करना चाह रहे हैं, अपने बच्चों को समृद्धिशाली और उन्नतिशील देखना चाह रहे हैं—उन सारी वस्तुओं की उपलब्धि हो पावेगी इस में मुझे अब सन्देह है?'

लक्ष्मी ने अचम्भित दृष्टि से अपने पति की ओर देखा। वह उसके कथित गूढ़ाशय को समझने का प्रयत्न करने लगी।

'स्वार्थ और स्वयं बड़े बनने की लालसा', नाना ने आगे कहा, 'गलत को गलत समझते हुये भी करना और उसी के द्वारा अपनी उन्नति का रास्ता ढूंढ़ना—ये सब किस चिन्ह के द्योतक हैं। अज्ञान को ज्ञान का मंत्र दिया जा सकता है। अपने मार्ग पर लाया जा सकता है। भले बुरे की पहिचान कराई जा सकती है किन्तु पढ़े पढ़ाये को कौन-सी सीख?'

'उसकी सीख तो सरल है। सबसे सरल। यदि तुम उपयोग में लाना चाहो तो'; लक्ष्मी नाना के भावों को कुछ-कुछ समझती हुई बोली 'बल द्वारा उसे शक्तिहीन बनाकर अपने अधिकार में कर लो।'

'सो तो ठीक है, किन्तु ऐसा करने के पहले समय और परिस्थितियों का भी तो ध्यान रखना पड़ता है। गायकवाड़ की दशा तुम देख रही हो। भोंसले की गद्दारी और उनकी भीतरी चतुराइयाँ, उनको कितने गहरे गढ़े में गिरायेगी, इसका निर्णय भविष्य स्वयं करेगा। होलकर अपनी ताक में अलग

लगे हुये हैं। कुछ थोड़ी बहुत आशा महादजी से थी, अब वह भी जाती रही। ऐसी स्थिति में यदि किसी प्रकार का गृह-युद्ध आरम्भ कर दिया जाय तो इसका अनुचित लाभ ये गोरे ही तो उठायेंगे।'

'लेकिन महादजी ....।'

'स्वार्थ और मेरे प्रति ईर्षा ने उसे भी अन्धा बना दिया है लक्ष्मी। वे भला-बुरा, वर्तमान-भविष्य, सब कुछ भूल चुके हैं। अपने राज्य को साम्राज्य में परिणत करने की कामना ने उनकी बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया है। तुम से नहीं बताया था, बड़े गाँव में भी वे अंग्रेजों से गुप्त वार्तायें करते रहे। मुझे सतर्क किया गया था किन्तु मैंने इस कान सुनकर उस कान से निकाल दिया। सोचा, वे स्वयं समझदार हैं, आगे संभल जायेंगे। लेकिन इस संधि ने मेरी सारी उम्मीदों पर तुषारापात कर दिया। भोंसले की गद्दारी से मैं बंगाल पर चढ़ाई न कर सधि के लिये विवश हुआ और अब देखता हूँ कि महादजी की बढ़ती स्वार्थपरता और ईर्षा कहीं साम्राज्य को हाथ से न खो दे।'

'इस बार भी कुछ गड़बड़ी की?'

'बहुत बड़ी। मेरे बारबार लिखने पर भी उन्होंने हैदर अली साहब के विरुद्ध अंग्रेजों से मिलकर संधि कर ली।'

'और तुमने उसको मान भी लिया', लक्ष्मी कुछ आवेश में आ गई, 'यह तुम्हारी दुर्बलता है। तुम्हें चाहिये था कि तुम स्वयं सधि की वार्तायें करते। दूसरे को क्या अधिकार?'

रूखी हँसी से नाना साहब बोले 'मेरी दुर्बलता ही के कारण तो लोगों को अनुचित लाभ उठाने के लिये प्रोत्साहित होना पड़ रहा है। अगर आज मुझे भी तलवार बाँधने की तमीज होती। मैं भी एक सैनिक होता तो सम्भवतः इस साम्राज्य और देश का कुछ दूसरा रूप हुआ होता। मैं तब उन स्वार्थी देश गद्दारों को भी अच्छी सीख देता किन्तु......' उनका हृदय घृणा से सिहर उठा था 'किन्तु मजबूरी का नाम सब्र है। इसलिये सब्र करता हूं। जैसे भी हो, अब जितना है, उसी को बनाये रखने का प्रयत्न करते रहना है।'

'तुम ने महादजी को लिखकर पूछा नहीं कि अब हैदरअली को कौन-सा मुँह दिखाया जायेगा। उनके पास बुद्धि थी या नहीं।'

'इतनी ही अगर समझ होती तो ये दिन हमें क्यों देखने को मिलते? सदियों की परतंत्रता ने अपने देश और स्वयं को स्वतंत्र देखने की भावनाओं और उसकी महानता को अनुभव करने के ज्ञान को बिल्कुल जड़ से उखाड़ फेंका है। प्रत्येक को स्वयं की चिन्ता है। इससे अधिक वह जैसे समझता ही नहीं। सैकड़ों वर्षों के बाद तो अवसर आया था अपने को सुसंगठित और एकता के सूत्र में बाँध कर स्वतंत्रता के सुख को लूटने का; परन्तु भविष्य तो कुछ और मालूम पड़ता है। जान पड़ता है फिरंगियों की सत्ता सारे भारत पर फैल कर ही रहेगी।'

थोड़ी देर तक मौनता छाई रही। नाना साहब करवट लेते हुए सीधे सो गये।

लक्ष्मी का हृदय मानों किसी बोझ के कारण दबा जा रहा था। उसने धीमे स्वर में पूछा 'खैर, भविष्य की चिन्ता तो बाद की है, अब हैदर अली के लिये क्या सोचा है? संधि की सूचना पाकर उनके हृदय में प्रतिक्रियाओं के तो तूफान उठ खड़े होंगे। मित्रता का सम्बन्ध रहे या न रहे, इसकी चिन्ता नहीं। विशेष चिन्ता है एकता की फैली हुई भावना का खंडित होना और उनकी दृष्टि में तुम्हारा गिर जाना।'

'कल शिंदे और अंग्रेजों को सूचना भेज दी है कि संधि में संशोधन की आवश्यकता है। संशोधित संधि-पत्र पर ही हस्ताक्षर होंगे और उन्हीं शर्तों की मान्यता होगी। मैंने साफ शब्दों में यह भी लिख दिया है कि हैदर अली साहब को अलग करके किसी भी प्रकार की संधि नहीं की जा सकती।'

लक्ष्मी का चन्द्रमुख दीप्तिमान हो उठा। वह कुछ कहना ही चाहती थी कि नाना फिर कहने लगे 'परन्तु लक्ष्मी, बकरी की माँ कब तक खैर मनायेगी। मैं अपने बुद्धि-बल द्वारा कब तक घसीटता रहूँगा। महादजी अँग्रेजों के विरुद्ध जा नहीं सकते और अँग्रेज हैदर साहब के बढ़ाव को बर्दाश्त नहीं कर सकते।

ऐसी परिस्थिति में मुझे ही झुकना होगा अन्यथा हैदर तो मिटेंगे ही साथ-साथ ये सारे आपस में लड़कर पेशवा साम्राज्य को भी मिटा बैठेंगे।'

'तो इसका अर्थ हुआ कि अपने साम्राज्य की बचत के हेतु आप आज नहीं तो कल अँग्रेजों से मिलकर हैदर अली का सर्वनाश कर देंगे? पर यह सोचना क्यों भूल जाते हैं कि उनकी समाप्ति के उपरान्त आपका साम्राज्य भी रौंद डाला जायेगा और शायद ऐसा रौंदा जायेगा कि कुछ काल बाद इसका कोई अस्तित्व भी न रहे—सन्देहजनक बात होगी।'

''सन्देह नहीं, इसे सत्य भी मान लिया जाय तो मेरे सामने दूसरा मार्ग कौन-सा है लक्ष्मी? क्या मैं हैदर अली का खुल्लम-खुल्ला पक्ष लेकर अपने यहाँ गृह-युद्ध का सृजन करूँ? तुम चाहती हो कि आशा की टिमटिमाती हुई लौ को बुझने के पहले ही फूँक कर बुझा दूँ! यह उससे भी अधिक भयंकर होगा। अब तो केवल भगवान पर भरोसा रखकर ही भविष्य को सोचना है। शक्तिहीन, शक्तिहीन की क्या सहायता कर सकता है? फूट ग्रसित घर अपने पड़ोसी को क्या मदद देगा। अब तो अपने को देखकर ही दूसरे को देखना है। तभी कल्याण की आशा और दोनों राज्यों की बचत का उपाय सोचा जा सकता है।'

'ठीक है। जैसा तुम सोचो। किन्तु ईश्वर के लिये अब मेरे ऊपर कुछ कृपा करो। स्वयं तो दुखित होते ही हो, मुझे भी वेदना सहनी पड़ती है', लक्ष्मी उठकर नाना साहब के पलँग पर बैठ गई 'आज से तुम्हारा सोचना-विचारना सब बन्द। समझे। भविष्य क्या होगा क्या नहीं—इसकी अभी से चिन्ता क्यों? तुम्हें अपने कर्तव्यों का पालन करना है, उसे तुम कर रहे हो। इससे अधिक आशा ही क्या की जा सकती है।'

नाना साहब ने लक्ष्मी की ओर देखा और एक ठंढी साँस छोड़ते हुये बोले 'ठीक कहती हो लक्ष्मी! यही संतोष का मूल मंत्र है।' लक्ष्मी की हथेलियों के बीच नाना की हथेली दबने लगी थी। रात में मादकता का स्वर गुंजरित होने लगा।

(ख)

इतना सब कुछ होने पर भी अँग्रेजों को अपनी धूर्तता से चूकना तो था नहीं। हैदर को तत्काल ही जब कि संधि-पत्र पर अभी नाना साहब का हस्ताक्षर होना शेष था—उसके विरुद्ध मराठों के साथ संधि की सूचना दे दी गई और शर्तों के अनुसार विजित प्रदेशों को छोड़ने के लिये कहा गया। परन्तु हैदर अली को न तो नाना साहब से ऐसी आशा थी और न वह उन प्रदेशों को छोड़ने के लिये तैयार ही था। उसे अपनी वीरता पर गर्व था और कर्तव्य-पालन की सच्ची लगन थी। उसने अँग्रेजों को बड़े मसखरेपन से लिखा '......मैंने दो वर्षों से इन इलाकों को अपने कब्जे में इसलिये नहीं रख छोड़ा है कि जब कभी आप या दूसरे लोग नाराज हों तो इन्हें सौंप कर अपने को खुशकिसमत बनने का दम भरूँ। अगर आप में हिम्मत है तो आप अपने दोस्त मराठों और निजाम के साथ मेरी खिलाफत में कहीं भी आ सकते हैं। आप लोगों के आने पर जाहिर हो जायेगा कि मैं किस किस्म का आदमी हूं, और क्या-क्या कर सकता हूँ। अभी तक आपकी तरफ से मुझे कोई ऐसा हुक्म नहीं मिला वरना वह भी कर डाला होता। मुझे मालूम है, आजकल इन इलाकों से आपको एक छदाम भी नहीं मिल रहा है। आपको तकलीफ है। लेकिन मजबूरी के लिये क्या किया जाय। मुझे अफसोस है कि भविष्य में भी आपकी यह तकलीफ रफा न हो पायेगी। मैंने कुछ ऐसा ही मुस्तकिल इरादा बना लिया है......।'

परन्तु भवितव्यता की गति न्यारी है। मनुष्य क्या सोचता है और होता है कुछ और। देश को जब हैदर से बहुत कुछ पाना था। बहुत सी अनहोनी आशायें थीं ऐसे ही कुसमय अनायास एक दिन हैदर अली की मृत्यु हो गई। नाना साहब को सूचना मिली। जैसे किसी ने उनके सीने में बर्छी भोंक दी हो। उन्होंने कासिद से प्रश्नों की झड़ी लगा दी। क्या, कब, कैसे, कहाँ, क्यों—उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था। मस्तकनत कासिद उत्तर देता रहा। शनिवार

बाड़ा से उठकर नाना साहब अपने बाड़ा चले आये। पूना का सारा कारोबार उस दिन बन्द कर दिया गया।

(ग)

जब सारे प्रयत्नों और सम्मिलित शक्तियों के बावजूद भी रघुनाथराव अपने को पूना की मसनद पर न बैठा सका तो ज्ञान पर पड़ा हुआ पर्दा फट गया। उसके समझ में यह बात आ गई कि सत्य को असत्य और असत्य को सत्य नहीं बनाया जा सकता। उसे अब अपने किये पर पछतावा था। दुःख और लज्जा थी। अपने महान पाप की वास्तविकता का रूप उसे दृष्टिगोचर होने लगा था। वह अपने समस्त ऐश्वर्य और सुखों को प्रायश्चित के निमित्त तिलांजलि देने को तत्पर हो उठा। सालबाई की संधि हुई और उसके लिये जो कुछ भी नाना साहब ने निर्णय किया—उसे स्वीकार था।

भरारी रघुनाथराव को अपने परलोक की यातनायें तो विदित थी हीं परन्तु इह लोक को अपने अनुकूल बनाकर कम से कम मन को क्यों न संतोष दे लिया जाय। उसने सर्वसाधारण के बीच अपने को अपराधी घोषित किया और दंड के लिये लोगों से याचना की। उसने सब कुछ त्याग कर गोदावरी के तट पर कोपर गाँव में रहने का निश्चय किया और वहीं रहने लगा। लेकिन उसका वृद्ध शरीर मनःस्थिति के भारीपन को अधिक दिनों तक बर्दाश्त न कर सका और दो महीने के भीतर-भीतर उसका देहान्त हो गया।

तैंतीस—

'आने में शर्मा रहे थे क्यों ?' वह मुसकरा रही थी।

'नहीं तो।' आगन्तुक की शर्म से झुकी आँखें बेशर्म बनने का प्रयत्न करने लगीं लेकिन फिर भी साहस नहीं हो रहा था। उसकी दृष्टि पृथ्वी की ओर टिकी हुई थी।

'तब आये क्यों नहीं ? क्या मेरी प्रतीक्षा की व्यथा का तुम्हें अन्दाज नहीं ? तुम पूना में रहो और मैं तुम्हें देख न सकूँ। इस कलंक का तुम्हें आभास है ? मजबूर होकर आज कासिद भेजना पड़ा था।'

'काम की अधिकाई के कारण आने का अवसर न लगा। तुम तो देखती हो। आये दिन युद्धों के पीछे छुट्टी जो नहीं मिलती। आज यहाँ तो कल वहाँ।' आगन्तुक का अब तक सिर झुका हुआ था।

आगन्तुक के बहाने में कोई लक्ष्य नहीं था, इसे नीरा भलीभाँति समझती थी। वह अधिक कोमल स्वर में बोली या सम्भवतः सुनने वाले के लिये वह अधिक चुभनेवाला था, 'मेरी ओर देखो', आगन्तुक की आखें अकुला उठीं और अविलम्ब उसके मुखमंडल पर जा टिकीं 'मैं तुम्हारे चरणों की दासी हूँ। हूँ न ? मुझे ठुकराने का न सोचो। मैं कहीं की भी न हो पाऊँगी।' उसके नेत्रों से टप-टप कर के आँसू गिर पड़े।

सेनापति की पलकें नीची हो गईं। हृदय में एक अजीब मंथन होने लगा। उस मंथन में कसक थी और व्याकुलता। उत्तेजना की बढ़ती हुई तीव्रता कहीं उसके नियंत्रण के बाहर न हो जाय—इस संशय ने उसे सचेत किया। वह अचानक उठ खड़ा हुआ। 'एक काम भूल गया था नीरा', उसने बहाना किया बड़ा जरूरी है। मुझे नाना साहब से शीघ्र मिलना चाहिये। अवसर मिला तो कल फिर आऊँगा।' वह बिना उत्तर की प्रतीक्षा के लम्बे-लम्बे डग रखता

हुआ बाहर हो गया। नीरा कुछ समझी और कुछ समझने का प्रयत्न करती रही—उसके जाने के बहुत समय उपरान्त तक।

सेनापति आने-जाने लगे। कभी सुबह, कभी दोपहर और कभी शाम। परन्तु आना नित्य होता था। समय घटता गया। घनिष्ठता बढ़ती गई। बेतकल्लुफी आही गई। कुञ्जों से तबीयत ऊबती तो श्वेत संगमरमर की कुर्सियों पर आकर बैठते और वहाँ से मन उचटता तो पुष्प क्यारियों के बीच हरी-हरी दुर्वा पर। सबेरे के समय जब कभी सेनापति आते तो हँस-हँसकर कमरे में व्यतीत हो जाता। सूरज चढ़ता हुआ कब अस्त हो जाता, इसका ज्ञान नहीं रहता और जब कभी अनुमान लगाने का ख्याल आ पड़ता तो शीघ्रता से इस समाप्त हुये समय पर आश्चर्य होता। आज और कल का ज्ञान लगभग उनके मस्तिष्क से विलीन हो चुका था। दोनों एक दूसरे के निकट खिचते चले आ रहे थे। सहवास से सामीप्य तो बढ़ता ही है। मौन व्यथा तथा मिलन की आतुरता मे व्याकुल दोनों अपने धैर्य को खो चले थे। तब भी सेनापति में कुछ सतर्कता थी। कुछ स्मरण था।

शरद की चन्द्रिका तिसपर पहाड़ी प्रदेशों के लिये मानो साक्षात मन्मथ के करों से छूटे हुये शर। प्रेमी हृदय घायल होकर तड़पने लगे। पूनम के चाँद को बड़ी सहानुभूति थी इन विचारों से। इन घायलों की दशा देखकर वह कल से बड़ा चिन्तित हो उठा था और तभी आज निकलने में उसे देर भी हुई। एक घड़ी बाद जब वह निकला तो सेनापति नीरा के साथ बाग में प्रवेश कर रहा था। यद्यपि कुआर का महीना समाप्त हो चुका था परन्तु अब भी आबेरवाँ पहन कर रात्रि में टहकती हुई चान्दनी का आनन्द लूटा जा सकता था। नीरा हौद के ऊपर आकर बैठ गई। पास में हरीपन्त था।

कलाधर नभ-मंडल से निहार रहे थे और नीरा कुर्सी के सहारे, अपने सुन्दर बाहों को ऊपर की ओर फैलाये, लेटी-सी, कुछ कल्पना करने लगी थी। सेनापति ने देखा। आज की नीरा, अन्य दिनों की नीरा से कई गुनी अधिक रूपवती हो उठी थी। एक नवीन आकर्षण था। एक नया

सम्मोहन और संकुचित इन्द्रियों में ढिठाई और जागरूकता उभाड़ने की शक्ति। वह अब भी नीरा की ओर देख रहा था। नीरा अपनी कल्पना में तल्लीन थी या उस विशेष भाव-भंगिमा द्वारा अपने पूर्ण यौवन और रूप की छटा में मदमस्त बनाकर, सेनापति को बाहुपाशों में जकड़ लेना चाहती थी— कुछ कहा नहीं जा सकता। सेनापति के नेत्रों ने तर्कना की। नीरा शृंगारित थी। सेनापति को खटका। उसके मन ने कहा— इन दिनों नीरा अपने को संवारती है। वह कुछ हिचका पर उसकी स्मरण-शक्ति ने पुष्टि की— अब नीरा के वार्तालापों में भी विभिन्नता है। उसमें चंचलता है। दूसरों को खींचने और स्वयं खिचजाने की विह्वलता है।

हरीचन्त नीरा की तरफ से दृष्टि हटाकर हौद की ओर देखने लगा। संकुचित कमल नतमस्तक किसी चिन्तन में तल्लीन थे। उसे सन्देह हुआ—संभव है उसकी स्वयं की दुर्बलता ऐसी प्रेरणा दे रही हो। नीरा का चरित्र पवित्र है। तर्पित और कलंक रहित है। उसके प्रति इस प्रकार की दुर्भावनायें घोर निन्दनीय हैं। पापमय हैं। ठोकर खाया हुआ राही रुकरुक कर पैर रखता है। उसे अपने उंगलियों की चिन्ता है, ठोकरों की नहीं। सेनापति को अपनी कमजोरी विदित थी। उसने अपने को धिक्कारा और भविष्य में निष्कपट और पवित्र बनने के लिये मन ही मन दृढ़ प्रतिज्ञायें करने लगा।

कुछ सीधी होती हुई नीरा ने सेनापति की ओर करवट ली। उसने उसकी ओर देखा। नीरा बोली 'सेनापति, आत्मा का सम्मिलन उत्तम होता है या शरीर का?'

'आत्मा का। यह तो सर्व-विदित है। इससे भी बढ़कर संसार में कोई दूसरी वस्तु है। यह ब्रह्म के विलीन होने की अन्तिम सीढ़ी है। मोक्ष पाने का सरल मार्ग है। परन्तु ऐसा हो सके तब, है बड़ी कठिन तपस्या।'

'कठिन तो होनी ही चाहिये। लेकिन मैं यह नहीं समझ पाती कि शारीरिक सम्मिलन या सहवास की संतुष्टि बिना परिपक्वता कैसे आ सकेगी। सहवास का ही तो बदला हुआ रूप सम्मिलित है? क्यों?'

सेनापति ने विस्फारित नेत्रों से देखा 'परन्तु सहवास द्वारा इस आदर्श की प्राप्ति शंकाजनित है। पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता। इन्द्रियों की मादकता और उसमें रत रहने की आकुलता, पथभ्रष्ट कर देती है।'

'और अतृप्त इन्द्रियों की व्यग्रता तो उससे भी अधिक भयानक होगी सेनापति। इसमें तो कुछ की गुंजाइश भी है, उसमें तो बिल्कुल ही नहीं। वहाँ तो फिर भी अंकुश है। अंकुश रहित कामग का रूप बड़ा विचित्र होगा।'

'नीरा! तुम......।'

नीरा ने अनायास सेनापति का हाथ पकड़ लिया, मैं जिस सयम के सहारे अपने जीवन के त्तणों को काट देना चाहती थी—अब वह असम्भव-सा जान पड़ने लगा है। मैंने अत्यधिक प्रयत्न किये। हर तरह से अपने को समझाया। मन को शान्ति दी परन्तु सब बेकार। मेरे अंग-अंग को किसी की आवश्यकता है। मैं किसको-किसको रोकूँ और किसको किसको समझाऊँ। सभी तो मुझसे विरोध करने लगे हैं।' नीरा की सुन्दरता में इस समय चार चाँद लग रहे थे। सेनापति का सारा शरीर रोमांचित हो उठा। मन के किसी कोने में सुषुप्त अभिलाषा जाग्रत हो उठी। वह अपने ज्ञान को भूल गया। नेत्रों में तैरती हुई तृष्णा नीरा को आश्वासन देने लगी।

नीरा सेनापति के हाथों को जोर-जोर से दबाती हुई जैसे अपनी ओर खींचने लगी हो। सेनापति खिंचने लगा। गर्म उश्वासें टकराने लगीं। नीरा अपने अधरों को खोलती हुई कुछ सिर को ऊपर की ओर बढ़ाकर पीछे को झुका लिया। हाथों का सम्बध टूट चुका था। सेनापति की फैली भुजायें नीरा अपने अंकों में भर कर, अधरों के सम्मिलन का अवसर देने ही वाली थी कि पीछे पैरों की ध्वनि की आहट मिली। नीरा उचक कर पीछे हट गई। चेहरा स्याह पड़ गया। पैर काँपने लगे। शरीर में सनसनाहट दौड़ गई। जैसे वह किसी महान अपराध की अपराधिनी हो। हरीपन्त के हाथ नीचे गिर गये।

'खाने की इन्तजारी है नीरू। ठंडा हो जाने पर बेमजा हो जायेगा बेटी।' बुढ़िया आया नीचे से बोली। नीरा इसी की गोद में पली है।

'चलती हूँ।' उसने सेनापति की ओर देखा। वह उठ खड़ा हुआ।

भोजन का आनन्द जाता रहा। दोनों गुम-सुम बैठे भोजन करते रहे। किसी प्रकार मुँह में रख रखकर कौर नीचे उतारे जा रहे थे। खैर कुछ खाना तो था ही, जैसे-तैसे खाकर सेनापति उठ गया। 'मुझे जाना है।' नीचे सहन में उतरता हुआ वह बोला।

'अभी .... ।'

'हाँ। अधिक रात गये ठीक नहीं।'

'कल तड़के चले जाना। इस समय जाने का क्या तुक, वह धीरे से बोली 'यह चाँदनी कल नहीं आयेगी।'

'नहीं, नहीं, नीरा, एक विशेष अड़चन है। कल आने पर बताऊँगा।' हरीपन्त दरवाजे की ओर बढ़ रहा था। उसके मस्तिष्क में एक नई प्रेरणा काम कर रही थी।

'आज के कल और कल के आज में बड़ा अन्तर है। यह ......।' नीरा इससे अधिक और क्या कह सकती थी।

सेनापति चकराया। नीरा का आकर्षण उसे फिर कहीं आगे से पीछे की ओर न घसीट ले वह घबड़ाया। उसने बनावटी मुसकराहट के साथ कहा, तुम जहाँ रहो वहाँ अन्तर। चाँद तो केवल पन्द्रह दिनों तक ही चमकता है किन्तु, तुम्हारी चान्दनी तीसो दिन की है। कल आने पर तुम्हारे अन्तर की विभिन्नता का अनुभव करूँगा।' नीरा को कुछ कहने का अवसर दिये बिना वह द्वार के बाहर हो गया। उसको शान्ति मिली। किसी संतोष के कारण मन अह्लादित हो उठा।

सेनापति का यह व्यवहार इस समय नीरा को बहुत खला। किन्तु हथेलियों में मचती हुई गुदगुदी और अंगों में व्याप्त सिहरन का अवर्णनीय सौख्य ने इसका शीघ्र ही विस्मरण करा दिया। वह कमरे में भविष्य की रंगरेलियों की कल्पना करते-करते कब सो गई उसे विदित नहीं। अचानक उसे मालूम हुआ—सेनापति उसके कमरे में आये। उन्होंने अपने हाथों को बढ़ाकर उसे

अपनी गोद में उठा लिया। वह जागती हुई भी निद्रान्वित बनी रही। सेनापति उसे लिये हुए उद्यान में पहुँचे—अब आँख-मिचौनी का खेल आरम्भ हुआ। कभी सेनापति लुकते और वह ढूँढ़ती और कभी वह छिपती, सेनापति ढूँढ़ते। इस बार सेनापति को खोजना था। वह भागती हुई पीछे, बड़ी दूर, एक कुञ्ज में जाकर छिप रही। सेनापति बड़ी देर तक चक्कर लगाते हुए उस कुञ्ज में पहुँच ही तो गये। वह खिलखिला पड़ी। सेनापति ने हाथ पकड़ते हुए उसे कस कर अपने अंक में खींच लिया। वह भी चिपट गई। फिर अधरों की व्याकुलता शान्त होने लगी – नींद खुल गई। स्वप्नों का लोक कमरे के अंधकार में विलीन हो गया। वह कुछ समझ न पाई। उसने आँखें मलते हुए इधर उधर देखा, परन्तु घोर अंधकार के सिवा और वहाँ क्या था। वह उठकर बैठना ही चाहती थी कि बड़े जोरों का धमाका हुआ। पलकें मिच गईं। और क्षण भर के उपरान्त जब आँखें खुलीं तो उसे ऐसा मालूम हुआ मानों सामने संगृहीत पुस्तकों के मध्य से एक ज्योति निकली और चक्कर लगाती हुई बाँयी ओर की खिड़की से बाहर निकल गई।

वह उठकर बैठ गई। हृदय धड़कने लगा। उसने आखें फाड़-फाड़ कर फिर चारों ओर देखा। वहाँ कुछ नहीं था। वह खड़ी हुई। कपड़ों को उतार फेंका। अपवित्र हो चुके थे। वह नंगी पुस्तकों के पास गई। इधर-उधर देखा। ऊपर नीचे देखा। किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं। खिड़कियों से झाँका। चाँद वैसे ही हँस रहा था। वह बदन पर चादर लपेटती हुई बाहर निकली। दास-दासियों को आवाज दी। सब घबड़ा कर दौड़े। धमाके का कारण पूछा। लेकिन वे उत्तर क्या दें? किसी ने कुछ सुना हो तब तो। नीरा मौन कमरे में लौट आई।

ब्रह्म बेला का समय। पिछला द्वार खुला। पीठ पर पुस्तकों का झोला रखे एक श्वेत आकृति असीम में अन्तर्ध्यान हो गई। मार्ग मिल गया था।

चौंतीस—

हैदरअली की मृत्यु हो चुकी थी। नाना साहब उस देश भक्त की दृष्टि में गद्दार बनने से बच गये। महादाजी को अपनी बातों से हटना नहीं था। विवश हो नाना साहब को संधि-पत्र पर हस्ताक्षर करने पड़े। और कोई रास्ता नहीं था। हस्ताक्षर होते ही हैदर अली के विरुद्ध अँग्रेजों ने महादाजी को सैन्य सहायता के लिए बाध्य किया। बली परन्तु स्वार्थी और तीसरे अनुचित लाभ उठाने की प्रवृत्ति ने शिंदे को अँधा बना दिया था। दिन प्रति दिन उसमें संकुचितता आती जा रही थी। उसने स्वयं तो श्रीरंगपट्टन को धमकी दी ही, नाना साहब को भी लिखा कि वे पूना की सेना भेज कर मैसूर को तहस नहस करके अँग्रेजों के विजित प्रदेशों को उन्हें लौटाने का प्रयत्न करें। नाना साहब के लिए यह बर्दाश्त के बाहर की चीज थी। उन्हें आश्चर्य था महादाजी ऐसे योग्य व्यक्ति की नासमझी और इस प्रकार की गिरावट पर। उन्होंने महादाजी को फटकारते हुए साफ शब्दों में लिख दिया कि पूना से इस प्रकार की कोई भी सहायता अँग्रेजों को नहीं दी जा सकेगी।

उधर हैदर की मृत्यु के उपरान्त उसका लड़का टीपू सुल्तान जो स्वयं अपने को 'रसूलेपाक की साया' कह कर सम्बोधित किया करता था—बड़ी तेजी और लगन से टोपी वालों की जड़ खोदने पर जुट पड़ा। वह मद्रास से इस कौम की बुनियाद को हमेशा के लिये मिटा देना चाहता था। हजारों की संख्या में अँग्रेज काट डाले गये। हजारों बन्दी बनाये गये। सैकड़ों बड़े-बड़े बन्दी पदाधिकारियों ने स्वयं विष खाकर संतोष किया। सैकड़ों को हाथियों और भिन्न-भिन्न तरीकों से, सता सता कर, तड़पा-तड़पा कर, प्रतिहिंसा की जलती हुई अग्नि की ज्वाला शान्त की गई। फिरंगी त्राहि-त्राहि करने लगे।

इसमें सन्देह नहीं कि टीपू की शक्ति और उसकी दिलेरी अपने बाप से भी अधिक बढ़ गई थी, परन्तु अदूरदर्शिता और धार्मिक कट्टरपन ने उसे पनपने नहीं दिया। और यही कारण है कि एक तो अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक उठता ही रहा और दूसरा बहुत ऊपर उठकर भी ऐसा गिरा कि लोग उसके अस्तित्व को हेय दृष्टि से देखने लगे।

सुल्तान औरंगजेब के युगों का स्वप्न देखने लगा था वह। उसकी बुलंदी और इस्लाम के प्रति वफादारी को देखने लगा था। लेकिन उसका ध्यान परिणाम की ओर नहीं था। उसे डाह होने लगी। वह औरंगजेब से आगे बढ़ना चाहता था। इस्लाम की वृद्धि और उन्नति की नामावली में वह अपना नाम सर्वप्रथम और ऊपर देखना चाहता था। उसके लिए यह महान गर्व की बात थी।

अंग्रेजों का घुटना टेकना और उसकी बढ़ती हुई शक्ति के अवसर ने उसे पागल बना दिया। वह अपना पराया सब भूल गया। इस्लाम का सरूर उसकी रग-रग में फैलने लगा। उसने शीघ्र ही काँची के उस प्रसिद्ध मन्दिर का मुख्य द्वार, जिसे स्वयं उसके पिता ने बनवाना आरम्भ किया था और जो अब तक लगभग आधे के बन चुका था—आगे बनने से रोक दिया। देवालयों के घंटे घड़ियाल धीमे पड़ने लगे। पूजा-पाठों ने चोरी का रूप धारण कर लिया। हिन्दू अपने को हिन्दू कहने में काँपने लगा। समाज में बेचैनी फैली। काफिर इस्लाम कबूल करने लगे। परन्तु रफ्तार धीमी थी। आज्ञाओं का पालन गंभीरतापूर्वक नहीं किया जा रहा था। सुल्तान ने नित्य के विवरण को सुनते हुए सोचा। उसे स्वयं इस कार्य को अपने हाथों में लेना चाहिये। उसने निश्चय किया। दूसरे दिन उसने खड़े-खड़े पचास हजार हिन्दुओं की चोटी कटवा डाली। सब मुसलमान बन गये। विरोध करने वालों के सिर कलम थे।

कुहराम मच गया। भागने वाले घर-द्वार माल असबाब, सब छोड़-छोड़ कर भागने लगे। नाना साहब के पास विभिन्न स्थानों से धर्म-रक्षार्थ प्रार्थनाएँ आने

लगीं। पूना के विद्वानों और प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने नाना साहब से भेंट की और हिन्दुओं पर होते हुये अत्याचारों के प्रतिकार के लिये दबाव डाला। श्रीनगरी के शंकराचार्य ने भी उन्हें धर्म-निमित्त दुष्टों के संहार के लिये लिखा। फिर भी नाना साहब मौन थे। टीपू के अत्याचारों की उत्तरोत्तर वृद्धि और हिन्दू जनता में फैले हुये हाहाकार की नित्य सूचना पाते हुये भी वे कानों में तेल डाले पड़े थे। वे अब भी अपनी आपसी फूट की परिभाषा को समझाने का प्रयत्न कर रहे थे। किन्तु जो समझना चाहता ही न हो—उसके लिये कौन-सी सीख ?

टीपू का इस्लाम यदि इतने से भी शान्त हो गया होता तो भी गुंजाइश थी, लेकिन उसके हविश की कोई सीमा हो तब तो ! 'रसूले पाक की साया' ने मुसलमान युवकों की एक नवीन सेना तैयार की ; जिसका कार्य था हिन्दुओं की बहू-बेटियों का अपहरण करना और उनके साथ व्यभिचार करके अपनी इन्द्रियों को तृप्त करना। इन युवक सैनिकों को सुल्तान 'मेरे लड़कों' के नाम से सम्बोधित करता था। इन्तहा की हद हो गई। टीपू और आगे बढ़ा।

मालप्रभा के दक्षिण में भीट्टूर और नारंगुद पेशवा की दो रियासतें थीं। भीट्टूर, बेलगाम से दस कोस दक्षिण-पूरब के कोण पर बसा हुआ है और नारंगुद धरवार के उत्तरी-पूर्वी कोने पर। ये दोनों ही रियासतें खुदसर थीं। केवल विशेष संकटों पर ही पेशवा द्वारा सैनिक तथा अन्य सहायता दी जाती थी। टीपू तो हिन्दुत्व को मिटा देने के हेतु कमर कस ही चुका था ; फिर उसके लिये उचित-अनुचित का क्या प्रश्न ? उसने लगे हाथ इन दो सरहदी रियासतों को भी साफ कर देने का निर्णय किया। इस्लाम और काम दोनों की तृप्ति की सूचना उसे दी गई थी। कामुक का उतावलापन, अंधे के अंधेपन को मात कर देता है। कारण—वहाँ तो एक के अभाव में दूसरा काम करता तो है, परन्तु यहाँ बुद्धि और नेत्र वर्तमान होते हुये भी जवाब दे देते हैं।

नारंगुद पर धावा बोल दिया गया। छोटी सी रियासत उसकी बिसात ही क्या ! परन्तु बात कुछ ऐसी नहीं थी। दीवान कालोपन्त अपनी शक्ति समझते हुये भी नारंगुद की रक्षार्थ मोर्चे पर आ डटा। हुआ वही जो होना था।

नारंगुद पूर्णतः विध्वंस कर दिया गया। हिन्दू मुसलमान बनाये गये। विशेषकर ब्राह्मण अधिक अपमानित किये गये और इन्हें कठिन से कठिन यातनाएँ दी गईं। नारंगुद की सारी युवतियाँ एक स्थान पर एकत्रित की गईं। उनमें से कुछ परम रूप यौवना 'रसूलेपाक की साया' की हरम में भेज दी गईं। शेष इच्छानुसार दो दो, तीन-तीन छाँट-छाँट कर 'मेरे लड़कों' ने अपनी वासना की तृप्ति की। सैनिकों के लिये किसी प्रकार की कोई मनाही नहीं थी। बलात्कार का ऐसा नग्न चित्रण यत्र-तत्र ही देखने को मिला है। दीवान कालो-पन्त और राजा वेंयन्कट राव भावे अपने परिवार सहित बन्दी बनाये गये और सिक्कड़ों में बाँध कर श्रीरंगपट्टन को रवाना किये गये-इस्लाम की बुलन्दी का इजहार करने के लिये।

घोड़ों की टापें मुड़ीं, उत्तर दिशा की ओर। कीट्टूर का देसाई असमर्थ था। टीपू ने उसे दुर्ग छोड़ने के लिये कहा। देसाई सपरिवार निकला। पर सुल्तान की दयालुता तो किसी और कारणवश थी। बाहर निकलते ही 'मेरे लड़कों' ने उसे घेर लिया। देसाई की विवाहिता पुत्री जो कुछ दिनों पहले पीहर से आई हुई थी —हरम में भेज दी गई। ईला अपनी सुन्दरता के लिये विख्यात थी।

सब कुछ छीन लिया गया। नगर में लूट मार शुरू हुई और कीट्टूर की भी वही दशा हुई जो नारंगुद की। टीपू की पाशविकता ने चारों ओर हाहाकार मचा दिया। वातावरण सिहर उठा। स्वामी शंकराचार्य के दो हजार शिष्यों ने एक ही दिन एक साथ विष खाकर अपने जीवन का अन्त किया। वे आततायी यवन सुल्तान की छाया को अपने शरीर से स्पर्श होते नहीं देखना चाहते थे।

रात वही। दुर्ग वही। सामान वही और आराम वही। फिर भी बेचैनी क्यों? हृदय में चुभते हुये शूलों की व्यथा कैसी? बन्द कमरे में बैठी हुई ईला का हृदय फटा जा रहा था। झाड़ के मन्द प्रकाश में अधिक तो नहीं, किन्तु चेहरे पर अस्वाभाविक रूप से जहाँ कहीं सिकुड़ी हुई त्वचा के द्वारा किसी व्यग्रता का अनुमान तो लगाया ही जा सकता था। आँखों का पानी सूख चुका था। वह सामने दीवार पर लगे हुए चित्र पर टकटकी बाँधे कुछ सोच रही थी। सोच

रही थी और बहुत जल्दी जल्दी सोच रही थी। समय थोड़ा था।

द्वार खुला। ईला का हृदय धक कर के जैसे गतिहीन हो गया हो। उसने अपने को सँभाला। सुनहले कामदार सलमशाही की चोटी चमकी। सुल्तान अन्दर आया। ईला ने उसकी ओर देखा और खड़ी हो गई। सुल्तान ने जैसा सुना था वैसा ही पाया। उसने पलंग पर बैठते हुए पूछा 'खड़ी क्यों हो गई?'

'यों ही।' ईला के कथन में स्वाभाविकता थी।

'जितना मुझे बताया गया था, उससे ज्यादा ही पाया।' उसने ईला को नीचे से ऊपर तक देखा। 'हुस्न का जलवा तो मुझे आज ही देखने को मिला है। लेकिन हिन्दू इस की कदर करना नहीं जानते। जंगली तो जंगली। वैसे तुम्हारा नाम क्या है?

'ईला।'

'तुम्हारी शादी तो हो चुकी है?'

'हाँ। हो चुकी है।'

'कितने दिन हुये?'

'कुछ स्मरण नहीं।'

टीपू हँस पड़ा—'तभी तो कहा कि यह कौम ही जंगली है। इनको तमीज नहीं कि कौन-सी चीज कैसे रखी जाती है। शायद तुम्हें हासिल करने वाला बिल्कुल ही कमबख्त था। खैर। अब सब ठीक हो जायेगा। आओ बैठो।'

किसी दुर्गन्ध के कारण ईला ने उसकी ओर देखा। आँखें लाल हो रही थीं। वह समझ गई। वह अपने कार्य में सफलता पा सकेगी—उसे आशा हुई। पर क्रोध से खौलते हुए दिमाग को वह कब तक शान्त रख सकती थी? मुँह से निकलते हुये शब्दों ने हित, अनहित का कुछ भी ध्यान नहीं रखा 'म्लेच्छों में महान पातकी क्या अब तुझे ईश्वर का कुछ भी भय नहीं रह गया है? क्या तेरी बुद्धि बिल्कुल ज्ञानशून्य हो गई है? स्वयं नीच बनकर तूने अपने बाप की प्रतिष्ठा पर भी पानी फेर दिया। टी...पू......।' ईला क्रोध से काँप रही थी।

सुल्तान बड़े जोरों से ठहाका मारकर हँसता हुआ पलंग पर गिर पड़ा, 'ईला, मेरा बाप सिर्फ लड़ना जानता था। मौत भी कोई चीज होती है, शायद इसकी उसे जानकारी नहीं थी। मौत हर तरह से आती है, लेकिन तुम जैसी हसीना तो हर तरह से नहीं मिल पाती। मेरे बाप को इन', वह उठकर अचानक बैठ गया। उसने ईला की ओर ललचाई दृष्टि से देखा और हाथ बढ़ाता हुआ उठ खड़ा हुआ—'आओ ईला। तुम्हारे हुस्न पर सब कुछ माफ है। आओ। अब मैं अपने को रोक नहीं सकता।' उसके पैर आगे बढ़े।

ईला खिसकती हुई द्वार के समीप पहुँच चुकी थी। टीपू और आगे बढ़ा। ईला लपकी और कक्ष के बाहर हो गई। मस्त शराबी चौंका। वह भी बाहर निकला। ईला दौड़ती हुई भाग रही थी। वह झपटा। परन्तु पैर डगमगा रहे थे। आकाश में भ्रमण करते हुये बादलों ने रात्रि को दो रूप दे रखा था। अंधकार और ज्योत्स्ना। अचानक मेघों के बीच से निकलते हुये चाँद ने सुल्तान को दिखाया। ईला अभी कुछ फासले पर थी। उसके पैरों में स्फूर्ति आई। किन्तु अनियंन्त्रित पैरों ने ठोकर खाई और वह लुढ़कता हुआ मुँह के बल गिर पड़ा। चोट कड़ी लगी। नाकों से रुधिर गिरने लगा। 'धब' के शब्द से ईला ने पीछे को देखा। उसके शिथिल पड़ते हुये पैरों में जान आ गई।

सुल्तान का नशा उड़ चुका था। वह तेजी से दौड़ा। क्रोध से वह भनभना उठा था। फलस्वरूप वह फिर गिरते-गिरते बचा। ईला दीवार की मुंडेर पर अब पहुँच चुकी थी। वह खिलखिला कर हँसी और मन ही मन अपने पति के चरणों में सिर नवाते हुये कूद पड़ी। मृत्यु ने उसके पातिव्रत्य की रक्षा कर ही दी।

पैंतीस

नाना साहब का अब मौन रहना अन्याय का समर्थन करना था। शीघ्र ही भौंसले को सेना सहित आक्रमण हेतु आदेश जारी किया गया पूना से हरीपन्त की अधीनता में बादामी को सैनिक कूच कर पड़े। तुकोजी होलकर को पश्चिम से कोदूर, बेलगाँव होते हुए आने का आदेश दिया और स्वयं निजाम अली की सेना के साथ बादामी आ पहुँचे। बादामी का घेरा पड़ गया। नाना साहब अपने शिविर से या आवश्यकतानुसार घटना स्थल पर पहुँच-पहुँच कर सेना संचालन करते रहे। लगभग बीस दिनों तक घोर युद्ध के उपरान्त म्लेच्छों ने हथियार डाल दिये। बादामी अधिकार में आ गया। सेना आगे बढ़ी। गजेन्द्र-गढ़ का दुर्ग आ गया। यवनों ने यहाँ भी थामना चाहा, लेकिन समुद्र में उठते हुये ज्वार को अब कहाँ तक रोका जा सकता था। बौखलाये मराठों ने ईंट से ईंट बजा दी। किला विजित हुआ। सेना आगे बढ़ी।

'रसूलेपाक की साया' ने सामने से मुकाबिला न करके, पीछे से काम बनाना चाहा। साथ ही साथ पहले वह निजाम अली को कुछ सिखा देना चाहता था। क्योंकि वह काफिरों का साथ दे रहा था। उसने अदोनी पर बड़े वेग से आक्रमण किया। घनघोर लड़ाई हुई। परन्तु अदोनी बच न सका। टीपू ने उस पर अधिकार कर ही लिया। फिर वह सबनूर की ओर बढ़ा, किन्तु स्वयं को बीच में घिरता हुआ देखकर वह कुछ घबड़ाया। बड़गाँव और जनरल गोडार्ड की अवस्थाओं का चित्र स्वयं आया। परिणाम की भयंकरता और उसकी कुरूपताओं को उसने सोचा। काफिरों की प्रतिहिंसा की प्यास, म्लेच्छों के खून से ही तो बुझेगी—वह भयभीत हुआ। वह सब कुछ समझ गया। उसने विलम्ब करना उचित न समझा। शायद फिर काम न बने। तुकोजी

होलकर से बातचीत होने लगी। होलकर को हर तरह का आश्वासन दिया। कसमें खाईं, गिड़गिड़ाया और अन्त में सोने-हीरे के तोड़े नजर किये।

होलकर से अत्यधिक दबाव पड़ने के कारण नाना साहब को विवश होना पड़ा। किन्तु संधि की गई अपनी शर्तों के मुताबिक। कीट्टूर और नारगुंद पर फिर भगवा ध्वज फहराने लगा।

छत्तीस

वर्षों की लड़ाइयों के उपरान्त अब कहीं शान्ति की स्थापना हो पाई थी। लोगों ने संतोष की सांसें लीं। किन्तु नाना साहब को कहाँ शान्ति? उन्हें कैसा सन्तोष? सावन हरे न भादों भरे—सब समान। युद्धों से छुटकारा मिला तो साम्राज्य की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्थाओं को सुधारने और उनकी उन्नति में जुट जाना पड़ा। युद्धों के कारण इनकी ओर ध्यान देने का समय नहीं मिल पाया था। अतः इनकी बारी अब आई। मिरासदारों को नई सुविधायें दी गईं। मुद्दतबन्दी पर जमीन जोतने और बोने का बन्दोबस्त किया गया। जिससे कर वसूली में गड़बड़ी न होने पावे और प्रजा से मनचाहा रकम लेकर उन्हें कष्ट न पहुँचाया जा सके। साथ ही पेशवा माधवराव के समय के चौबीस लाख रुपये कर्ज की अदायगी भी उन्होंने धीरे-धीरे कर डाली। सामुद्रिक तथा देशान्तरिक व्यापारों की ओर भी ध्यान दिया गया। जहाजी बेड़ों का पुनस्संगठन हुआ। दुर्गों की मरम्मत तथा नगरों की उन्नति के हेतु नागरिकों को नई-नई सुविधायें तथा उनके अधिकारों की वृद्धि की गई। पेशवा सवाई माधवराव नारायण अब सत्रह वर्ष का हो चुका था इसलिये नाना साहब के कथनानुसार उसने भी अपने कार्यभार को सँभालना प्रारम्भ कर दिया। वैसे होता सब कुछ नाना साहब के ही द्वारा था।

नाना साहब ने स्वयं कोकणस्थ ब्राह्मण होते हुये भी रूढ़िवादी प्रथाओं का उलंघन किया। हिन्दू परिवर्तित मुसलमानों द्वारा अर्जी देने पर उन्हें शुद्धि द्वारा हिन्दू बना लेने की ब्राह्मणों को आज्ञा दी। यद्यपि ब्राह्मणों के कुछ समुदायों ने इसका विरोध किया, पर नाना ने एक न सुनी। इस प्रकार उनका कर्त्तव्यों में व्यस्त समय शीघ्रता से घटने लगा। होनहार प्रबल है—केवल

इसी विश्वास पर उन्हें संतोष था और मन के कोने में सिमटी हुई आशा को प्रोत्साहन। कर्म के मंत्र को वे भूलते नहीं थे।

अकस्मात एक दिन सूचना मिली कि महादाजी शिंदे पूना आ रहा है। बारह वर्ष के इस लम्बे अर्से के बाद, आगमन के कारण, पूना में अजीब खलबली मच गई। स्वयं महादजी को पूना आते हुये परायापन मालूम दे रहा था। खैर। उनकी आज्ञानुसार बनवदी में रुकने के लिए डेरे तथा अन्य आवश्यक सामग्रियों का प्रबन्ध होने लगा। चढ़ते आसाढ़, शिंदे अपनी लश्कर सहित वनवदी आ पहुँचा। पेशवा ने स्वयं गणेश खिंड पहुँचकर उसका स्वागत किया। दूसरे दिन महादजी, पेशवा से मिलने के लिये राजभवन आया और स्वामी के चरणों पर अपना मस्तक टेकते हुये अपनी वफादारी का सबूत दिया। पेशवा ने अपने गले से मोतियों का हार निकाल कर सरदार के गले में डाल दिया।

शिंदे ने हाथ जोड़ते हुये कहा—'महाराज साहब से एक प्रार्थना है।'

'हाँ। कहिये।'

'आलमगीर द्वारा आपको देने के लिये कुछ वस्तुयें दिल्ली से लाया हूँ। आशा है, उन्हें महाराज स्वीकार करेंगे। चलते समय भी बादशाह सलामत ने बार-बार उसकी याद दिलाई थी।'

'ठीक है।'

फिर कुछ समय तक महादजी, पेशवा को उत्तर भारत की विशेषतायें तथा अन्य बातें बताता रहा। तदुपरान्त वह आज्ञा लेते हुये नाना साहब से मिलने चला गया।

गिरपीर पर (जहाँ आज कलेक्टर का कार्यालय है) बड़े-बड़े वितान तनने लगे। नाना प्रकार की सजावटें होने लगीं। शिंदे की राय से खुला दरबार होने का निर्णय हुआ था। सारी तैयारियों और सजावटों के उपरान्त निश्चित दिन दरबार लगा। पंत प्रधान पेशवा के आगमन की सूचना दी गई। प्रधान हाथी से उतरा। वातावरण में सन्नाटा खिंच गया। उसके मसनद पर

बैठते ही महादजी ने एक सौ एक सोने की मोहरें नजर कीं। इसके बाद बादशाह द्वारा भेजी हुई प्रधान के लिये पोशाकें, एक रत्न जटित तलवार, एक नालकी, एक पालकी, दो मोरछल, एक घोड़ा और हीरे भेंट किये। अब दूसरे सरदारों और सामन्तों ने नजरें देना आरम्भ कीं। इस कार्य के समाप्त होते ही पेशवा उठ खड़ा हुआ। बादशाह सलामत द्वारा भेजी हुई नालकी पर पेशवा शनिवारवाड़ा आया।

महादजी को युवक पेशवा ने बहुत पसन्द किया और धीरे-धीरे इनकी घनिष्ठता बढ़ती गई। नित्य किसी न किसी प्रकार का कार्य-क्रम महादजी और पेशवा के बीच बना ही रहता। कभी महादजी की दावत राजभवन में होती तो कभी प्रधान की दावत महादजी के यहाँ। कभी दूर जंगलों में शिकार होता तो कभी तफरीह के लिये पहाड़ियों या इधर-उधर का भ्रमण होता और शिंदे उत्तर भारत तथा मुसलमानी-शान शौकत और बड़ी-बड़ी अनोखी इमारतें तथा उनकी सुन्दरता का वर्णन करते हुए नाना प्रकार की कथायें पेशवा को सुनाया करता।

पेशवा की यह घनिष्ठता दिन प्रति दिन बढ़ती गई। फलस्वरूप शिंदे के मस्तिष्क में एक नई प्रेरणा काम करने लगी और अब वह धीरे-धीरे राज्य-प्रबन्ध तथा उसके संचालन में भी हस्तक्षेप करने लगा। नाना साहब क्या, नगर के किसी भी समझदार व्यक्ति से शिंदे की मनोवृत्ति छिपी नहीं थी। नाना साहब चुप थे। बोलते क्या। जो कुछ हो रहा था, उसे देख रहे थे। इसी बीच एक दिन महादजी ने नाना साहब को अपने बारह साल के उत्तर भारत में सैनिक तथा युद्ध सम्बन्धी अन्य आय-व्यय के लेखा को पेश किया और पेशवा सरकार से सात करोड़ रुपये की माँग की। साथ ही उसने नाना साहब से कुछ रूखे शब्दों में यह भी कहा कि शीघ्र से शीघ्र मोरोबा फड़नवीस को कारागृह से मुक्त किया जाय।

नाना ने महादजी की ओर देखा और तब उस कागज की ओर दृष्टि गड़ाते हुए बोले—'भाई का रुधिर मेरी नसों में प्रवाहित हो रहा है महादाजी

साहब, न कि आपके। पीड़ा का अनुमान मुझसे अधिक आपको न होगा।' नाना साहब ने इस विषय को टालना चाहा।

'किन्तु स्वार्थ के वशीभूत होकर इन्सान इसे अनुभव कर पाये तब तो। आप का कहना अनुचित नहीं। पीड़ा का अनुभव आप ही को अधिक होना चाहिये, किन्तु हो जो नहीं रहा है। मोरोबा ने जो कुछ किया था, उसकी सजा उन्हें मिल चुकी।'

'और यदि छोड़ने के उपरान्त उन्होंने फिर किसी प्रकार का षडयन्त्र रचा तो? क्या इस प्रकार के मनुष्यों से आप किसी भले कार्य की आशा कर सकते हैं। महादजी साहब, मेरी दुर्बलताओं का अनुचित लाभ न उठाइये। मैंने सदैव सब कुछ जानते हुये भी आपकी इज्जत की है और आपके सहयोग से मराठा साम्राज्य को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने का प्रयत्न किया है। मुझे मालूम है, बड़े गाँव की संधि में आप के और अंग्रेजों के बीच क्या बातें हुई थीं। मुझे मालूम है कि सालबाई की संधि में आपने अपने स्वार्थ के लिये किस प्रकार अंग्रेजों से मिलकर, मेरे बार-बार कहने पर भी, अपने मन की की और हैदर ऐसे सच्चे देश-भक्त और योग्य सहायक को अलग निकाल कर, सदैव के लिये फूट डलवा दी। क्या इसे आप नहीं समझते थे? समझते थे, परन्तु आपको कुछ मिल रहा था। आप का राज्य बढ़ रहा था। इसलिये आपका वैसा करना स्वार्थोचित था। मैं खून का घूँट पीकर रह गया।' नाना साहब अपने को न सँभाल सके।

'नाना साहब, यह आपको नहीं भूलना चाहिये कि मेरे ही कारण आज आप इस रूतबे को प्राप्त हुये हैं, अन्यथा मोरोबा के स्थान पर आप बन्दीगृह में दिन व्यतीत करते होते।'

'मेरे कहे हुए शब्दों का यह उत्तर नहीं हुआ। मैं आज भी आप के उस उपकार का आभारी हूँ। किन्तु जो कुछ भी मैंने किया या कर रहा हूँ— अपने लिये नहीं। आपने मेरी सहायता करके, मुझे संकट से बचाकर, कुछ पाया ही है। खोया नहीं। मैंने स्वामी के लिये सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है।

फिर भी यदि मेरे प्रति सन्देह है या किसी प्रकार की ईर्षा है तो मैं आज ही प्रत्येक कार्यों से छुटकारा लेकर, साम्राज्यों से सदैव के लिये नाता तोड़ लेने के लिये तत्पर हूँ। सम्भवतः आप मेरे स्थान पर आकर अच्छा प्रबन्ध कर सकेंगे।'

'मेरे कहने का यह अर्थ नहीं था नाना साहब। आप ने तो कुछ और ही अर्थ लगा लिया। आप..........।'

'अगर यह अर्थ न होता तो सब कुछ जानते हुये भी दादा की रिहाई के लिये दबाव क्यों डाला जाता ? शासन प्रबन्ध में मीन-मेष क्यों निकाली जाती ? खैर। आप पेशवा साहब से सलाह करके, जिस दिन, जिसको मुझे अपने पद के भार को सौंपने के लिये आज्ञा दें—शेष जीवन अब मैं काशी में रहकर व्यतीत करना चाहता हूँ। रही बात आपके सात करोड़ रुपयों की, तो क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि इन युद्धों से जिसे आप लगभग बारह साल तक उत्तर भारत में तथा पंजाब के प्रदेशों में लड़ते रहे—पेशवा साम्राज्य को क्या लाभ हुआ है ? किन प्रदेशों और इलाकों को जोड़ कर साम्राज्य की सीमा को विस्तृत किया गया है ? हाँ, आपके राज्य की सीमा अवश्य बढ़ी है। आपका यश फैला है। धन मिला है और शक्ति की वृद्धि हुई है। जो कुछ भी आपने किया, अपने लिये किया और अपने स्वार्थ की पूर्ति के हेतु किया है। आप स्वयं अपने कहलाने वाले साम्राज्य की भूमिका बना रहे हैं। आपको पेशवा से कहाँ तक सहानुभूति और उसके प्रति कर्तव्यों की पूर्ति का ध्यान है—इसे भली-भाँति समझा जा सकता है।' नाना साहब आज एक-एक बातें खोलकर रख देना चाहते थे।

महादजीको क्रोध आ गया। कुछ गरम पड़ते हुये बोला—'अपनी सीमा से आप बाहर न जाइये। आपको ज्ञात है कि मैं इस प्रकार की बातें सुनने का अभ्यस्त नहीं। आपसे लिहाज करने का यह अर्थ नहीं है कि जो मुँह में आये आप बकते चले जाँय। यदि इस समय आपके स्थान पर......खैर। मैं सब देख लूँगा। अब मुझे पूना छोड़कर जाना है। आप...।'

'धमकी की', नाना साहब ने बीच में टोका—'आवश्यकता नहीं शिंदे

साहब। सत्य बातें कटु होती ही हैं। आपको पूना से जाने के लिये कहता कौन है। आप रहें और सारे प्रबन्ध को सँभालें। अब मैं इस योग्य नहीं हूँ। कल पद-भार दे दूँगा। समझे आप ?' नाना साहब उठ खड़े हुये।

रात ही में पेशवा को महादजी और नाना साहब की आपसी झड़प और नाना का पद-त्याग तथा काशी में रहने के विचार की सूचना मिल गई। उसे बड़ी चिन्ता हुई। हरीपन्त को बुलवा भेजा। बड़ी रात गये तक इस आपसी शत्रुता के अचानक उठ खड़े हुये प्रश्न को सुलझाने के लिये सलाहें होती रहीं, क्योंकि यह बड़ी विचित्र समस्या आ पड़ी थी।

दूसरे दिन धूप चढ़ते ही पेशवा ने महादजी और नाना साहब को बुलवाया। हरीपन्त फड़के, अईया शास्त्री (राम शास्त्री की मृत्यु के उपरान्त इस पद पर यही आरूढ़ किया गया था तथा अन्य मंत्रीगण पहले ही आ चुके थे। नाना और शिंदे भी आये। पेशवा नाना साहब और महादजी को सम्बोधित करता हुआ बोला—'आप लोगों ने मेरी माता की रक्षा की और आप ही लोगों ने मेरा पालन-पोषण भी किया। विशेष कर नाना साहब के कार्य तो अकथनीय हैं। शायद एक पिता भी अपने लड़के के लिये इतना नहीं कर सकता जितना इन्होंने मेरे लिये किया है। क्या नाना साहब आपसे एक बात पूछ सकता हूँ ?'

'ऐसा कह कर महाराज मुझे लज्जित न करें।' नाना साहब अपनी अधीरता को दूर करने का प्रयास करते हुये बोले।

'मनुष्य अपनी और अपने परिवार वालों की या धन-सम्पत्ति की रक्षा तो इन्हीं दो भुजाओं से करता है न ?'

'हाँ महाराज।'

'और यदि उसका एक हाथ काट कर अलग कर दिया जाय तो ?'

'तब वह कुछ असमर्थ हो जायेगा। या यों कह सकते हैं, उसकी शक्ति आधी हो जायेगी।'

गंभीर पेशवा ने महादजी की ओर मुँह फेरा, 'महादजी साहब, यदि उस व्यक्ति का दूसरा भी हाथ काट दिया जाय तो ?'

शिंदे ने पेशवा की ओर ध्यान से देखा—'तब वह किसी योग्य न रह जायेगा महाराज। उसका जीवित रहना और न रहना दोनों समान है।'

सवाई माधवराव ने एक तलवार नाना की ओर खिसका दी और दूसरी शिंदे की ओर, और स्वयं उठ खड़ा हुआ। युवक की आन्तरिक व्यथा चेहरे पर दृष्टिगोचर होने लगी थी। वह सिर लटकाते हुये बोला—'मेरे इन दोनों भुजाओं की अब क्या आवश्यकता ? जिनके कारण इनमें बल संचारित हुआ था, जब वे ही पृथक और साथ छोड़ चले, तब कैसी आशा ? और उन्हें बनाये रखने की कैसी तमन्ना ? अनाथ से सनाथ और फिर अनाथ न होना ही उचित और भविष्य के लिये कल्याणकारी है। उठिये। काट डालिये इन दोनों को। जो बनाता है वही बिगाड़ता भी तो है। आप न्याय की दृष्टि में दोषी न ठहराये जायेंगे।

शिंदे के हृदय में जैसे किसी ने डंक मार दिया हो। उसने सिर नीचा कर लिया। नाना कुछ कहने वाले थे कि पेशवा बोल उठा—'मुझ जैसे अनाथ लड़के से यह न छीन लीजिये महादजी साहब। आप दोनों मेरे बायें और दाहिने हाथ हैं। आप दोनों मेरे लिये उतने ही आवश्यक हैं। आप के अलग होते ही मैं और मेरा साम्राज्य देखते-देखते रौंदकर मिट्टी में मिला दिया जायेगा। आप दोनों के अतिरिक्त तीसरा इनकी रक्षा नहीं कर सकता।' पेशवा ने आगे बढ़कर फड़के की ओर देखा। फड़के गणपति की मूर्ति लेकर समीप आ गया। पेशवा ने एक हाथ नाना की ओर दूसरा शिंदे की ओर बढ़ाया। दोनों जैसे चुम्बक में खिचते हुए आ खड़े हुए। दोनों ने मूर्ति के सम्मुख शपथ ग्रहण की। मैत्री हो गई। नाना साहब और महादजी शिंदे गले से लिपट कर मिले। भूत को बिसार कर भविष्य के चिन्तन के लिए कटिबद्ध हुये।

परन्तु 'कटिबद्धता' की प्रेरणा देने वाला उस सर्वपति को यह 'चिन्तन' अच्छा लगे तब तो। वह तो कुछ और करना चाह रहा था। उसे यह क्यों भाता ? माघ का महीना, सोमवार का दिन, महादजी शिकार से संध्या को लौटा। उसे कुछ सर्दी महसूस हुई। राज्यवैद्य आये। सर्दी बढ़ने लगी और

बढ़ती गई। मंगल को सबेरे उनकी दशा शोचनीय हो गई और आगे की ओर ही थी। रात होते-होते उनकी बोली भी बन्द हो गई।

दो-चार, छः-आठ, दस-बारह, रावटी वैद्यों से भर गई। परन्तु सर्दी बढ़ती ही गई। बुध के सबेरे नाना साहब को सूचित किया गया। वे दौड़े हुए बलवदी आये। दशा बहुत बिगड़ चुकी थी। नाना साहब उलटे पाँव लौटे। पेशवा को बताया और फिर दोनों शिविर को आये। हालत और बिगड़ चुकी थी, परन्तु महादजी अभी ज्ञानशून्य नहीं हो पाया था। उसकी छलछलाई आँखें कुछ देर तक पेशवा और नाना को देखती रहीं फिर उसने हाथ जोड़ते हुए मोती सदृश अश्रुकणों को कोरों से लुढ़का दिया।

पलकें मुदती हुई मुँद गईं।

—:o:—

सैंतीस

महादजी की अचानक मृत्यु से नाना साहब को कितना दुःख था, यह कहा नहीं जा सकता। हीरे के खुरदरेपन से उसके अस्तित्व की व्यापकता को मिथ्या तो नहीं बनाया जा सकता। केवल तराश की आवश्यकता पड़ती है। वह फिर अपने में आ जाता है। परन्तु तराशने के बाद वह टुकड़े-टुकड़े भी हो सकता था—इसकी किसे आशा? बात बनकर बिगड़ गई। उम्मीद थम कर फिसल गई। कालग्रस्त महादजी ने नाना साहब को असहाय कर दिया। पीछे को बिसार कर, आगे की सुखद कल्पनाओं में बढ़ता हुआ नाना साहब का मन बैठ गया। फिरंगियों से मुक्ति का प्रयास, सम्भवतः प्रयास मात्र ही न रह जाय—उनका हतोत्साहित मन उद्विग्न हो उठा। महादजी के शरीरान्त के उपरान्त कई दिनों तक वे दुखित हृदय से इस प्रश्न पर सोचते रहे, किन्तु असीम की सीमा कैसी? झुकते हुए कन्धों पर बढ़ता हुआ भार, कब तक सँभल सकेगा—कौन जाने?

इसी बीच गुप्त सूचनायें आईं। निजाम अली का मंत्री अजीमुल उमरा मशरुल मुल्क गुलाम सैयद खाँ, मराठों के प्रभुत्व को नष्ट करने का प्रयत्न कर रहा था। अंग्रेजों से गुप्त वार्तायें चल रही थीं। नाना साहब चौंके। नई और कयास में न आने वाली बात। निजाम आस्तीन का साँप बन गया। वे सतर्क हुये। विशेष गुप्तचरों की तैनाती हुई। खबर सच निकली। पूना में मशीरुल मुल्क द्वारा तैनात गुप्तचर पकड़े गये। उनका काम था पूना की प्रत्येक बात को सूचित करते रहना तथा मराठे सरदारों को नाना के विरुद्ध भड़काना। नाना साहब को अब विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं थी। उठने के पहले ही कुचल देना अधिक समझदारी का काम था। वे मशीरुलमुल्क की फितरतों को भली भाँति समझते थे।

पूना सरकार द्वारा हैदराबाद दरबार में नियुक्त राजदूत गोविन्दराव काले को सूचित करते हुए नाना साहब ने निजाम अली को एक पत्र लिखा और पिछले कई वर्षों के बकाये चौथ की माँग की। ब्योरेवार लेखे का पूर्णाङ्क तीन करोड़ रुपया था। माँग में सत्यता थी। नाना साहब अपने को गलत रास्ते पर रखकर किसी प्रकार का कार्य नहीं करते, चाहे जैसा भी हो। यही उनका विशेष गुण था।

गोविन्दराव ने मशीरुल मुल्क को पत्र दिखाया। कुछ समय तक वह पत्र को उलट-पुलट कर बार-बार देखता रहा, फिर रूखे पन से मुँह सिकोड़ता हुआ बोला—'पता नहीं, कैसे-कैसे क्या हिसाब लगा रखा है? मैं कुछ भी समझ नहीं पा रहा हूँ। काले साहब, आप नाना को लिख दीजिये कि उन्हें अगर जरूरत हो तो खुद यहाँ आकर इसे समझावें। मेरे पास इतना वक्त नहीं है।'

'लेकिन', गोविन्दराव ने शान्त भाव से कहा, 'नाना साहब को यहाँ आने के लिए अवकाश कहाँ है? आप स्वयं समझ सकते हैं।'

'सब समझता हूँ', वह उजड्डतापूर्वक बोला 'उसके आने का इन्तजाम मैं कर रहा हूँ। कुछ ही दिनों में वह यहाँ होगा। आप देखियेगा।'

गोविन्दराव फिर उसी प्रकार शान्त भाव से बोला; खैर, इसे तो आप समझें। चूँकि पन्त प्रधान आप से चौथ वसूल करते आये हैं और आप उन्हें देते भी हैं; ऐसी हालत में बकाये को वसूल करने का हक वाजिब है और अब तो बादशाह सलामत द्वारा वकीले मुत्लक घोषित होने के कारण उनके अधिकार और भी बढ़ चुके हैं। वैसे देने-लेने का मसला तो उनके और आप के बीच का है।' चतुर राजदूत ने मीठी बोलियों से मारा।

अजीमुल उमरा आपे से बाहर हो गया। गर्जते हुए बोला 'लेन-देन का भाव तो उस दिन मालूम होगा जिस दिन पूना जलाकर खाक कर दूँगा और तुम्हारा पेशवा मिट्टी के बर्तन में भीख माँगता हुआ हैदराबाद की सड़कों पर

नजर आयेगा। नाना को खबर कर दो कि चौथ की भुगतान मैदाने जंग में होगी। अगर लेने की हिम्मत हो तो आये ' वह उठ गया।

संध्या को गोविन्दराव ने निजाम अली से भेंट की। उसे ऊपर नीचे, भला-बुरा, वर्तमान—भविष्य, सब कुछ समझाने का प्रयत्न किया। बीती बातों का स्मरण दिलाया। मित्रता और पारस्परिक संगठन के महत्व को दर्शाया। उसके गुणों की व्याख्या की। टोपीवालों की चालें तथा धूर्ततापूर्ण व्यवहारों की ओर भी संकेत किया, किन्तु निजाम अली को गोविन्दराव की बातें जँची नहीं, तथ्यहीन प्रतीत हुईं। उसे अपने मंत्री मशीरुल मुल्क की दूरदर्शिता और नीतिज्ञता पर विश्वास था। विश्वास ही नहीं वरन पूर्ण भरोसा था। मशीरुल मुल्क जो कुछ सोच रहा था—सही सोच रहा था ; जो कर रहा था—सही कर रहा था। अजीमुल उमरा स्वप्न को सत्य में परिणित करने की क्षमता रखता था, ऐसा निजाम को विश्वास था। इसलिये रंगे सियार की भाँति वह कोमल स्वर में गोविन्दराव से बोला—'आप कहते तो बिल्कुल सही हैं काले साहब, लेकिन क्या किया जाय ? मशीरुल मुल्क के कामों में रुकावट भी तो नहीं डाली जा सकती। मराठों की भलमंसी और नाना साहब की मुहब्बत को मैं कभी नहीं भुला सकता, लेकिन मजबूरियाँ जो न करा दें। मशीरुल मुल्क वक्त को परखने में बड़ा होशियार है, इसलिये मुझे चुप हो जाना पड़ता है।'

निजाम अली की बेतुकी बातें सुनकर काले झुँझला उठा, परन्तु कुछ कहने से लाभ तो निकलता नहीं था—वह चुप-चाप चला आया। नाना साहब को सारी सूचनाएँ देते हुये अन्त में काले ने यह भी लिख दिया '……निजाम अली मशीरुल मुल्क के हाथों का खिलौना हो रहा है। युद्ध होकर ही रहेगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं……।'

परन्तु गोविन्दराव से प्राप्त सूचना के तीसरे ही दिन एक और कासिद आया। यह निजाम अली का दूत था। पत्र निजाम अली द्वारा लिखा हुआ था और झगड़े को शान्त तरीकों से हल करने के हेतु था। नाना साहब कुछ

समझ न पाये। एक ही स्थान से, एक दिन के अन्तर में चली हुई दो विपरीत सूचनायें।

कासिद के आने के दूसरे ही दिन मीर आलम भी आ गया, समझौते की वार्ता के हेतु। वार्ता आरम्भ हुई और तीन महीनों तक चलती रही। विवाद बढ़ाने के लिये ही वह भेजा गया था, निबटाने के लिये नहीं। लगातार तीन मास तक वार्ता होने के उपरान्त भी जब हाथों में छोर आता हुआ न दिखाई पड़ा तो नाना साहब ने वास्तविकता की जानकारी करनी चाही। मीर आलम ने स्वीकार किया—वह समझौते के अन्तिम निर्णय से वंचित है। नाना साहब अब समझे। वार्ता भंग कर दी गई। मीर आलम लौट गया।

अड़तीस—

दूसरे दिन अपने कमरे में नीरा तो न मिली, किन्तु एक पत्र मिला। पत्र सेनापति हरीपन्त फड़के के नाम था। दौड़ता हुआ खिदमतगार सेनापति के पास पहुंचा और पत्र देते हुये हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। उसे अधिक चिन्तित देखकर सेनापति ने पूछा 'क्या हुआ?' सेनापति पत्र पढ़ने लगे।

'मालकिन घर मे नहीं हैं महाराज। सब कहीं देख डाला। उनके कमरे में यह खत मिला था।' खिदमतगार एक साँस में कह गया।

पत्र का केवल सार था 'अलविदा'। सेनापति के हृदय को जैसे किसी ने अपनी बलिष्ठ मुट्ठियों में दबाकर मसल दिया हो। शरीर सिहर कर ठंढा पड़ गया। उन्होंने एक अनोखी दृष्टि से खड़े खिदमतगार की ओर देखा। वह भी व्यथित था। हरीपन्त बोला—'तुम्हारी मालकिन कहीं चली गईं। अब लौटेंगी नहीं। समझे। जाओ। हो सका तो संध्या को आऊँगा।'

खिदमतगार आगे क्या पूछता?

सेनापति के शरीर में कुछ हो गया। क्या हो गया—केवल जिज्ञासा की जा सकती थी। उत्तर नहीं दिया जा सकता था। हृदय को कुछ हो गया था। कलेजा छिदने लगा। शरीर घुलने लगा। रोगों के आक्रमण होने लगे अँतड़ियों में अधिक शिकायत रहने लगी। अन्तर की व्यथा सांघातिक होती ही है। और हरीपन्त के साथ तो वह दिन प्रति दिन और भी जटिल होती जा रही थी। जटिलता का कारण भी था। उनकी व्यथा निकल कर हल्की तो हो नहीं सकती थी। अतः उसमें विषमता की उत्तरोत्तर वृद्धि होते रहना स्वाभाविक था। पूना में हरीपन्त के दिन ज्यों-त्यों कटने लगे। अस्वस्थता बढ़ती गई। लोगों को रखनी थी, अतः उपचार भी चलता रहा। लाभ और

हानि को सेनापति भली-भाँति समझने लगे थे। दिन घटते गये। रोग बढ़ता गया।

सबेरे नाना साहब 'फड़केबाड़ा' में बैठे हरीपन्त से, निजाम के साथ होने वाले युद्ध के विषय में विचार-विमर्श कर रहे थे। यद्यपि सेनापति कुछ अस्वस्थ अवश्य दिखायी पड़ रहे थे, किन्तु वैसी कोई विशेष बात नहीं थी। नाना दोपहर तक, सेना के संचालन, उसका पुनर्गठन, हार-जीत के लक्षण, आवश्यकतानुसार उसकी तैयारियाँ, अधिक सतर्कपूर्ण रहते हुये भी प्रत्येक कार्यों का प्रतिपादन तथा अन्य बड़े से लेकर छोटे विषयों पर मंत्रणा होती रही। नाना साहब ने उठते हुए पूछा 'अब तुम्हारी तबियत तो ठीक है ?'

'हाँ ठीक ही समझो। चल रहा हूँ, यही क्या कम है।' फड़के ने मुसकराने की चेष्टा की।

'चलने से काम नहीं चलेगा। इस बार मोर्चा फ़तह कर लेना है। निजाम इस बार बहुत कुछ करना चाह रहा है।'

'तो भागता कौन है ? कभी भागा भी हूँ या इस बार ही भाग जाऊँगा। इस प्राण की अब आवश्यकता तो नहीं थी नाना, परन्तु तुमसे दूर शायद हटना भी नहीं चाहता। मेरे ख्याल से सम्भवतः इसी खींचा-तानी में यह अटका हुआ भी है।' हरीपन्त के दो मतलबी कथन में पूर्णतः सत्यता थी। उसमें स्वाभाविकता थी।

सत्य में एकता है, अनेकता नहीं। वह चुम्बक है। अपनी ओर ही खींचता है। नाना साहब समझते हुये बोले—'इस पर मुझे गर्व है फड़के और सदैव रहेगा। मैंने इस संसार में पाया तो बहुत कुछ है, लेकिन इसके सानी नहीं।' वे रुके। 'अब जा रहा हूं,' नाना साहब चलने को हुए।

'भोजन यहीं कर लो। बहुत देर तो हो गई है।'

'नहीं। वह प्रतीक्षा में बैठीं होंगी। पारा गर्म होने पर ठंडा देर में होता है।' नाना मुसुकराये।

हरीपन्त हँस पड़ा—'किसी दिन मिलने पर पूछूँगा कि अब भी भाभी को कुछ है। समय को बीते तो बहुत दिन हो गये।'

नाना साहब हँसते हुए बाहर हो गये।

अचानक संध्या को नाना को सूचना मिली। सेनापति की तबीयत अधिक खराब मालूम पड़ रही है। वे कुछ आश्चर्य में पड़ गये। अभी-अभी वे दोपहर में आये थे। वे शीघ्रता से वहाँ पहुँचे। हरीपन्त मौन लेटा हुआ पड़ा था। मँडराती हुई मौत की छाया चेहरे पर दृष्टिगोचर होने लगी थी। नाना साहब को पर्यङ्क के समीप बैठते हुये कुछ ऐसा ही आभास मिला। सेनापति ने करवट ली। 'तुम आ गये', वह मुसकराने की चेष्टा करता हुआ बोला—'प्रयत्न तो बहुत किया नाना, किन्तु सफलता न मिल सकी। तुम्हें ऐसी अवस्था में अकेला नहीं छोड़ना चाहिये था। लेकिन अपने बस की बात हो तब तो। गणपति की यही इच्छा है।'

नाना का अन्तःकरण कराह उठा, परन्तु उन्होंने अपने को ढाँढ़स दिया और रोगी को सान्त्वना देते हुए हँस कर बोले—'फिजूल की बातें न करो। अभी तुमको बहुत दिनों तक मेरे साथ रहना है और कार्यों में हाथ भी बटाना है। अभी तुम ठीक हुए जाते हो।' बैठे हुए वैद्यों के संकेत पर उन्होंने पूछा—'तुमने औषधियाँ खाना क्यों बन्द कर दीं?'

'इसका उत्तर बाद में दूँगा।' उसने करवट बदल ली—'महाराज को देखने की बड़ी इच्छा हो रही थी नाना। यदि आ जाते तो उनसे भेंट कर लेता।' हरीपन्त ने आँखें बन्द कर लीं।

नाना साहब शनिवारबाड़ा दौड़े। सवाई माधवराव को समाचार बताया और फिर उन्हें साथ लेकर लौटे। पेशवा पर्यङ्क के सम्मुख आकर खड़ा हुआ। फड़के को पहिचानने में कुछ कठिनाई हुई। रोगी की इतनी तेजी से बढ़ती हुई रफ्तार देखकर नाना साहब का हृदय बैठने लगा। हरीपन्त ने कुछ कहा नहीं। कुछ समय तक पेशवा को घूरता रहा। नाना ने महाराज के आगमन का संकेत किया। बड़ी कठिनाई से सेनापति ने दोनों हाथ जोड़े और फिर

आँखें बन्द कर लीं। पेशवा ने बाहर निकलते हुए नाना साहब से कुछ कहा और भवन को लौट आया।

वैद्यों ने औषधियाँ दीं। आधे घंटे के अन्दर सेनापति के शरीर में चेतना दौड़ गई, परन्तु उन लोगों ने रोग असाध्य बताया। आशा-निराशा में परिणत हो गई। सेनापति ने आँखें खोलीं। सामने देखा। इधर-उधर देखा। तब मौन हो कुछ समय तक छत की ओर देखते रहने के उपरान्त नाना साहब की ओर देखता हुआ बोला—'उसने बड़ा धोखा दिया नाना। कहा था कुछ और. कर दिया कुछ और। अच्छा जो कुछ किया, ठीक ही किया और मैं भी जो कुछ कर रहा हूँ सही ही कर रहा हूँ।' वह चुप हो गया। परन्तु शीघ्र ही किसी बात के स्मरण आते ही उसने पूछा—'तुमने अभी भोजन तो किया न होगा? जाओ। भोजन कर लो। उठो। अब देर न करो।'

नाना साहब उठकर दूसरे कमरे में चले आये।

सेनापति ने और किसीसे बातें नहीं की। ऊपर छत में टकटकी बाँधे देखता रहा। घड़ी, दो घड़ी, और तीन घड़ी। औषधियों की शक्ति कम पड़ने लगी। पैर ठंढे होने लगे। नाना दौड़कर आये। हिचकियाँ बँध गई थीं। कफ की खरखराहट आने लगी। अन्तिम हिचकी आई। उसमें जोर था और काम तमाम हो गया।

नाना साहब पर पहाड़ गिर पड़ा और कमर टूट गई।

उन्तालीस

नाना का मित्र, आज्ञाकारी मित्र ; उसने भी साथ छोड़ दिया। नाना साहब ने सब की। और करते क्या ? कर्त्तव्यों का पालन करना ही था। उसमें फिर जुट पड़े। युद्ध होना अवश्यंभावी था। सम्भवतः भयंकर होना था। विपक्षी की ओर तैयारियाँ ऐसी ही हुई थीं। अतः आदेश जारी हुए—रघुजी भोंसले, तुकोजी होलकर, गोविन्दराव गायकवाड़ और दौलतराव शिंदे (महादजी का गोद लिया हुआ उत्तराधिकारी) को एकत्रित होने के लिए।

निजाम अली महल छोड़ चुका था। डेढ़ सौ बेगमों और सौ रखैलों के साथ वह शिविर में आ गया। बीदार पर सेना एकत्रित होने लगी। अँग्रेजों ने साथ देने से इन्कार कर दिया। उन्हें मराठों की तैयारियों का ज्ञान हो चुका था। इस बार नाना साहब का सामना करना और भी कठिन था। उनके बूते की बात नहीं थी। परन्तु अहंकारी मशीरुल मुल्क को कौन समझावे ? फिर भी अँग्रेजों ने समझाया। समय की प्रतीक्षा करने के लिए कहा। परन्तु उसने एक न सुनी। उसका विनाश होना था।

अगहन की सर्दी। सूचना मिली—निजाम की सेना ने बिहार छोड़कर पूना की ओर प्रस्थान किया है। युवक पेशवा ने शनिवारवाड़ा त्यागा। खेमों में आया। यह उसका प्रथम और अन्तिम युद्ध-प्रवेश था। सेनाएँ एकत्रित हुईं और पूस के प्रथम चरण में पूरब की ओर बढ़ने लगी। सेना बढ़ रही थी तीव्रता से घोड़ नदी के किनारे-किनारे। खरडा—जहाँ पेशवा साम्राज्य की पूर्वी सरहद समाप्त होती है, अस्सी कोस के फासले को तय करके वहाँ पहुँचना था।

गज बढ़ रहे थे। अश्व बढ़ रहे थे। सैनिक बढ़ रहे थे, सेना बढ़ रही थी। पूस समाप्त हुआ। माघ भी समाप्त होने को आया। फगुनहटा बहने लगी।

मनदावगाँव छूटा। मिराज गाँव के आगे सेना बढ़ी। होली का त्योहार आया। फिर आये न आये। रतनपुर में सेना रोक दी गई। पड़ाव पड़ गया। संध्या को नाना साहब ने प्रत्येक सरदार से अलग-अलग बातें की। प्रत्येक के लिये उनकी बातें अत्यधिक गोपनीय थीं। नाना साहब कुछ टटोल रहे थे। कुछ निष्कर्ष निकाल रहे थे। दूसरे दिन होली थी—'उड़त गुलाल लाल रंग छाये रहे।' प्रकृति गुलालमय हो गई। दोपहर के उपरान्त रंगों का कार्य-क्रम समाप्त हुआ।

दरबार का आयोजन था। 'दलबादल' नामक विशेष प्रकार के तने हुए वितान के नीचे, मसनद पर पन्त प्रधान पेशवा श्रीमन्त सवाई माधवराव नारायण ने स्थान ग्रहण किया। भरे दरबार में स्तब्धता छा गई। पेशवा के बगल में खड़े होते हुये नाना साहब ने मराठों की इस एकता तथा स्वामी के प्रति कर्तव्यों के पालन की दृढ़ता पर बधाई दी और भविष्य में बनते हुये साम्राज्य के नये रूप की व्याख्या की। दरबार गद्‌गद हो झूम उठा। नाना साहब ने फिर कहना आरम्भ किया। उन्होंने निजामअली से हुए सारे पत्र-व्यवहारों को पढ़कर सुनाया तथा अपने पकड़े हुए सही रास्ते की पुष्टि की। प्रत्येक उत्तेजित हो रहा था।

नाना साहब रुके। उन्होंने परशुराम भाऊ की ओर देखा और सभासदों को सम्बोधित करते हुए आगे कहा—'खरडा समीप है। युद्ध के सेनापतित्व का भार अब किसी एक के हाथ में आ जाना चाहिये। मैं समझता हूँ परशुराम भाऊ साहब इसके लिए उपयुक्त व्यक्ति होंगे। तुकोजी साहब तथा रघुजी साहब की अवस्थाओं को देखते हुए इन्हें अधिक परिश्रम करना पड़ेगा जो कष्टदायक होगा। दौलतराव शिंदे अभी युवक हैं, अतः... ।'

रघुजी बीच में बोल उठे—'ठीक है।' दूसरे लोगों ने भी 'हाँ-हाँ' करके इसकी पुष्टि की। परशुराम भाऊ सेनापति घोषित हुआ।

सीना नदी के तट पर पड़ी हुई डेढ़ लाख मराठी सेना और खरडा से दो

कोस पीछे खार नदी के किनारे-किनारे निजाम की फैली हुई नब्बे हजार सेना, पानीपत के युद्ध-स्थल का दृश्य उपस्थित कर रही थी। पानीपत के बाद यहाँ दूसरा अवसर था जब कि सेनाओं का इतना बृहत जमघट आमने-सामने युद्ध क्षेत्र में हुआ। नाना साहब ने साम्राज्य के जिस उत्कर्ष का कभी स्वप्न देखा था, उससे कहीं अधिक शक्तिशाली और उन्नतशील स्वरूप, केवल अपनी बुद्धि और निःस्वार्थ त्याग के बल पर उन्होंने सब के सन्मुख खड़ा कर दिया। फिरंगियों की आशाएँ निराशाओं में परिवर्तित होने लगी थीं।

सप्ताह समाप्त होने को आया। सेनाएँ शान्त—जैसे लड़ने के हेतु आई ही न हों—एक दूसरे के सामने डटी थीं। आज आठवाँ दिन था। बाबाराव कुछ 'हुजूरात' सैनिकों सहित सामने, कुछ दूर आगे तक क्षेत्र निरीक्षण के हेतु निकल गया। विपक्षी सैनिकों ने देखा और वे टूट पड़े। बाबाराव को मैदान छोड़कर जीवन रक्षार्थ पीछे भागना पड़ा। मुसलमानों की शुरूआत विजय से हुई।

संध्या को मशीरुल मुल्क ने बड़े तड़क-भड़क से दरबार का आयोजन किया—जीत की खुशी में। बीच दरबार में नाना साहब, तुकोजी होलकर, दौलत राव शिन्दे तथा परशुराम भाऊ की प्रतिमाएँ घृणित वस्त्रों से लपेटी हुई, लाकर रख दी गईं। दरबार कहकहे लगाकर लोट-पोट हो गया। राजपूत गोविन्दराव दरबार छोड़कर अपनी रावटी में चला आया। मशीरुल मुल्क की इस क्षुद्रता पर उसके शरीर में आग लग रही थी। परन्तु करता क्या नौकरी ही ऐसी थी।

निजामअली के आगमन की घोषणा की गई। वह आया। दरबार ने ज़िन्दाबाद के नारों से गगन भेद दिया। उसके बैठने के उपरान्त मशीरुल मुल्क ने खड़े होते हुए अपने स्वामी निजाम की बहादुरी और बढ़ते हुये इकबाल की प्रशंसा में जमीन आसमान के कुलावे मिला दिये। तब वह अपने मियाँमिठ्ठू बना। तदुपरान्त एकत्रित सिपहसालारों, सरदारों और सिपाहियों को बढ़ावा देते हुये उन प्रतिमाओं की ओर संकेत किया और इस्लाम की दुहाई देकर इन्हें तथा पूना को खाक में मिला देने के हेतु, बार-बार रसूलेपाक को सम्बोधित

करता हुआ सैकड़ों कसमें खाईं। लोगों ने नारे लगाये — 'मशीरुल मुल्क जिन्दाबाद, अजिमुल उमरा जिन्दाबाद मैनुद्दौला जिन्दाबाद, अरिस्तुजाद जिन्दाबाद।' प्रकृति में एक बार कँपकँपी दौड़ गई।

उसका भाषण समाप्त हुआ। तब साकी और शराब का दौरदौरा आया। फिर धीरे-धीरे ठुमकती हुई नूपुरों की ध्वनि। चाँद से मुखड़ों पर, बड़ी-बड़ी, नीली-नीली, भूरी-भूरी, आँखों से उठती हुई नकाबें — समा के शमा को खींचने लगी। दरबार ने महफिल का रूप ले लिया।

दूसरे दिन सेनाएँ बढ़ीं। बीच भाग में परशुराम भाऊ और तुकोजी होलकर की सेनाएँ। साथ-साथ नाना साहब और पेशवा भी थे। दाहिनी ओर भोंसले और गायकवाड़। बायीं ओर दौलतराव शिंदे। निजामअली की सेना खरडा से आगे बढ़ी। पशुराम भाऊ ने अपने सैनिकों को ललकारा और अपने घोड़े की रास झिटकी। घोड़ा उड़ चला। सैनिक उड़ चले। परशुराम जूझा। परन्तु निजामअली के सरदार लालखाँ बलूची ने कमाल कर दिखाया। जिधर दृष्टि जाती लालखाँ की तलवार ही चमकती नज़र आती। रण-प्रागंण में इस समय वह रौद्र बना था। मराठों में हाहाकार मच गया। बलूची का पौरुष और पराक्रम देखकर सब दाँतों तले अँगुलियाँ दबा रहे थे। लालखाँ बढ़ा। परशुराम भाऊ ने रोका। दोनों भिड़े। भाऊ कमजोर पड़ता हुआ दिखाई पड़ा। लालखाँ ने इस बार जमकर वार किया। वार कुछ चूक गया। चोट सिर पर लगी। परशुराम घोड़े से गिर पड़ा। परन्तु पार्श्व में लड़ते हुये हरी पटवर्धन ने पिता की रक्षा की। उसने लालखाँ को ललकारा। बलूची झपटा — शेर की भाँति। वह खून का प्यासा हो रहा था। किन्तु युवक पटवर्धन की तलवार में क्रोध के साथ पिता का अपमान और बदला लेने की उत्कंठा थी। वह उससे भी अधिक भयंकर हो गया। दोनों गुँथ गये। बेटे ने बाप की लाज रखी। युवक ने पैंतरा बदलते हुए अपनी तलवार को नचाया। वार भरपूर था। लालखाँ का सिर धड़ से अलग हो गया।

मराठों में जान आई। उत्साह बढ़ा। मुसलमान पीछे हटने लगे। संध्या

हुई। फिर रात्रि का आगमन–घोर अंधकार। लेकिन सैनिकोंमें थकान जैसे आई ही न हो। विपक्षी पीछे हट रहे थे, किन्तु भगदड़ नहीं थी। अंधकार का घनत्व और बढ़ा हाथ को हाथ सुझाई न पड़ता था। यवन अब अपने को न सँभाल सके। भगदड़ मच गई। मराठों ने पीछा करना उचित न समझा। सैनिक शिविर को लौटे। प्रकृति में निस्तब्धता छा गई। अंधेरा साँय साँय करने लगा।

रात्रि में एक बज रहा होगा। अचानक धाँय का शब्द हुआ। और फिर बन्दूकों से गोलियाँ दनादन चलने लगी। हमला'—यवन सैनिकों ने सोचा। विलासी राजा के सिपाही भी तो विलासी होंगे? सैनिकों ने बिना आगा-पीछा सोचे मैदान छोड़ दिया। हर तरफ भगदड़ मच गई। सेना सिर पर पैर रख कर भाग रही थी। चाँद ने आकाश में झाँका। संसार जगमगा उठा। निजाम अली ने अपनी सेना को देखा। लक्षण कुछ और दिखाई पड़ने लगे थे। वह भी भागा और पीछे खरडा दुर्ग में आकर शरण ली। साथ मशीरुलमुल्क भी था।

दूसरे दिन सबेरे ही निजामअली ने गोविन्दराव को दुर्ग के अन्दर अपने जनानखाने में बुलाया। वह बड़ा चिन्तित दीख रहा था। गोविन्दराव आया। निजामने करुणा भरी दृष्टिसे उसकी ओर देखा और बैठने का संकेत करता हुआ बोला—'गोविन्दराव साहब मैं अपनी गलती के लिए बड़ा शर्मिंदा हूँ। पता नहीं किस धुन में आकर यह कर डाला। खैर, जैसा किया वैसा नतीजा भी मिला। आप की राय न मानकर मैंने बड़ी भूल की।' वह रुका—'सुबह का भूला हुआ अगर शाम को लौट आये तो उसे भूला नहीं कहा जा सकता। मैं चाहता हूँ आप जल्द से जल्द सुलह करा कर हम लोगों की पुरानी दोस्ती फिर से क़ायम करा दें। यह काम आपके अलावे और कोई नहीं कर सकता।

'हाँ। बात तो सही है। किन्तु जहाँ तक मुझे मालूम है नाना साहब संधि की बात उस समय तक नहीं करेंगे जब तक आप मशीरुलमुल्क को उनके सुपुर्द न कर दें। उन्होंने निश्चय कर लिया है कि मशीरुलमुल्क, जिनकी

वजह से ये सारी खुराफातें हुई हैं—किसी भी तरह न छोड़े जाँय। इसलिये ....।'

'काले साहब,' निजाम ने बीच में टोका 'मुझे दो महीने का वक्त दीजिये। मैं मशीरुलमुल्क को निकाल बाहर करूँगा। मैंने तय कर लिया है।'

गोविन्दराव सोचता हुआ बोला—'राजा साहब मैं पेशवा महाराज का नौकर हूँ, परन्तु साथ ही आपकी भलाई का भी उतना ही ध्यान रखता हूँ। आपके प्रस्ताव को मैं जाकर नाना साहब से कहता हूँ और जैसा वे कहेंगे उसकी सूचना मैं दूँगा। लेकिन इस बात को फिर से भी मैं आपसे कहे देता हूँ कि जब तक आप मशीरुलमुल्क को उनके सुपुर्द न करेंगे वे किसी भी प्रकार संधि के हेतु तैयार न होंगे'। उसने निजाम को कनखियों से देखा। वह आशा-निराशा के पलड़े में झूल रहा था। 'अच्छी बात है,' गोविन्दराव उठता हुआ बोला—'मैं जा रहा हूँ शीघ्र आपको सूचित करूँगा' वह द्वार के बाहर हो गया।

दोपहर तक गोविन्दराव, नाना साहब से मिलकर लौटा। नाना साहब द्वारा लिखित पत्र उसने निजामअली को दिया 'जब तक आप अपने मंत्री को पदच्युत करके मेरे सुपुर्द नहीं करते तब तक पेशवा साहब किसी भी प्रकार की संधि-वार्ता आपसे नहीं कर सकेंगे। यद्यपि वे युद्ध करना नहीं चाहते परन्तु आप यदि करेंगे तो उन्हें भी तैयार होना ही पड़ेगा।' निजाम अली ने पत्र को कई बार पढ़ा। फिर गोविन्दराव की ओर देखता हुआ बोला 'अच्छी बात है।'

नाना साहब को सूचित कर दिया गया। मशीरुलमुल्क की सुपुर्दगी हो गई। दूसरे दिन गोविन्दराव और रंगोपन्त की संरक्षता में मशीरुलमुल्क मराठा शिविर की ओर चला। नाना साहब ने चार कोस आगे आकर वजीर की इज्जत की—जैसे एक मंत्री दूसरे मंत्री का करता है। देखने वाले दंग थे। नाना साहब अपने हाथी से उतर कर मशीरुलमुल्क की हाथी पर जब बैठे और उसी प्रकार बातें होती रहीं, जैसे बहुत दिनों के उपरान्त दो मित्रों के मिलने पर।

पड़ाव के समीप पहुँचने पर नाना साहब के आदेशानुसार मशीरुलमुल्क के हाथ रेशमी रुमाल से बाँध दिये गये और तब वह पन्तप्रधानके सम्मुख उपस्थित किया गया। पेशवा ने वज़ीर को बड़े आवभगत से लिया। कुछ समय तक पेशवा उससे बातें करता रहा; तदुपरान्त नाना साहब, पेशवा और मशीरुलमुल्क तीनों हाथी पर बैठकर आयोजित दरबार के लिए चल पड़े।

दरबार समाप्त होने पर संध्या को भोंसले गायकवाड़, होलकर, शिंदे और नाना साहब की गुप्त बैठक हुई। सब एक स्वर से कह रहे थे—'निजाम का सम्पूर्ण राज्य, पेशवा साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया जाय। न रहे बाँस, न बजे बाँसुरी।' परन्तु उस पतले से लम्बे बाले व्यक्ति ने सिर हिला दिया। वह अन्याय पसन्द नहीं करता था। सत्य ही उसका मार्ग था। बात खत्म हो गई। सब चुप हो रहे।

निजाम अली से संधि हो गई। मशीरुलमुल्क बन्दी बनाकर पूना भेज दिया गया।

— ✻ —

—: चतुर्थ इयत्ता :—

'Nana is gone and with him
the Brahman raj Poona has fallen.'

Capt. Brownrigg.

चालीस

स्वागत और समारोह, सुनहले फूलों की वर्षा और प्रसन्नता, नाच और रंग, सुख और सम्पत्ति—कहने का तात्पर्य सभी कुछ, जिसकी किसी ने कभी कल्पना न की थी, जिसे किसी ने कभी स्वप्न में सोचा न था—वह सब कुछ आज वर्तमान था। पर साधक को अभी अपनी साधना से संतोष नहीं था। उसकी मंजिल दूसरी ओर थी: सम्भवतः यह किसी को विदित नहीं। उसके मेहनत की मजदूरी मिलती तो गई है और बढ़ती भी गई। किन्तु इतने में उसे संतुष्टि नहीं थी। वह कुछ और चाह रहा था, कुछ और सोच रहा था। लेकिन......।

पूना आते ही सवाई माधवराव की तबीयत कुछ खराब हुई और उस खराबी ने ज्वर का रूप धारण कर लिया। ज्वर बढ़ने लगा। हफ्ते भर तबीयत ठीक रहती तो दो दिन फिर बुखार आ जाता। गणपति का त्योहार आया। महीनों पहले से तैयारियाँ हुई थीं। धूमधाम इस वर्ष और भी अधिक होने को था, परन्तु ज्यों-ज्यों वर्ष समीप आता गया, श्रीपन्त की तबीयत और खराब होती गई। ज्वर का तापक्रम सदैव रहने लगा। इन दस-बारह दिनों से तो नहाना धोना, पूजा-पाठ, सभी कुछ बन्द कर दिया गया था। राजवैद्य तथा अन्य वैद्यों के कथनानुसार अब उन्हें बिस्तर से उठने की आज्ञा भी नहीं थी। परिणाम स्वरूप पर्व मनाया गया लेकिन साधारण रूप से।

त्यौहार समाप्त हुआ। श्रीपन्त की तबीयत कुछ सुधरने लगी। धीरे-धीरे पथ्य और भोजन भी दिया जाने लगा। स्नान-ध्यान भी होने लगा। जनता ने आनन्द की साँस ली। शनिवारवाड़ा के सामने वाले बड़े मैदान में एकत्रित जनसमूह ने, ऊपर बारादरी में खड़े अपने स्वामी के दर्शन किये।

क़ुवार का मास चढ़ा। दशहरे की धूम-धाम आरम्भ हुई। विजय उनकी

भी तो हुई थी। नियमानुसार निश्चित दिन से मेला भी लगने लगा। खूब सजावट और सज-धज थी। एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा, फिर तीसरे के बाद चौथा और चौथे के बाद पाँचवाँ—एक-एक करके दिन व्यतीत होते गये। आज दसवाँ दिन था—बृहस्पति का दिन। रावण जलने का दिन और अन्तिम दिन। दोपहर के उपरान्त जन-यात्रा निकली। पन्त-प्रधान हाथी पर आरूढ़, राम की सवारी के पीछे चल रहे थे। तबीयत बहुत स्वस्थ्य नहीं थी, फिर भी यात्रा में शामिल होना ही पड़ा। परम्परा और पूना-निवासियों की इच्छा को कैसे ठुकराया जा सकता था? जलूस मुहल्ले, दर मुहल्ले घूमता हुआ, चक्कर लगाता हुआ आगे बढ़ रहा था। उसे सारे नगर का भ्रमण करना था।

जलूस सदाशिव पेठ से निकल कर चौथे मार्ग से होता हुआ नारायण पेठ की ओर मुड़ा ही था कि अनायास हाथीवान की दृष्टि पीछे की ओर मुड़ी। पेशवा की आँखें बन्द थीं और शरीर हौदे से बाहर, दाहिनी ओर लटकता चला जा रहा था। उसने फुर्ती की। झपट कर पेशवा को पकड़ते हुये उसने अपने दुपट्टे से हौदे में बाँधा और हाथी को राजभवन की ओर मोड़ दिया।

तीसरे दिन पेशवा की तबियत कुछ ठीक थी। सबेरे ऊपर की दालान में, सीकचों के सहारे कुर्सियाँ डाल दी गई थीं—प्रकृति से मन बहलाने के लिये। पेशवा अभी कमरे से आकर बैठा ही होगा कि नाना साहब भी आ गये। पन्त प्रधान स्वस्थ्य दिखायी पड़ रहे थे—नाना साहब के लिये सबसे अधिक संतोष की बात थी। तबियत के विषय में पूछ-ताछ कर, नाना साहब नीचे चले गये। उनके चले आने के कुछ समय उपरान्त पेशवा उठा—कमरे में जाने के लिये, परन्तु उसके पैर कुछ लड़खड़ाये और जब तक वह सँभले-सँभलें, एक पैर नीचे था। वह गिरा और दुर्भाग्यवश, नीचे चलते हुये झरने पर गिरा। दाहिने जाँघ की हड्डी टूट गई और सामने के दाँत भी।

शीघ्रता से वह 'शीशमहल' में लाया गया। हड्डी बैठाई गई। घाव सिले गये और औषधियों का प्रयोग होने लगा। नाना साहब बगल में खड़े रो रहे

थे। बड़े परिश्रम से पौधे को सींच कर तैयार किया था। नगर में बिजली की भाँति खबर फैल गई। बाजार हाट बन्द होने लगे और देखते-देखते सारा नगर, शनिवारवाड़ा के सामने उठ आया। विक्षुब्ध जनता नाना प्रकार की मनौतियाँ मान रही थीं, अपने राजा को जीवित देखने के लिये।

लगभग ढाई घटे के उपरान्त पेशवा ने आँखें खोलीं। पुतलियों को नचाते हुये उसने चारों ओर देखा और पानी के लिये जिज्ञासा प्रकट की। नाना साहब और जनता की बिनती को मानो गणनायक ने सुन लिया था। नाना साहब के नेत्रों से निकलते हुये जल अब अधिक तीव्रता से निकलने लगे। पर ये प्रसन्नता के थे। उन्होंने ऊपर बारहदरी में आकर जनता को आश्वासन दिया और बारम्बार ईश्वर की सराहना करते रहे।

मगल का सूर्य धीरे-धीरे आकाश में चढ़ रहा था। पेशवा काँच के कमरे में लेटा हुआ कुछ सोच रहा था इन दो दिनों में उसकी तबीयत कल्पना से अधिक सुधर गई थी। पर्यंक के समीप नाना तथा अन्य व्यक्ति बैठे हुये थे। सब लोगों की दृष्टि पेशवा की ओर लगी थी। पेशवा ने गर्दन मोड़ते हुये कहा—'नाना साहब।'

'जी महाराज।' नाना उठ खड़े हुये।

पेशवा अपने दाहिने हाथ को उठाता हुआ बोला—'अपना हाथ दीजिये।'

नाना साहब ने हाथ बढ़ा दिया। श्रीमन्त ने उनके हाथों को पकड़कर सीने से लगा लिया। दोनों कोरों से आँसू बहने लगे। 'अब मैं जीवित नहीं रह सकता नाना साहब।'

नाना साहब को आश्चर्य हुआ, 'क्या बात करते हैं श्रीमन्त ? अब कौन-सी शक्ति है जो आपको हमसे छीन ले ? उस महान पालनहारा से भी कोई अधिक बलशाली है महाराज ?'

पेशवा छत की ओर देखने लगा। कुछ क्षण उपरान्त वह धीरे से बोला 'इन हाथों ने तैयार किया है न इसलिये। ठीक है।' उसने नाना साहब के हाथों को छोड़ दिया और आँखें बन्द कर लीं।

नाना ने अधीर होकर पूछा—'महाराज !'

पेशवा ने आँखें खोली 'जाने वाले को बचाया नहीं जा सकता। क्या किया जाय ? जो होता है उसे सहन कीजिये। अब मैं किसी भी दशा में बच नहीं सकता। भविष्य आपके कन्धों पर है।'

नाना साहब रो उठे और चिल्लाते हुये बोले—'ऐसा न कहिये महाराज, ऐसा न कहिये। क्या इन्हीं अधम आँखों को सब कुछ देखना है !' वे फूट-फूट कर रोने लगे। लोग उन्हें पकड़ कर दूसरे कमरे में ले गये।

मार्तंड ने जब अस्ताचल की ओर मुँह फेरा, तब पन्त प्रधान पेशवा का शरीरान्त हो चुका था। ज्योति निकल चुकी थी। रूप बदल गया था।

इकतालीस

(क)

जब इतिहास के पन्ने शीघ्रता से उलट रहे थे तो पानीपत का युद्ध हुआ। शीघ्रता में शिथिलता आई। लिखावट दूसरी होने लगी। प्रवाह विपरीत हो गया। भविष्य का अनुमान लगाना कठिन था। साँझ अंधकार की द्योतक ही है। चाँदनी की कल्पना किस बुनियाद पर की जा सकती थी! तब माधव राव मसनद पर आये। वैसे ही जैसे संध्या के क्षितिज में छिपा हुआ, धीरे-धीरे निकलता हुआ वह बड़ा-सा चाँद। रफ्तार वही थी। उन्नति वही थी और ज्योत्सना वही थी। देखते-देखते पन्त प्रधान ने विपरीत से अनुकूल किया और अनुकूल से वृद्धि। मानो किसी छलिया का टोना—टोटका हो। इतिहास-कारों ने दाँतोंतले अंगुलियाँ दबाई। श्रीपन्त माधवराव की गणना महानों में की गई। पत्ते फिर उलटने लगे। परन्तु अधिक नहीं। माधवराव की असमय मृत्यु हो गई।

चाचा की साम्राज्य—लोलुपता भतीजे को कच्चा खा जाने पर उतारू हो उठी। महल के अन्दर, सब के सम्मुख, दिन में नारायण राव काट डाला गया। फिरंगियों की इच्छा पूरी हुई। भविष्य अट्टहास कर उठा। उसमें एक अजीब भयानकता थी। नाना ने अपनी फर्ज अदायगी की। नमक का बदला चुकाया। अथक परिश्रम के उपरान्त स्वप्नों की दुनियाँ बसने लगी। बसी और बड़े फैलाव के साथ बसी। वैरियों ने उजाड़ना चाहा। जमते को उखाड़ना चाहा। लेकिन उखाड़ना तो दूर, स्वय उखड़ने लगे। हालत बुरी होते-होते खस्ता होने लगी। मराठा साम्राज्य चमका। पेशवाई चमकी। पानीपत के दिन भूले। एक नई जागृति आई। नई चेतना आई। नाना साहब क्या कर दिखायेंगे—यह कहना कठिन हो गया। परन्तु उस सर्वव्यापी को अच्छा न

लगा। सवाई माधवराव की अकाल मृत्यु हो हुई। मसनद खाली हो गयी। उसकी पूर्ति के लिये होड़ लगने लगी। जिसे नाना साहब नहीं चाहते थे, वही पेशवा बना। जैसा उन्हें भय था, वही हुआ। साम्राज्य नष्ट हो गया और इस बुरी तरह हुआ कि आज कोई चिह्न तक नहीं।

रघुनाथराव का बड़ा लड़का बाजीराव जो इस समय बीस वर्ष का था, पेशवा बनने के हेतु षड्यन्त्र रचने लगा। लड़का भी तो था 'हत्यारा भरारी' का। बाप के गुण आने ही चाहिये थे। उसकी गुप्त वार्तायें दौलतराव शिंदे से होने लगीं। बात तय हो गई। पेशवा बनने पर सवा करोड़ नकद और पचीसलाख वार्षिक आय की जायदाद पर।

उधर पूना स्थित अंग्रेजी राजदूत मैलेट से भी उसकी बातें चल रही थीं। मैलेट जब से आया तभी से नाना साहब के प्रति धीरे-धीरे विरोधात्मक भावों को जनता में फैलाने में प्रयत्नशील था। और इस समय तो उसे और उपयुक्त अवसर आ मिला था। उसने चूकना उचित न समझा। धूर्तता और धन बल पर उसे सफलता मिलने की आशा भी थी। अंग्रेजी सरकार धन व्यय करने में उत्सुक थी, तब मैलेट को काहे की हिचक? रुपया पानी की भाँति बहाया जाने लगा। प्रतिमास केवल उत्कोच के खाते में चार हजार का हिसाब था। पूना नगर के हर वर्ग में, हर समाज में मैलेट के चाटुकार काम कर रहे थे। उधर सैनिक विभाग में योन नामक अंग्रेज गुप्तचर का काम कर रहा था और मैलेट को सारी सूचनायें देता रहता। मैलेट स्वयं भी उर्दू और फारसी का अच्छा ज्ञाता होने के कारण समाज के प्रत्येक उत्सवों और त्योहारों में सम्मिलित होता और अपने मतलब की बातें खोजा करता।

नाना साहब बड़े चिन्तित थे। दौलतराव बाजीराव की ओर था। तुकोजी होलकर की मृत्यु हो ही चुकी थी। भोसले और गायकवाड़ से किसी प्रकार की आशा नहीं की जा सकती। और फिर ऐसे समय में। नाना साहब बड़े दुखित थे। क्या उनके सारे जीवन का परिश्रम यों ही व्यर्थ जायेगा? क्या उनके जीवन की कमाई, वह अमूल्य धरोहर, उनकी आँखों के सामने, देखते

देखते, तितर-बितर होकर नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा ? वे बड़े पशोपेश में थे। बाजीराव को पेशवा बनाकर सुन्दरम् की कल्पना नहीं की जा सकती थी। नाना साहब की दूरदर्शिता तथा गहराई में पहुँच कर, गहराई की थाह लेने वाली बुद्धि ने इसे भली-भाँति समझ लिया था। बाजीराव को मसनद पर बैठाना ही मानों मराठों का सर्वनाश कर देना था। पर अब किया क्या जा सकता था ? नाना साहब हर तरह से विवश थे। 'ना' और 'हाँ' दोनों ही विनाशकारी थे। उन्होंने सोचा 'हाँ' में फिर भी कुछ सहारा है। सहारे में पार हो जाने की प्रेरणा है, मनसूबा है। नाना साहब ने बाजीराव से बातचीत की।

इधर नाना साहब, बाजीराव को पेशवा बनाने की सोच रहे थे और उधर बाजीराव, दौलतराव से मंत्रणा करके नाना साहब को बन्दी बनाने की तैयारियाँ कर रहा था। सारी तैयारियाँ हो गईं। उलझे हुये नाना ने कुछ धोखा खाया, परन्तु भाग्यवश, ठीक अवसर पर सूचना मिल गई। अब उनके लिये पूना छोड़ने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था। इसी में उनके जीवन की कुशलता थी। यह भी होना था। उन्होंने पूना छोड़ा और पहाड़ों के पीछे महाद में शरण ली। बाजीराव की चिड़िया निकल गई।

दौलतराव के लिये रास्ता साफ हो गया। भय जाता रहा। अब उसे अपने इच्छित कार्य की प्राप्ति में विलम्ब न था। अब वह बाजीराव को अपने मार्ग से हटाने की सोचने लगा। अँग्रेज मैलेट इस समय दौलतराव की ओर था। पलड़ा उधर ही को झुक रहा था। खैर। उसे तो झुका-झुका कर ढीला कर देना था ही। चाहे इधर झुके चाहे उधर। जो सबसे मुख्य कार्य होना था, वह तो हो ही चुका था।

बाजीराव घबड़ाया। उसे यह भी विदित हुआ कि शीघ्र ही वह दौलतराव द्वारा बन्दी बनाकर, किसी दुर्ग की ऊँची-ऊँची दीवारों के बीच जीवन पर्यन्त के लिए बन्द कर दिया जायेगा। उसकी सारी चातुरी स्वयं उसके ऊपर व्यंग करने लगी। उसने सहारे के लिये चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, परन्तु कुछ समझ में न आया। और जो आया वह दौलतराव के सम्मुख छुई-मुई के सदृश था।

नाना साहब के अतिरिक्त अन्य कोई अब उसकी रक्षा नहीं कर सकता था। उसने अविलम्ब शरजाराव को नाना साहब के पास महाद भेजा। अपने किये के लिये उनसे क्षमा-याचना की और अनेक सौगन्धों द्वारा अपनी सत्यता और उनके कथनानुसार चलने की पुष्टि का प्रमाण दिया।

नाना साहब लौटे। दौलतराव के सब मनसूबे ढीले पड़ गये। मैलेट भी विवश था। बाजीराव पूना की मसनद पर बैठाया गया और द्वितीय बाजीराव पेशवा के नाम से घोषित हुआ। किन्तु अभी पक्ष दो पक्ष ही व्यतीत हुये होंगे कि बाजीराव ने अपने हथकंडे शुरू कर दिये। उच्छृंखलता और नीचता में वह अपने पिता से कहीं आगे बढ़ा-चढ़ा था। नाना साहब जितना समझते थे, शायद उससे वह बहुत दूर था।

नाच-रंग ने सजीवता का रूप धारण किया। स्थान विख्यात सुन्दरियों की फरमाईश और उनसे अपनी वासना की तृप्ति होने लगी। धन, पानी की भाँति बहने लगा। नाना साहब ने टोका। टोकने वाली बात थी। परन्तु बाजीराव ने कुछ ध्यान नहीं दिया। शगल होते रहे। नाना साहब ने दुबारा टोका। और उसका उत्तर बाजीराव ने भरे दरबार में चिल्लाते हुये दिया 'नाना साहब, मैं सवाई माधवराव की भाँति आपके हाथों की कठपुतली नहीं, जिसे आप इच्छानुसार, जैसे चाहें नचाते रहें। मैं पेशवा हूँ और आप हैं पेशवा के मंत्री— फड़नवीस। समझे। आशा है भविष्य में ऐसी गल्ती न होगी।'

नाना साहब ने सिर झुका लिया जी महाराज।'

दरबार मौन था, शक्तिहीन था।

(ख)

'अब पूना छोड़ देने में कल्याण है। शीघ्र काशी की तैयारी करो। तुम्हारी मनोकामना भी पूरी हो जायगी और शेष जीवन पिनाकपाणि के चरणों में शान्तिपूर्वक कट जायेगा।' लक्ष्मी ने समझाया।

'सो तो ठीक है किन्तु......।' नाना लेटे हुए बड़े उदास थे।

'किन्तु' का समय निकल चुका है और साथ ही उस समय का वातावरण। अब सम्भवतः इस प्रकार की कोई कल्पना असंगत ही नहीं, वरन् सारहीन होगी। अपने तीस वर्षों के कर्तव्यों और त्यागों का परिणाम देख रहे हो न?' लक्ष्मी को शायद भविष्य अधिक अंधकारमय दिखाई पड़ रहा था।

'तो जो कुछ मैंने किया सब बेकार किया। मुझे नहीं करना चाहिये था।'

'नहीं। यह तो मैं नहीं कहती। तुमने जो कुछ किया उचित किया। और भाग्यवश अपने कार्यों में सदैव सफलता भी पाते गये। तुमने अनहोनी को होनी कर दिया और शायद तुम अपनी मंजिल पर भी पहुँच गये होते यदि ये दैवी घटनायें एक के बाद दूसरी न आती गई होतीं। परन्तु होने को तो कुछ और बदा है, तुम्हारी कुर्बानियों द्वारा तैयार की हुई भीति इसे कब तक आड़ सकेगी।'

नाना साहब ने कोई उत्तर नहीं दिया। मौन छत की ओर देखते रहे। कुछ समय उपरान्त लक्ष्मी की ओर करवट लेते हुये बोले 'लक्ष्मी, कर्मक्षेत्र से भागना भी तो एक महान कायरता होगी। थोड़े के लिये सब किये कराये पर पानी ही तो फेरना है। अब मैं इन दिनों को देखकर उन दिनों में पहुँचा था तो फिर उन्हीं दिनों के आने पर परेशानी क्यों? प्रयत्न फिर भी किया जा सकता है।' नाना साहब लौटकर वहीं आ जाना चाह रहे थे।

'ठीक है। केवल करना है, इसलिये कर रहा हूँ, जब यही प्रश्न शेष रह चुका है तो वैसा ही करो', लक्ष्मी कुछ चिढ़-सी गई थी 'दूसरों का कुछ लेते तो नहीं। अपना देते हो—दिये जाओ। चाहे जिस रूप से देना पड़े। लेकिन अब मैं निश्चित रूप से कह सकती हूँ कि वह प्रयास उलटा ही बैठेगा—सीधा नहीं।'

नाना साहब फिर मौन हो रहे। करवट ली और दूसरी ओर मुड़ गये। शनिवारबाड़ा से घंटे की आवाज आई। एक और फिर दो। 'अब सोओ', लक्ष्मी बोली 'कल इस मसले पर और सोचना। रात के दो बज गये हैं।'

लक्ष्मी सो चुकी थी, किन्तु नाना साहब की आँखों में नींद नहीं। साम्राज्य,

देश, अपनी मर्यादा और यश -- सभी कुछ तो मिट रहे थे। इतने वस्तुओं का अलगाव और मिटाव, अपनी आँखों से देखना और देखते रहना, उनके लिये कई कारणों से कष्ट-प्रद हो रहा था। तर्क-वितर्कों ने सबेरा कर दिया। मत्था भनभना उठा। परन्तु कोई निष्कर्ष न निकला। रह रहकर लक्ष्मी द्वारा कथित 'समय' और 'वातावरण' का स्मरण हो आता और यहीं उनको अपने घुटने टेक देने पड़ते।

ब्रह्म बेला का समय। वे उठकर कमरे में टहलने लगे। लक्ष्मी भी जग पड़ी। आँखें मलती हुई बोली—'सोये नहीं?'

'नहीं। सोया था। अभी-अभी जगा हूँ।' नाना ने बहाना किया।

लक्ष्मी बाहर जाने लगी तो नाना साहब ने टोका—'काशीजी चलने की तैयारी शुरू कर दो। अब शीघ्र चल देंगे।

'ठीक है।' लक्ष्मी प्रसन्न मुख बाहर चली गई।

दैनिक क्रियाओं से निवृत होकर नाना साहब पूजा पर बैठे। चित्त शान्त था। पूजा से कुछ विलम्ब में उठना हुआ। उन्होंने लक्ष्मी को बुलाकर कुछ पूछा और वहीं बैठे बैठे एक पत्र बाजीराव के नाम लिखा—

श्रीमन्त पन्त प्रधान महाराज बाजीराव पेशवा साहब बहादुर,

'मैंने जो कुछ भी महाराज के सुख और शान्ति के हेतु सोचा था वह पूरा हो गया। मुझे प्रसन्नता है। और इससे भी अधिक प्रसन्नता यह है कि महाराज ने मुझे अपने हृदय में वही स्थान दिया जो मिलना चाहिये था। लेकिन अब शरीर में सामर्थ्य क्षीण होने के कारण मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं अपने कार्य भार के उत्तरदायित्व को आगे न ढो सकूँगा। इसलिये मेरी महाराज से विनम्र प्रार्थना है कि यदि मुझे आज्ञा मिल जाती तो शेष जीवन किसी एकान्त स्थान में रहकर, शान्तिपूर्वक व्यतीत कर सकता और साथ ही आपकी उत्तरोत्तर वृद्धि के हेतु ईश्वर से प्रार्थना भी किया करता। आशा है मेरी विनती को स्वीकृति दी जाएगी।'

बाजीराव को पत्र पढ़ते और समझते देर न लगी। उसके चेहरे पर विभिन्न प्रकार के भाव बहुत समय तक बनते-बिगड़ते रहे। वह जो कुछ चाह रहा था उसकी अभी पूर्ति कहाँ हो पाई थी। उसने तो कुछ और ही सोच रखा था। वह चकराया। कोष में धन नहीं था और धन की अत्यन्त आवश्यकता थी। लेना उसे नाना से था क्योंकि कथनानुसार नाना साहब के पास अतुल धनराशि थी। संग-संग उसे अपने बाप का बदला भी तो फेरना था। पुत्र को मरे पिता के कार्यों पर अभिमान जो था। उसे नाना से बदला लेना ही चाहिये। उसने नाना साहब को बुलवाया और दशहरा समीप होने के कारण, त्यौहार तक रुकने की इच्छा प्रकट की - अनुरोध मिश्रित प्रेम भरे शब्दों में। नाना साहब ने हामी भर दी।

दूध का जला हुआ सम्भवतः अभी मट्ठा फूँक-फूँक कर पीना नहीं सीख पाया था।

बयालीस—

(क)

दशहरा आया और समाप्त हो गया, परन्तु बाजीराव अभी तक अपने कार्य में सफल न हो सका। नाना साहब को उनके निवास-स्थान पर बन्दी बनाया नहीं जा सकता था और दूसरी सूरत कोई नजर नहीं आ रही थी। इधर नाना साहब की तैयारियाँ भी होने लगी थीं। पेशवा हौल दिल हो उठा। दौड़ा हुआ दौलतराव के पास पहुँचा। दोनों गुप्त मंत्रणायें करने लगे। कुछ समय उपरान्त जब बाजीराव शिविर से निकलकर राजभवन को चला तो उसका मुखमंडल किसी आन्तरिक प्रसन्नता के कारण प्रफुल्लित दिख रहा था।

दूसरे दिन माईकल फिलोजे, जो दौलतराव की सेना में एक पदाधिकारी था—दौलतराव की ओर से भोज का निमंत्रण लेकर नाना साहब के पास पहुँचा। नाना साहब ने फिलोजे को बैठाते हुये कहा—'मुकेल (फिलोजे इसी नाम से अधिक जाना जाता था) तुम्हें तो मालूम है कि यदि मैं किसी विदेशी पर विश्वास करता हूँ तो केवल तुम पर।'

'जी हाँ। अच्छी तरह से।'

'और तुम्हें यह भी मालूम होगा कि मुझे बन्दी बनाने की तैयारियाँ भी हो रही हैं? यह अफवाह सारे पूना में फैल चुकी है।'

'जी हाँ। इसे भी मैं सुन चुका हूँ।'

'तब भला तुम्हीं बताओ कि ऐसी हालत में दौलतराव के निमंत्रण को स्वीकार करके उनके शिविर में जाना कहाँ तक उचित होगा? इसे तुम स्वयं समझ सकते हो। बाजीराव और दौलतराव दोनों को समझना शेष नहीं है।'

'खैर। मैं सरकार को चलने के लिये मजबूर तो नहीं कर सकता, लेकिन इतना जरूर कह सकता हूँ कि मेरे रहते सरकार पर कोई उंगली तक न उठा

सकेगा। और इसके सबूत के लिये यह मेरी बाइबिल है।' वह उस पवित्र पुस्तक को अपने हाथों पर रखता हुआ बार बार कसमें खाने लगा।

नाना साहब ने फिलोडे की ओर देखा, 'अच्छी बात है। मैं तुम्हारे विश्वास पर यह निमंत्रण स्वीकार करता हूँ। लेकिन इसे तुम स्मरण रखना कि तुम्हारी जाति पर मेरा यह विश्वास प्रथम और अन्तिम होगा। समझे।'

'सरकार, इसकी बिल्कुल चिन्ता न करें! इस बार आप इसे भी देख लें', वह रुका —'तो मुझे आज्ञा है?'

'हाँ जाओ। मैं आऊँगा।'

मुकेल चला गया।

निश्चित तिथि पर नाना साहब अपने दो हजार अंग रक्षकों तथा नगर के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों सहित दावत में शरीक होने के लिये चले। दौलतराव ने अपने पड़ाव के बाहरी द्वार पर नाना साहब की आगवानी की और बड़े इज्जत के साथ अपने शिविर में ले आया। कुछ समय तक वहाँ बैठे बैठे बात-चीत होती रही। तदुपरान्त विशेष सलाहों के हेतु दौलतराव ने अन्दर वाले कक्ष में बैठने का संकेत किया। सब लोग उठकर अन्दर चले आये।

शिकार पूर्णतः फंदे में आ चुका था। दौलतराव प्रबन्ध के हेतु बहाना करके बाहर निकला। उसका बाहर निकलना था कि मुकेल ने अपने कुछ सैनिकों सहित घुसकर घेर लिया और देखते-देखते धारण किये हुये हीरे तथा अन्य बहुमूल्य आभूषण, लोगों के शरीर से छीन लिये गये। पर नाना साहब के पास किसी को जाने का साहस न हो सका। नाना साहब ने फिलोजी की ओर देखा और हँसे—'दगाबाजी तुम्हारे कौम से नहीं जा सकती मुकेल।' उन्होंने अपना सब कुछ उतार कर फेंक दिया। बाहर अंग रक्षकों पर आक्रमण हुये और अधिक संख्या में वे मारे गये। जो बच गये वे घायल और भागे हुये सैनिक थे।

इधर नाना साहब का बन्दी होना था और उधर पूना में उनके घर पर छापा मारा गया, संचित धनराशि को हड़पने के लिये। किन्तु वहाँ

सच खोखला था। सारी आशाओं पर तुषारपात हो गया। सर्व के हेतु अपना सर्वस्व अर्पित करने वाले के घर में धन का खजाना! आश्चर्य की ही तो बात थी। सैनिकों की बन्दूकें दूसरी ओर मुड़ीं। लूटना तो सभी को था। रात भर नगर में गोलियाँ चलती रहीं, दोनों तरफ से। पर कब तक? विवश होकर जनता को घुटने टेकने पड़े। सवेरे, नगर के सारे धनिक और प्रतिष्ठित व्यक्ति पकड़कर शनिवारबाड़ा के सामने, बरगद के नीचे पंक्तिबद्ध खड़े किये गये। उनसे उनकी सम्पत्ति की मांग की गई। जिन्होंने दिया वे छोड़ दिये गये। जिन्होंने नाहीं की, उनपर कोड़े पड़े। परन्तु तब भी नाहीं। पृथ्वी पर नाकों के बल घसीटवाया गया। नगर में कोहराम मच गया। ऐसी दुर्दशा कभी किसी ने देखी नहीं थी। सारा नगर रो रहा था।

एक ओर बाजीराव धन एकत्रित करवा रहा था तो दूसरी ओर अपने बाप का बदला भी चुका रहा था। नगर में नाना साहब के कहलाने वाले सारे नाते-रिश्तेदार बन्दी बना लिये गये। जिन्होंने कुछ गर्दन उठाई वे सीकचों से दगवाये गये। गंगाधर पन्त जो नाना साहब के समीप के रिश्तेदार होते थे— जलते बन्दूक में बाँध दिये गये। गंगाधर मरे, जैसे किसी के उधेड़े हुए खाल पर नमक छिड़क-छिड़क कर मारा जाय। नगर में लाशों की ढेर लग गई। इज्जत पर जीने वालों ने जहर खाकर संतोष किया।

इस समय पूना से दूर, बहुत दूर, लक्ष्मी स्वर्ण दुर्ग के पथ पर घोड़ा उड़ाती चली जा रही थी। नाना साहब के बन्दी होने की सूचना उसे उसी समय, रात ही को मिल गई थी।

दौलतराव इस बार सचेत था। उसे और भी तो करना है। उसने नाना साहब को अहमद नगर के दुर्ग में भेजकर बन्द करवा दिया। दीवारें रो उठीं। पेशवा साम्राज्य का सच्चा सेवक जो भारत का कर्णधार बनकर, केवल अपनी बुद्धि बल द्वारा भविष्य का नवीन निर्माण करता हुआ, देश के स्वातंत्र्य का स्वप्न देख रहा था, जिसकी केवल राजनीतिज्ञता और दूरदर्शिता ने अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति को रोक कर बार-बार उन्हें परास्त करके उनकी नींव को

हिलाकर, केवल धक्का द्वारा गिरा देने योग्य बना दिया था; जिसके केवल एक इशारे पर चीजें बन कर बिगड़ जाती थी और बिगड़कर बन जाती थी, जिसके जबान हिलते ही दुर्ग के प्राचीर ढह सकते थे और बन सकते थे—आज वही इन प्राचीरों के भीतर बन्द कैदी बना हुआ था। न उससे कोई मिल सकता था और न वह किसी को देख सकता था। प्रहरी उस से दूर रखे जाते थे। कभी कभी बन्दीवान आकर इधर-उधर की बातें पूछ जाया करता।

रात्रि ने दिन का आलिंगन किया और दिन ने संध्या का। दिन बीते। पखवारे बीते। मास बीते। छः-मास बीते। एक-एक कर के सब बीतते चले जा रहे थे। परन्तु वह अनजान-सा था। समय की प्रधानता अब उसके जीवन में हो ही क्या सकती थी? वही दिन और रातें। ऋतुओं का परिवर्तन जब कभी उसके विगत जीवन की याद दिला देती थीं। उसके स्वप्नों की दुनियाँ की याद दिला देती थीं, भारत की आज़ादी की याद दिला देती थी। साम्राज्य के उत्कर्ष की याद दिला देती थी। उसके उतार चढ़ाव की याद दिला देती थी परन्तु फिर भी उसे संतोष था। शान्ति थी। कारण—उस जगनियन्ता के अनुकूल ही तो संसार के सारे व्यापार चला करते हैं! उसे सुख मिलता और उसके विश्वास में पुष्टि आती थी। उसने अपने को मिटाकर दूसरे को बनाना चाहा था। जनता जनार्दन को बनाना चाहा था। देश-जाति को बनाना चाहा था। इससे अधिक उसके लिये और क्या चाहिये था? और यदि चाहिये भी था तो उसे करने नहीं दिया गया। दोष उसका नहीं। दोष था दोषी का—सर्वव्यापी का।

आसाढ़ का महीना। श्वेत-श्याम मिश्रित घन क्षितिज के एक छोर से उठते और दूसरी ओर विलीन हो जाते। किधर जाते और कहाँ चले जाते—यह पता नहीं लग पाता। किसी दिन आँधियाँ भी उठतीं। तूफान भी आते। बादलों में बिजलियाँ चमकतीं। गर्जन भी होते। टिपटिपाती हुई बूंदे भी पड़तीं परन्तु बारिश न होती।

आज प्रातःकाल से बादलों का अधिक जमाव था फिर भी समय सुहावना

था। नाना साहब को पूजा में उठने की इच्छा नहीं हो रही थी। बड़ी देर से बैठे थे अपने में आनन्द विभोर होते रहे। अन्त में उठने पर अकस्मात अपने सम्मुख दौलतराव शिंदे को देखकर कुछ झिझके एक बारगी मस्तिष्क में कई प्रश्न चक्कर काटकर गायब हो गये।

'आ······प······,' नाना बोले।

दौलतराव ने बीच में काटा 'अपनी त्रुटियों पर लज्जित हूँ नाना साहब। क्षमा याचना के हेतु आया हूँ', उसने हाथ जोड़े 'मुझसे बढ़कर क्षुद्र प्रकृति का दूसरा कौन हो सकता है?'

नाना साहब ने उसकी ओर देखा वे कुछ गम्भीर हो गये। उन्होंने कहा, यह आपकी, 'उदारता है। वैसे भी आप मेरे लड़के के समान हैं। आपकी त्रुटियों पर कहाँ-कहाँ ध्यान दिया जायेगा? आईये बैठिये।'

'आपसे कुछ खास बातें करनी थी किन्तु यहाँ नहीं। कहीं बाहर चलकर।'

नाना साहब ने इस बार उसकी ओर अधिक ध्यान से देखा, 'अभी चलना होगा?'

'जी हाँ। यही उत्तम होगा।'

कैदी की आज रिहाई नहीं हुई थी। वरन् करनी पड़ी थी और स्वयं आकर करनी पड़ी थी। यह परिवर्तन! परन्तु यह कोई बड़ी बात नहीं थी। नाना साहब बाहर आकर चुपचाप हाथी पर बैठ गये। दौलतराव भी उसी पर आ बैठा। हाथी चला दोनों मौन थे।

'मेरी माताओं ने', दौलतराव मौनता भंग करता हुआ अपने मतलब पर आया 'मेरे विरुद्ध उपद्रव खड़ाकर दिया है।'

'तीनों ने?'

'जी हाँ। तीनों एक साथ मिल गई हैं।'

'क्यों?'

'वे अपना निजि प्रबन्ध स्वयं करना चाहती हैं और उसके लिये हिस्सा चाहती हैं।'

'यह तो उचित है। महादजी साहब के गोद लेने के पहले आपने उनसे इस प्रकार की प्रतिज्ञा भी की थी। जब आपने नहीं दिया तो आपके विरुद्ध उनका उपद्रव खड़ा करना अनुचित तो नहीं कहा जा सकता किन्तु फिर भी जो कुछ बैठकर शान्ति-पूर्वक निर्णय किया जा सकता है, उसके लिये आपसी दंगा फसाद् क्यों किया जाय ?'

'यही तो मैं चाहता था नाना साहब। मैंने ऐसी कोशिश भी की लेकिन उन औरतों की नादानी को क्या कहूँ।' दौलतराव सरासर झूठ बोल रहा था 'मैं तो बड़ी कठीनाइयों में फँस गया हूँ।'

'सम्भवतः उनके पक्ष में बहुमत है ?'

'हाँ। उज्जैन, बुन्देलखण्ड, कोल्हापुर और पूना सब एक कर रक्खा है। निज़ाम अली और भोंसले की सेनायें भी उनकी सहायतार्थ चल पड़ी हैं।'

नाना साहब और कुछ न पूछ कर मौन हो रहे।

दौलतराव ने आगे कहा 'इस कार्य को आपके अतिरिक्त दुसरा नहीं सुलझा सकता नाना साहब। मुझे यह भी मालूम हुआ है कि आपके बीच में पड़ने से वे औरते इस ममले को सुगमता पूर्वक सुलझानें में सहमत हो सकेंगी।

'तभी तो आपको मेरे यहाँ कष्ट करना पड़ा।' नाना साहब उसकी क्षुद्रता को सोचने लगे।

दौलतराव क्या उत्तर देता ?

(ख)

नाना साहब की मुक्ति की सूचना हवा की भाँति फैलते देर न लगी। सभी प्रसन्न थे-सुनने वाले और सुनाने वाले। गाँवों में, मंडियों में, चौपालों में जब जहाँ खबर मिलती—रात दिन यही चर्चा। घरों-घरों में चर्चा। सभी

को कुछ मिला था। क्या मिला था, इसे वे ही समझ सकते थे। नाना साहब पूना आये। स्वागत-समारोह, सभी कुछ था किन्तु नगरवासियों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि कल का मनुष्य आज पूर्णतः वृद्ध हो गया है। किसी संताप या चिन्ता के कारण बिल्कुल बदल गया है।

नाना साहब का किसी से मिलना जुलना अब नाहीं के बराबर है। वे एकान्त में रहने की अधिक चेष्टा करते हैं। विशेष लोगों के आने पर वे बातें करते लेकिन बहुत सूक्ष्म। और जब कभी बातों के दौरान में राजनीति या साम्राज्य सम्बंधी घटनाओं और मसलों का जिक्र होने लगता तो वे मौन हो जाते। जैसे इस दुनियाँ से उन्हें कोई तात्पर्य ही न रह गया। आगन्तुकों को यह समझते देर न लगती और तब वे दूसरे विषयों पर बातें करने लगते। नाना साहब की इस विरक्ति का कारण किसी से छिपा नहीं था।

रात आधी के लगभग होगी। नाना साहब अभी तक सोये नहीं थे। पलँग पर लेटे हुये कुछ सोच रहे थे। अनायास खिदमतगार को द्वार पर झाँकते हुये देखकर पूछा 'क्या है ?' और वे उठकर बैठ गये।

खिदमतगार कमरे में प्रवेश करता हुआ कुछ घबड़ाकर बोला—'श्रीमन्त पेशवा साहब हैं महाराज।'

'क्या ! पेशवा साहब !! इतनी रात को !!!'

'जी गरीब परवर। आपसे मिलना चाहते हैं।' खिदमतगार बहुत घबड़ा गया था।

'और कौन है ?'

'अकेले, एक सेवक के साथ।

नाना साहब उठ ही रहे थे कि बाजीराव आ पहुँचा। उसे बैठाते हुये वे बोले 'इतनी रात गये............!'

नाना साहब के शब्द भी पूरे न हो पाये थे कि बाजीराव ने अपने मस्तक को उनके पैरों पर रख दिया 'मैं आपके सामने मुँह दिखाने योग्य नहीं हूँ नाना साहब। मैं महान् नीच हूँ।'

नाना साहब ने उसके कंधे को पकड़कर उठाया परन्तु कुछ बोले नहीं। बाजीराव फिर बोला 'आप मेरे पिता तुल्य हैं। आप मुझे जो भी दंड दें, मैं सहने के लिये तैयार हूँ। लड़के में गल्ती करने की जितनी उद्दंडता होती है उतनी मिली हुई सजा को बर्दाश्त करने की ताक़त भी। मैं उसके लिये तैयार होकर आया हूँ किन्तु अपने परिश्रम द्वारा निर्मित इस ब्राह्मण साम्राज्य को बचा लीजिये नाना साहब। अब आपके सिवा दूसरे के द्वारा इसका उद्धार नहीं हो सकता। मेरी धूर्तता और बुराइयों पर ध्यान न दीजिये। अब इसे बचा लीजिये मेरे हेतु नहीं वरन् जाति और देश के हेतु।'

नाना साहब का उदार हृदय, पेशवा को व्यथित देखकर भर आया। वे पेशवा की धूर्तता को भूल गये। उसकी नीचता भूल गये और भूल गये उसके द्वारा किये हुये अपमान को। उन्होंने जैसे स्वयं दुख अनुभव करते हुये कहा महाराज समय के साथ-साथ शारीरिक शक्तियों ने भी तो जवाब दे दिया है। जो कुछ अब आप देख रहे हैं वह थोड़े दिनों का है और उसे भी प्रति दिन क्षीण ही होता जाना है।'

'ऐसा न कहिये नाना साहब। तब तो मैं कहीं का भी न हो पाऊँगा।' पेशवा गिड़-गिड़ा रहा था।

पेशवा की पीठ ठोंकते हुए नाना बोले 'हिम्मत नहीं हारना चाहिये महाराज आप अपने पुरुषार्थ से अभी सब कुछ कर सकते हैं। साहस कीजिये। कोई काम कठिन नहीं है।'

'पर आप............।'

'शरीर में प्राण रहते मैं सदैव भरसक सहयोग देने का प्रयत्न करता रहूँगा।'

बाजीराव ने दुबारा पैर पकड़ लिया 'बस यही चाहिये नाना साहब! केवल इतनाही।'

'आप जायें आराम करें। जहाँ तक हो सकेगा मैं उठा नहीं रखूँगा।'

पेशवा को पहुँचाने के लिये नाना साहब साथ-साथ आये।

(ग)

लक्ष्मी ने आते शीघ्र से शीघ्र पूना छोड़ने तथा काशी में चलकर रहने के लिये नाना साहब से कहा। वह पूना के अन्दर अब किसी भी दशा में नहीं रहना चाहती थी विशेष कर बाजीराव ऐसे दुराचारी और कपटी पेशवाइ में। नाना साहब हंसते हुये बोले 'अब थोड़े के लिये अन्त बिगाड़ने से क्या लाभ लक्ष्मी कर्तव्य से विमुख होकर काशी में भी शान्ति नहीं मिल सकेगी। अब तो जब तक हो सके, जैसे हो सके और जो कुछ भी हो सके, उसे कर देना। इसी से यहाँ और वहाँ दोनों को सुखदायी बनाय जा सकता है।'

लक्ष्मी, नाना की गहराई तक नहीं पहुँच सकी थी। उसने चिढ़ते हुये कहा 'अभी तुम्हें कुछ और भोगना है। सारी दुर्दशा हो गई लेकिन आँखें नहीं खुलीं। भोगो। अभी तुम बाजीराव के हाथों कुछ और घाटों का पानी पीना चाहते हो ?'

नाना साहब ने लक्ष्मी की पीठ पर हाथ फेरा, 'अब भी कुछ शेष है। सभी कुछ तो हो गया। अब तो जो देखना है, वही शेष है। खैर। चलो बेलबाग भगवान के दर्शन कर आवें। मेरे काशी न चलने का कारण तुम्हें शीघ्र मालूम हो जायेगा।' नाना ने लक्ष्मी के बाहों को पकड़ कर उठा लिया। लक्ष्मी मौन चलने लगी।

बेलबाग मन्दिर से लौटने पर नाना साहब को कानों में कुछ तकलीफ मालूम हुई और दूसरे दिन ज्वर आ गया। परन्तु तीन-चार दिनों में बुखार ठीक हो गया। नाना साहब कागज पत्रों को देखने लगे किन्तु अन्तर में चुभते हुये शूल क्या बाह्यान्तर को सुखी बनाने में समर्थ हो सकते थे! उन्हें ज्वर फिर आ गया और इस बार ज्वर महीने डेढ़ महीने रहा। वे काफी दुर्बल हो गये। चलने फिरने की शक्ति कम होती गई। केवल लक्ष्मी के सहारे बेलबाग

चुका था। टीपू के इस्लामों ने एक नया रूप धारण किया। अंग्रेजों को अवसर मिला। जैसे वे इसी ताक में बैठे ही हों। प्यादे ने बादशाह को मात दी। नाना फड़नवीस के मरते ही मराठा साम्राज्य की नींव तक खोद डाली गई।

भाषा की ओर मैंने विशेष ध्यान रखा है। कथोपकथन तथा अन्य स्थानों पर उन्हीं के शब्दों का जैसे कासिद, खिदमतगार आदि प्रयोग कर उस समाज के वातावरणों को अधिक आकर्षक बनाने का भरसक प्रयत्न किया है। वह काल मुसलमानों का था अतः मराठे भी उनके तौर-तरीके तथा बोल-चाल से अछूते नहीं रह पाये थे। मैंने भी वैसा ही किया है।

पुस्तक में जितने भी अंग्रेज पात्र आये हैं वे सभी उर्दू बोल लेते थे और समझ लेते थे। विशेष कर चार्ल्स मैलेट तो अरबी और फार्सी का भी ज्ञाता था। इसलिये मैं उनके कपोथ-कथन को बड़े सीधे रूप में रख सका हूँ।

काल्पनिक पात्र केवल एक दो हैं।

नाना फड़नवीस के महान व्यक्तित्व को मैं पाठकों के सामने रखने में कहाँ तक सफल हो सका हूँ, इस पर कुछ दावा तो नहीं कर सकता पर इतना संतोष तो अवश्य है कि वर्षों की साध पूरी हो गई।

कानपुर
१०-६-५५

उमाशंकर

नाना फड़नवीस

एक

(क)

आठ कोस के घेरे में फैली हुई पेशवा की तीन लाख सेना सदाशिवराव भाऊ के सेनापतित्व में थकी सी, पड़ी हुई विश्राम कर रही थी। दूर, पूरब की ओर—आकाश में सफेदी आने लगी थी। परन्तु अभी सबेरा होने में कुछ विलम्ब था।

विस्तृत खेमों के मध्य में एक बहुत बड़ी गेरुए रंग की रावटी लगी हुई थी। विभिन्न रंगों से बँटी हुई रेशम की डोरियाँ बड़ी कारीगरी और अनूठेपन से उस पर सिल दी गई थीं। सामने की ओर उन्हीं डोरियों से एक बड़ा स्वास्तिक चिन्ह बना था। रावटी की चोटी पर विशाल रेशमी भगवा झंडा लहरा रहा था, जो सेना के किसी भी कोने से देखा जा सकता था।

उस झिलमिलाती रावटी से सटी हुई चार और छोटी छोटी लाल भड़कीले कपड़ों की रावटियाँ लगी हुई थीं, जो उसके चारों कोने पर स्थित थीं। उन रावटियों पर भी रेशमी भगवा झंडा लहरा रहा था।

दाहिनी ओर की, पीछे वाली रावटी में कुछ खटरपट होने लगा था। सम्भवत: अन्दर लोग जग उठे थे। रावटी के बीच वाले कक्ष में, एक ऊँचे सिंहासन पर भगवान शालिग्राम की मूर्ति रखी हुई थी और उन्हीं के सामने भीनती रेखों वाला एक युवक बैठा वेद-मंत्र पढ़ रहा था।

'अग्ने व्रत पते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि..........................'

और वह बोलता-बोलता ध्यान मग्न हो गया। कुछ समय उपरान्त जब उसकी आँखें खुलीं तो उसने बार-बार अपने मस्तक को पृथ्वी पर टेकते हुये—प्रणाम किया। मानों भगवान उसकी अर्चना से प्रसन्न हो चुके थे।

भास्कर की सुनहली किरणें खिड़की से छन-छन कर आने लगी थीं। युवक ने पुकारा 'माँ।'

'आई बेटे।' एक बूढ़ी सी स्त्री पास बिछे हुए आसन पर आकर बैठ गई। उसके पीछे एक नवयुवती आई। उसने एक बार युवक को कनखियों से देखा और वहीं, वृद्धा के समीप बैठ गई।

युवक गीता खोलता हुआ बोला 'अब सम्भवतः हम लोग काशी में पिनाकपाणि के दर्शन न कर सकेंगे माँ। युद्ध की दशा बड़ी शोचनीय होती जा रही है।'

वृद्धा हँसी—'इसे ही तो आज तक किसी ने नहीं समझा है भानू। पलक गिरते वह राई-पर्वत एक करने वाला है। वह महान शक्तिवान् है न—इसीलिए। चलो पढ़ो। हाँ,' कुछ रुकते हुये वे फिर बोलीं 'दो श्लोकों का ही अर्थ समझा कर रहने देना। भाऊ साहब के कामों में आज तुम्हें अधिक हाथ बटाना चाहिये। स्वामी और सेवक का बड़ा विचित्र सम्बन्ध है बेटा।' उन्होंने अपना मुँह शालिग्राम की ओर कर लिया। उनकी बड़ी-बड़ी आँखों की कोरें सजल हो आई थीं। सम्भवतः उन्हें अपने पति का स्मरण हो आया था।

युवक पढ़ने लगा—

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥
चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥

'भगवान कृष्ण,' भानू अर्थ बतला रहा था 'अर्जुन को कर्मों की विशेषता और उसकी महानता को समझा रहे हैं माँ। उन्होंने अर्जुन से कहा कि अर्जुन,

जाकर भगवान के दर्शन कर आना—यही उनके नित्य का नियम रह गया था। यह छूटता नहीं था। यद्यपि लक्ष्मी, ऐसी कमजोरी की हालत में जाने पर इतराज़ करती परन्तु वे हँस कर टाल देते। उनका जाना नित्य होता।

अगहन का महीना आया। नाना साहब का ज्वर तो छूट चुका था किन्तु कमजोरी बहुत अधिक थी। पत्नी के चिन्तित मन को कुछ शान्ति मिली। पर यह शान्ति अधिक दिनों की नहीं थी। पूस में उन्हें फिर बुखार आने लगा और धीरे धीरे ज्वर बढ़ने लगा। औषधियाँ असमर्थता प्रकट करने लगीं। कमजोरी बढ़ती गई। दशा बिगड़ती गई। पूस समाप्त हुआ। माघ समाप्त हुआ। रोगी की दशा गिराव की ओर ही थी। फिर भी देखने आने वालों को वे अपने विषय में ठीक बताकर ढाढ़स ही देते। पेशवा भी देखने आया। उसे भी उन्होंने ढाढ़स ही दी और शीघ्र अच्छे हो जाने की उम्मीद दिखाई। बाजीराव कुछ सोचता हुआ चला गया।

होली का महीना। बृहस्पति का दिन। दिन चढ़ा और ढल गया। संध्या आई और रात्रि के बाहुपाशों में बँधकर खो गई। धीरे-धीरे अंधकार में निस्तब्धता आने लगी। वातावरण में सन्नाटा खिंचने लगा। रात साँय-साँय करने लगी। आधीरात का समय होगा। नाना साहब लेटे मौन छत की ओर देख रहे थे। लक्ष्मी सामने बैठी उन्हें निहार रही थी।

'लक्ष्मी।' नाना साहब ने उसकी ओर देखा।

'क्या?' वह आगे झुकती हुई बोली।

'होली का महीना है न?' उन्होंने मुसकराने की चेष्टा की। रंग नहीं खेल सकता तो गुलाल तो लगा ही सकता हूं। थोड़ी अबीर तो लाओ।'

लक्ष्मी का हृदय धक-धक करने लगा—पता नहीं किस शंका से। उसकी आँखें भर आईं फिर भी उसने थामा। वह बोली 'अभी होली के बहुत दिन हैं। रंग भी आप के साथ खेलूंगी। आप अच्छे तो हो जाइये।'

'लेकिन आज तुम्हें गुलाल लगाने की बड़ी इच्छा हो रही थी। सोच........।' नाना को अधिक बोलने में कठिनाई हो रही थी।

'तो अभी लाई।' वह जल्दी से दूसरे कमरे में गई। गुलाल तो था नहीं इसलिये उसने सिंगारदान के डिब्बे से एक तश्तरी में काफी सिंदूर रखकर शीघ्रता से लौटी। वह पलंग पर बैठती हुई उनकी ओर झुक गई। नाना साहब उठने में असमर्थ थे। उन्होंने सिंदूर हाथ में उठाते हुये लक्ष्मी के एक गाल में लगाया और दूबारा हाथ भरकर दूसरे गाल की ओर उठाया ही था कि हाथ नीचे को गिर गया। तश्तरी लक्ष्मी के हाथों से गिर पड़ी। सिंदूर फैल गया।

इति

सहायक पुस्तकें

1. History of the Marathas, *by Graut Duff.*
2. History of the Marathas, *by E. Scott Warning.*
3. Kingdom of Afganistan, *by G. P. Tate.*
4. Fall of Moghul Empire, *by S. T. Owen.*
5. Memoire of Central India, *by Sir John Malcolm.*
6. Memoire of late Nana Farnavis,
by A. Mac Donald.
7. New History of the Marathas, *by Kincaid.*
8. Poona in By gone days, *by R. B. Parasnis.*
9. History of the Marathas People,
by R. B. Parasnis.
10. Warren Hastings (Biographical Sketches),
by Frotter.
11. New History of the Marathas, *by G. S. Sardesai.*
12. Main Current of the Marathas History,
by G. S. Sardesai.
13. Maratha Riyasat, *by G. S. Sardesai.*
14. Peshwa Drafled Silent Documents, *by Sarkar.*
15. Rise of the Peshwa, *by H. N. Sinha.*

16. The Last Battle of Panipat,
by Kashi Rai Pandit.

17. Rise of Maratha Power, *by Ranadey.*

18. Poona Residency Correspondence Vol. II.
Edited : G. S. Sardesai.

19. Calendar of Persian Correspendence Vol. VI.
Edited : G. S. Sardesai.

20. Rise of the Christian Power, *by B. D. Basu.*

(1) Speech delivered by Late Ranadey before Royal Assiatic Society in Bombay on 30th June 1900.

(2) Speech delivered by Late Kashi Nath Trimbak Tailangji in Deccan College Union on 19th Dec. 1892.